

## विनय-पत्रिका

वाले हैं ॥१॥ जो विद्वियोंके स्थान हैं, जिनका हाथीका-सा मुण  
जो गमना विघ्नोके नायक हैं यानी विघ्नोको हटानेवाले हैं, एग  
मगुद्र हैं, गुन्दर हैं, मय प्रकारसे योग्य हैं ॥२॥ जि  
लइइ यदुन प्रिय है, जो भानन्द भीर कल्याणको देनेवाले हैं, विघ्न  
अघाह सागर हैं, युद्धिके विघ्नाना हैं ॥३॥ ऐसे श्रीगणेशजीमें  
तुलसीदास हाथ जोड़कर कंयल यही घर माँगना है कि मेरे मनमन्दि  
में श्रीमीनारामजी मद्दा नियाम करें ॥४॥

सूर्य-स्तुति

[ २ ]

१. <sup>जुद्धवाले</sup> दीन-दयालु दिवाकर देवा । कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा ॥१॥  
हिम-तम-करि-केहरि करमाली । दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली ॥२॥  
कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥३॥  
सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी । हरि-संकर-विधि-भूरति स्वामी ॥४॥  
वेद-पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भगति घर माँगै ॥५॥

भावार्थ—हे दीनदयालु भगवान् सूर्य ! मुनि, मनुष्य, देवता और  
राक्षस सभी आपकी सेवा करते हैं ॥१॥ आप पाले और अन्धकार  
रूपी हाथियोंको मारनेवाले घनराज सिंह हैं; किरणोंकी माला पहने  
रहते हैं; दोष, दुःख, दुर्गचार और रोगोंको भस्म कर डालते हैं ॥२॥  
रातके बिलुहे हुए चकवा-चकवी पक्षियोंको मिलाकर प्रसन्न करते

घाले, कमलको खिलानेवाले तथा समस्त लोकोंको प्रकाशित करने-  
गले हैं। तेज, प्रताप, रूप और रसकी आप खान हैं ॥३॥ आप दिव्य  
पथपर चलते हैं, आपका सारथी (अरुण) लूला है। हे स्वामी ! आप  
विष्णु, शिव और ब्रह्माके ही रूप हैं ॥४॥ वेद-पुराणोंमें आपकी कीर्ति  
जगमगा रही है। तुलसीदास आपसे श्रीराम-भक्तिका घर  
माँगता है ॥५॥

शिव-स्तुति

[ ३ ]

को जाँचिये संभु तजि आन ।

दीनदयालु भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान् ॥१॥

कालकूट-जुर-जरत सुरासुर, निज पन लागि किये बिप-पान ।

दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, भारेउ त्रिपुर एक ही धान ॥२॥

जो गति अगम महासुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान ।

सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिब सबहि समान ॥३॥

सेवत मुलम, उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान ।

देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

भावार्थ—भगवान् शिवजीको छोड़कर और किससे याचना की  
जाय ? आप दीनोंपर दया करनेवाले, भक्तोंके कष्ट हरनेवाले और



ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं ।

तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं ॥४॥

भावार्थ—शंकरके समान दानी कहीं नहीं है । वे दीनदयालु हैं,

देना ही उनके मन भाता है, माँगनेवाले उन्हें सदा सुहाते हैं ॥१॥

चीरोंमें अग्रणी कामदेवको भस्म करके फिर बिना ही शरीर जगत्में

उस रहने दिया, ऐसे प्रभुका प्रसन्न होकर कृपा करना मुझसे क्योंकर

कहा जा सकता है ? ॥२॥ करोड़ों प्रकारसे योगकी साधना करके

मुनिगण जिस परम गतिको भगवान् हरिसे माँगते हुए संकुचाते हैं

वहाँ परम गति त्रिपुरारि शिवजीकी पुरी काशीमें कीट-पतंग भी पा

जाते हैं, यह चेदोंसे प्रकट है ॥३॥ ऐसे परम उदार भगवान् पार्वतीपति-

को छोड़कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं, उन मूर्ख

माँगनेवालोंका पेट भलीभँति कभी नहीं भरता ॥४॥

[ ५ ] L - -

चावरो रावरो नाह भवानी ।

दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, चेद-बड़ाई भानी ॥१॥ नख

निज घरकी धरबात बिलोकहु, हाँ तुम परम सयानी ।

सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ॥२॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी ।

तिन रंकनका नाक सँवारत, हाँ आयो नकबानी ॥३॥

२१॥

२१॥

दुग्ध-दीनता दुग्धी इनके दुग्ध, जाचकता अङ्गुली ।  
 यह अधिकार माँपिये आँसू, भीम मनी में जानी ॥३॥  
 प्रेम-प्रसंगा-विनय-व्यंग्यतुल, गुनि विभिन्नी घर बानी ।  
 सुलगी सुदिन मदेग मनहिं मन, जगत-मातु सुगुहानी ॥४॥

भावार्थ—(ब्रह्माजी लोगोंका भाग्य बदलने-बदलने देवान होत पार्यन्तीजीके पास जाकर कहने लगे) हे भगवती ! भाग्यके न (शिवजी) पागल हैं। मरते देते ही रहते हैं। जिन लोगोंके क किराईको दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया जैसे लोगोंको भी ये दे डालते हैं, जिनसे येदकी मर्यादा टूटती है ॥ आप यही मयानी हैं, अपने घरकी मर्यादा तो देखिये (देते-देते घर खाली होने लगा है, अनधिकारियोंको) शिवजीकी हुर्र अपार सम्पत्ति देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती भी (व्यंगसे आपकी यद्दार्इ कर रही हैं ॥२॥ जिन लोगोंके मन्त्ररूप में सुल नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति शिवजीके पागलपन कारण उन कंगालोंके लिये स्वर्ग सजाते-सजाते मेरे नाकों दम आ ग है ॥३॥ कहीं भी रहनेको जगह न पाकर दीनता और दुग्नियोंके दुग्ध भी दुग्धी हो रहे हैं और याचकता तो व्याकुल हो उठी है। लोगोंके भाग्यलिपि बनानेका यह अधिकार छुपाकर आप किसी दूसरेसे माँपिये, मैं तो इस अधिकारकी अपेक्षा भीम माँगकर माना बच्छ समझता हूँ ॥४॥ इस प्रकार ब्रह्माजीकी प्रेम, प्रशंसा, विनय औ व्यंगसे भरी हुई सुन्दर घाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-मन मुदि हस्य और जगज्जननी पार्वती मुसकराने लगी ॥५॥

राग रामकली

[ ६ ]

गाँचिये गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥१॥  
 आँदर-दानि द्रवत पुनि धोरें । सकत न देखि दीन करजोरें ॥२॥  
 सुख-संपति, मति-सुगति सुहाई । सकल सुलम संकर-सेवकाई ॥३॥  
 गये सरन आरतिकै लीन्हे । निरखि निहाल निमिपमहँ कीन्हे ॥४॥  
 तुलसिदास जाचक जस गावैं । विमल भगति रघुपतिकी पावैं ॥५॥

भावार्थ—पार्यती-पति शिवजीसे ही याचना करनी चाहिये, जिनका घर काशी है और अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्य और घशित्य नामक आठों सिद्धियाँ जिनकी दासी हैं ॥१॥ शिवजी महाराज आँदरदानी हैं, थोड़ी-सी संघासे ही पिघल जाते हैं । यह दीनोंको हाथ जोड़े गड़ग नहीं देख सकते, उनका कामना बहुत शीघ्र पूरी कर देते हैं ॥२॥ शंकरकी संघासे सुख, सम्पत्ति, सुबुद्धि और उत्तम गति आदि सभी पदार्थ सुलभ हो जाते हैं ॥३॥ जो आतुर जीव उनका शरण गये, उन्हें शिवजीने तुरन्त अपना लिया और देसते ही पलभरमें सबको निहाल कर दिया ॥४॥ भिसारी तुलसीदास भी यरा गाता है, इसे भी रामकी निर्मल भक्तिकी भांग्य मिले ! ॥५॥

[ ७ ]

कस न दीनपर द्रवहु उमावर । दारुन बिपति हरन करुनाकर ॥१॥  
 वेद-पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर ॥२॥

## चिनय-पत्रिका

कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज । होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पदनि  
जो गति अगम महामुनि गावहिं । तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥  
देहु काम-रिपु ! राम-चरन-रति । तुलसिदास प्रभु ! हरहु भेद-भति ॥

भावार्थ—हे उमा-रमण ! आप इस दीनपर कैसे कृपा नहीं करते  
हे करुणाकी खान ! आप घोर विपत्तियोंके हरनेवाले हैं ॥१॥ घेद-पुर  
कहते हैं कि शिवजी बड़े उदार हैं, फिर मेरे लिये आप इतने अधि  
कृपण कैसे हो गये ? ॥२॥ गुणनिधि नामक ब्राह्मणने आपकी कौन-  
भक्ति की थी, जिसपर प्रसन्न होकर आपने उसे अपना कल्याणपद  
दिया ॥३॥ जिस परम गतिको महान् मुनिगण भी दुर्लभ बतलाते  
वह आपकी काशीपुरीमें कीट-पतंगोंको भी मिल जाती है ॥४॥  
कामारि शिव ! हे स्वामी !! तुलसीदासकी भेद-बुद्धि हरण कर उ  
श्रीरामके चरणोंकी भक्ति दीजिये ॥५॥

[ < ]

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे ।  
किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे ॥१॥  
सेवा, सुमिरन, पूजिबौ, पात आखत थोरे ।  
दिये जगत जहँ लगि सबै, सुख, गज, रथ, घोरे ॥२॥  
गाँव घसत घामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे ।  
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥३॥

बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे ।

तुलसी दलि, रूँध्यो चहँ सठ साखि सिहोरे ॥४॥

भावार्थ—हे शंकर ! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं । जिन-जिन लोगोंने आपके सामने हाथ जोड़े, 'आपने बिना मेद-माघके उन सब लोगोंके दुःख दूर कर दिये ॥१॥ आपकी सेवा, स्मरण और पूजनमें तो घोड़े-से घेयपत्र और चावलोंसे ही काम चल जाता है; परन्तु इनके बदलेमें आप हार्या, रथ, घोड़े और जगन्में जितने सुगन्धके पदार्थ हैं, सो सभी दे डालते हैं ॥२॥ हे धामदेध ! मैं आपके गाँव ( काशी ) में रहता हूँ, मैंने कभी आपसे कुछ माँगा नहीं, अब भाधिर्मातिक कष्टके रूपमें ये आपके किंकरगण मुझे मत्ताने लगे हैं ॥३॥ इसलिये आप इन कठोर कर्म करनेवालोंकी जल्दी मुलाकर डाँट दीजिये, मैं आपकी बलैया लेता हूँ, क्योंकि ये दुष्ट तुलसीदासरूपी तुलसीके पेड़की बुचलकर उसकी जगद् शाखोट ( सहोर ) के पेड़ लगाना चाहते हैं ॥४॥

[ ९ ]

सिब ! सिब ! होइ प्रसन्न करु दाया । ✓

करुनामय उदार कीरति, बलि जाउँ हरहु निज माया ॥१॥

जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई ।

पिनु तब कृपा राम-पद-पंकज, सपनेहुँ भगति न होई ॥२॥

रिपय, सिद्ध, क्षुनि, मनुज, दनुज, सुर, अपर जीव जग माहीं ।

तप पद विमुख न पार पाव कोउ, फलप कोटि बलि जाहीं ॥३॥



## विनय-पत्रिका

अहिभूषण, दूषण-रिपु-मेवक, देव-देव, त्रिपुरारी ।  
मोह-निहार-दियाकर गंकर, मग्न मोह-मयहारी ॥  
गिरिजा-मन-मानम-मराल, कामीम, ममान-निषामी ।  
तुलसिदास हरि-स्वरन-कमल-धर, देहू भगति अविनामी ॥

भावार्थ—हे कल्याणरूप शिवजी ! प्रसन्न होकर क्या कीजिये । मैं  
करुणामय हूँ, आपकी कीर्ति सब ओर फैली हुई है: मैं शक्तिवान्  
जाता हूँ, कृपापूर्वक अपनी भाषा हर कीजिये ॥१॥ आपके नेत्र कमल  
के समान हैं, आप सर्व-गुण-सम्पन्न हैं, कामदेवके शत्रु हैं । आपकी कृपा  
बिना न तो कोई आपकी महिमा जान सकता है और न श्रीराम  
चरणकमलोंमें, स्वप्नमें भी, उसकी भक्ति होती है ॥२॥ ऋषि, मित्र  
मुनि, मनुष्य, दैत्य, देवता और जगत्में जितने जीव हैं, वे सब आप  
चरणोंसे विमुख रहने हुए करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी संसार-सागर  
का पार नहीं पा सकते ॥३॥ सर्प आपके भूषण हैं, दूषणको मारनेवाले (और  
सारे दीपोंको हरनेवाले) भगवान् श्रीरामके आप सेवक हैं, आप देवधि  
देव हैं, त्रिपुरासुरका संहार करनेवाले हैं । हे शंकर ! आप मोहरूपी कोहर  
नाश करनेके लिये साक्षात् मूर्त्य हैं, शरणागत जीवोंका शोक और भय  
हरण करनेवाले हैं ॥४॥ हे काशीपते ! हे श्मशाननिवासी !! हे पार्वती  
मनरूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाले राजहंस !!! तुलसिदासके  
श्रीहरिके श्रेष्ठ चरणकमलोंमें अनपायिनी भक्तिका वरदान दीजिये ॥५॥

राग धनाश्री

[ १० ]

देव,

मोह-तम तरणि, हर, रुद्र, शंकर, शरण, हरण मम शोक लोकाभिरामं ।  
 बाल-शशि-माल, सुविशाल लोचन-कमल, काम-शतकोटि-लावण्य-धामं  
 कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह रुचिर, तरुण-रवि कोटि तनु तेज आजै ।  
 भस्म सर्वांग अर्धांग शैलात्मजा, व्याल-नृकपाल-माला विराजै ।२।  
 मौलिसंकुल जटा-मुकुट विद्युच्छटा, तटिनि-वर-वारि हरि-चरण-पूतं ।  
 श्रवण कुंडल, गरल कंठ, करुणाकंद, सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं ।३।  
 शूल-शायक-पिनाकासि-कर, शत्रु-वन-दहन इव धूमध्वज, घृपम-यानं ।  
 व्याघ्र-गज-चर्म-परिधान, विद्वान-घन, सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सैव्यमानं ।  
 तांडवित-नृत्यपर, डमरु डिंडिम प्रवर, अशुभ इव भाति कल्याणराशी ।  
 महा कल्पांत ब्रह्मांड-मंडल दवन, भवन कैलास, आसीन काशी ।५।  
 तद्ग, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विमो, विश्व भवदंशसंभव पुरारी ।  
 ब्रह्मोद्भ, चंद्रार्क, वरुणाग्नि, वसु, मरुत, यम, अर्चि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ॥  
 अकल, निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन ब्रह्म, कर्म-पथमेकमज निर्विकारं ।  
 अखिलविग्रह, उग्ररूप, शिव, भूपसुर, सर्वगत, शर्व, सर्वोपकारं ॥७॥  
 ज्ञान-चैराग्य, घन-धर्म, कैवल्य-सुख, सुमग सौभाग्य शिव ! सानुकूलं ।  
 तदपि नरमूढ आरूढ संसार-यथ, भ्रमत्त भव, विमुक्त तव पादमूलं ॥८॥

नष्टमणि, दृष्ट अग्नि, कष्ट-रत्न, मेद-गत, दाम तुलसी संसु-शरण आया ।  
 देहि कामाग्नि ! भीरु-पद-पंकजें भक्ति अनवगत गग-मेद-माया ॥१॥

भावार्थ—हे शिव ! मोटागाकारका भास करनेके लिये आप  
 माध्यात् सूर्य हैं । हे हनु ! हे रुद्र ! हे शम्भु ! हे श्रीकामिगम ! आप  
 मेरा शोक दृष्ट करके पाले हैं । आपके मन्तरपर द्वैजका बाल-चन्द्र  
 सीमा पा रहा है, आपके बड़े बड़े मेत्र कमलके समान हैं । आपकी करीब  
 कामदेवके समान सुन्दरताके मण्डार हैं ॥१॥ आपकी सुन्दर मूर्ति शंभु,  
 रुद्र, चन्द्रमा और कपूरके समान शुभयर्ण है; करीबों मध्याह्नके सूर्यके  
 समान आपके शरीरका तेज झलमला रहा है; समस्त शरीरमें मस्म लगी  
 हुई है । आधे अंगमें हिमाचल-कन्या पायंतीजी शोभित हो रही हैं; माँपों  
 और नर-कपालोंकी माला आपके गलेमें घिराज रहा है ॥२॥ मस्तकपर  
 द्वैजलीके समान चमकते हुए पिङ्गलवर्ण जटा-जूटका मुकुट है तथा  
 भगवान् श्रीहरिके धरणोंसे पथिन्न हुई गंगार्जीका श्रेष्ठ जल शोभित है ।  
 कानोंमें कुंडल हैं; कण्ठमें हलाहल विष झलक रहा है; ऐसे करुणा-कन्द,  
 नथिदानन्दस्वरूप, अथधृतपेश भगवान् शिवजीकी मैं चन्दना करता हूँ ॥३॥  
 आपके कर कमलोंमें शूल, याण, धनुष और तलवार है; शत्रुरूपी धनको  
 मस करनेके लिये आप अग्निके समान हैं । वील आपकी सवारी है । बाघ  
 और हाथीका चमड़ा आप शरीरमें लपेटे हुए हैं । आप विज्ञानधन हैं यानी  
 आपके ज्ञानमें कहीं भी अवकाश नहीं है । आप सिद्ध, देव, मुनि, मनुष्य  
 आदिके द्वारा सेवित हैं ॥४॥ ताण्डव-नृत्य करते हुए आप सुन्दर

होनेपर भी कल्याणकी खान हैं। महाप्रलयके समय आप सारे ब्रह्माण्डकी भस्म कर डालते हैं, कैलास आपका भवन है और काशीमें आप आसन लगाये रहते हैं ॥५॥ आप तत्त्वके जाननेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, यज्ञोंके स्वामी हैं, विभु (व्यापक) हैं, सदा अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं। हे पुरारि ! यह सारा विश्व आपके ही अंशसे उत्पन्न है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, आठ वसु, उनचास मरुत् और यम आपके चरणोंकी पूजा करनेसे ही सर्वाधिकारी बने हैं ॥६॥ आप कला-रहित हैं, उपाधि-रहित हैं, निर्गुण हैं, निर्लेप हैं, परब्रह्म हैं। कर्म-पथमें एक ही हैं, जन्मरहित और निर्विकार हैं। सारा विश्व आपकी ही मूर्ति है, आपका रूप बड़ा उग्र होनेपर भी आप मङ्गलमय हैं, आप देवताओंके स्वामी हैं, सर्वव्यापी हैं, संहारकर्ता होते हुए भी सबका उपकार करनेवाले हैं ॥७॥ हे शिव ! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उसकी ज्ञान, वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्य-सुख (मोक्ष) और सुन्दर सौभाग्य आदि सब सहज ही मिल जाते हैं, तो भी खेद है कि मूर्ख मनुष्य आपकी चरणसेवासे मुँह मोड़कर संसारके विकट पथपर इधर-उधर भटकते फिरते हैं ॥८॥ हे शम्भो ! हे कामारि !! मैं नष्ट-शुद्धि, अत्यन्त दुष्ट, कष्टोंमें पड़ा हुआ दुखी तुलसीदास आपकी शरण आया हूँ; आप मुझे श्रीरामके चरणारविन्दमें ऐसी अनन्य एवं अटल भक्ति दीजिये जिससे भेदरूप मायाका नाश हो जाय ॥९॥

भैरवरूप शिव-स्तुति

[ ११ ]

देव,

भीषणाकार, भैरव, भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति, विपत्ति-हर्त्ता ।

मोह-भूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारण-त्तरण, अभय-कर्त्ता ॥१॥

अतुल बल, विपुल विस्तार, विग्रह गौर, अमल अति घवल घरणीघरामं ।  
 शिरसि संकुलित-कल-जूट पिंगलजटा, पटल शत-कोटि-विद्युच्छटामं ।  
 भ्राज विबुधापगा आप पावन परम, मौलि-मालेव शोभा विचित्रं ।  
 ललित लल्ल्याटपर राज रजनीश कल, कलाघर, नामि हर घनद-मित्रं ॥  
 हंडु-पावक-मानु-नयन, मर्दन-मयन, गुण-अयन, ज्ञान-विज्ञान-रूपं ।  
 रमण-गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल, वदन छवि अनूपं ॥  
 चर्म-असि-शूल-धर, डमरु-शर-चाप-कर, यान वृषभेश, करुणा-निधानं  
 जरत सुर-असुर, नरलोक शोकाकुलं, मृदुल चित, अजित, कृत गरलपानं ।  
 भस्म तनु-भूषणं व्याघ्र-चर्माम्बरं, उरग-नर-मौलि उर मालधारी ।  
 डाकिनी, शाकिनी, खेचरं, भूचरं, यंत्र-मंत्र-भंजन, प्रवल कल्मषारी ॥६॥  
 काल-अतिकाल, कलिकाल-व्यालादि-खग, त्रिपुर-मर्दन, भीम-कर्म भारं  
 सकल लोकान्त-कल्पान्त शूलाग्र कृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी ॥७॥  
 पाप-संताप-घनघोर संसृति दीन, अमत जग योनि नहिं कोपि त्राता ।  
 साहि भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र, बंधु, गुरु, जनक, जननी, विधाता ।८॥  
 पश्य गुण-गण गणति विमल, मति शारदा, निगम नारद-प्रमुख ब्रह्मचारी  
 ज्येष्ठ, सर्वेश, आमीन आनंदधन, दाम तुलसी प्रणत-प्रासहारी ॥९॥

भावार्थ-हे भीषणमूर्ति भैरव ! आप भयंकर हैं । भूत, प्रेत और

लेये आप बिलाव हैं; जन्म-मरणरूप संसारके भयको दूर करनेवाले हैं; सबको तारनेवाले, स्वयं मुक्तरूप और सबको अभय करनेवाले हैं ॥१॥ आपका बल अतुलनीय है। आपका अति विशाल, गौरवर्ण, निर्मल, उज्ज्वल और शेषनागकी कान्तिके समान शरीर है। सिरपर सुन्दर पीले रंगका सौ करोड़ बिजलियोंके समान श्रामावाला जटाजूट शोभित हो रहा है ॥२॥ मस्तकपर मालाकी तरह विचित्र शोभावाली, परम पवित्र जलमयी देवनदी गंगा विराजमान है। सुन्दर ललाटपर चन्द्रमाकी कमनीय कला शोभा दे रही है, ऐसे कुवेरके मित्र शिवजीकी मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य आपके नेत्र हैं; आप कामदेवकी भस्म कर चुके हैं; गुणोंके भण्डार और ज्ञान-विज्ञानरूप हैं। पार्वतीके साथ आप विहार करते हैं और पर्वतराज कैलास आपका भवन है। आपके कानोंमें कुण्डल हैं और आपके मुखकी सुन्दरता अनुपम है ॥४॥ आप ढाल, तलवार और शूल धारण किये हुए हैं; आपके हाथोंमें डमरु, बाण और धनुष हैं। बैल आपकी सवारी है और आप करुणाके स्वज्ञान हैं। आपकी करुणाका इमीसे पता लगता है कि आप समुद्रसे निकले हुए भयानक अजेय विपकी ज्वालासे देवता, राक्षस और मनुष्यलोकको जलता हुआ और शोकमें व्याकुल देखकर करुणाके बरस होकर उसे स्वयं पी गये ॥५॥ भस्म आपके शरीरका भूषण है, आप घाघंवर धारण किये हुए हैं। आपने साँपों और नरमुण्डोंकी माला हृदयपर धारण कर रखी है। डाकिनी, शाकिनी, खेचर, ( आकाशमें विचरनेवाली दुष्ट आत्माओं ) भूचर ( पृथ्वीपर विचरनेवाले भूत-प्रेत आदि ) तथा यन्त्र-मन्त्रका आप को नाश करनेवाले हैं। प्रबल पापोंको पलभरमें नष्ट

कर डालने हैं ॥ ६ ॥ भाग कालके भी महाकाल हैं, कलिकालके  
 सपोंके लिये भाग गरुड़ हैं । त्रिपुरासुरका मर्त करनेवाले तथा भौर  
 यक्ष-यक्ष भयानक कार्य करनेवाले हैं । समस्त लोकोंके नाश करने-  
 वाले महाप्रलयके समय भगनी त्रिशूलकी जोकसे डिग्गजोंको इंद्रपर  
 आप गुणार्गीत होकर नृत्य करते हैं ॥७॥ इस पाप-मन्त्रापसे पूर्व  
 भवानक मंगारमें मैं दीन होकर र्थागमी लाग्य योनियोंमें भटक रहा  
 हूँ, मुझे कोई भी घचानेवाला नहीं है । हे भैरवरूप ! हे रामरूपी रुद्र ॥  
 आप ही मेरे धन्धु, गुरु, पिता, माता और पिघाता हैं । मेरी रक्षा  
 कीजिये ॥८॥ जिनके गुणोंका निर्मल सुद्धिवाली सरस्वती, वेद और  
 नारद आदि महानानी तथा शेषजी सदा गाँन करते हैं, यह तुलसीदास  
 उन सर्वेश्वर, आनन्दवन काशीमें विराजमान, भक्तोंको अमय प्रदान  
 करनेवाले शिष्यजीको प्रणाम करता है ॥९॥

[ १२ ]

सदा—

शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैल-कन्या-वरं, परमरम्यं ।  
 काम-भद-मोचनं, तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ॥१॥  
 कंबु-कुंदेदु-कर्पूर-गौरं शिवं, सुन्दरं, सच्चिदानन्दकंदं ।  
 सिद्ध-सनकादि-योगीन्द्र-शृंदारका, विष्णु-विधि-बन्ध चरणारविंदं ॥२॥  
 ब्रह्म-कुल-बल्लभं, सुलभमतिदुर्लभं, विकटवेपं, विभुं वेदपारं ।  
 नौमि करुणाकरं, गरल-गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं ॥३॥  
 लोकनाथं, शोक-शूल-निर्मूलिनं, शूलिनं, मोह-तम-भूरि भानुं ।  
 कालकालं, कलातीतमजरं हरं, कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं

तद्भ्रमज्ञान-पाथोधि-घटमंभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्यमूलं ।  
प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणत-जन-रंजनं, दास तुलसी शरण सानुकूलं ॥५॥

भावार्थ—कल्याणकारी, कल्याणके दाता, सन्तजनोंको आनन्द देनेवाले, हिमाचलकन्या पार्वतीके पति, परम रमणीय, कामदेवके घमण्डको चूर्ण करनेवाले, कमल-नेत्र, भक्तिसे प्राप्त होनेवाले महादेवका मैं भजन करता हूँ ॥१॥ जिनका शरीर शंख, कुन्द, चन्द्र और कपूरके समान चिकना, कौमल, शीतल, श्वेत और सुगन्धित है; जो कल्याणरूप, सुन्दर और सच्चिदानन्द-कन्द है । सिद्ध, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, योगिराज, देवता, विष्णु और ब्रह्मा जिनके घरणारविन्दकी चन्दना किया करते हैं ॥२॥ जिनको ब्राह्मणोंका कुल प्रिय है; जो सन्तोंको सुलभ और दुर्जनोंको दुर्लभ हैं; जिनका वेष बड़ा विकराल है; जो विभु हैं और वेदोंसे अतीत हैं; जो करुणाकी खान हैं; गरलको ( कण्ठमें ) और गंगाको ( मस्तकपर ) धारण करनेवाले हैं; ऐसे निर्मल, निर्गुण और निर्विकार शिष्यजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ जो लोकोंके स्वामी, शोक और शूलको निर्मूल करनेवाले, विशूलधारी हैं । महान् मोहान्धकारको नाश करनेवाले मूर्य हैं, जो कालके भी काल हैं, फलातीत हैं, अजर हैं, आवागमनरूप संसारको हरनेवाले और कठिन कलिकालरूपी घनको जलानेके लिये अग्नि हैं ॥४॥ यह तुलसीदास उन तत्त्ववेत्ता, अप्रानरूपी समुद्रके सोखनेके लिये अगस्त्यरूप, सर्वान्तर्यामी, सद्य प्रकारके सौभाग्यकी जड़, जन्म-मरणरूप अपार संसारका नाश करनेवाले, शरणागत जनोंको सुख देनेवाले सदा सानुकूल शिष्यजीकी शरण हैं ॥५॥



राग वसन्त

[ १३ ]

सेवहु शिव-चरन-सरोज-रेनु । कल्याण-अखिल-प्रद कामधेनु ॥१॥  
 कर्पूर-गौर, करुणा-उदार । संसार-सार, सुजगेन्द्र-हार ॥२॥  
 सुख-जन्मभूमि, महिमा अपार । निर्गुन, गुणनायक, निराकार ॥३॥  
 त्रय नयन, मयन-मर्दन महेस । अहंकार-निहार-उदित दिनेम ॥४॥  
 चर बाल निसाकर मौलि भ्रात्र । त्रिलोक-सोकहर प्रभयराज ॥५॥  
 जिन्हकहँ विधि सुगति न लिखी माल । तिन्हकी गति कामीपति कृपाल  
 उपकारी कोऽपर हर-समान । सुर-असुर जरत कृत गरल पान ॥७॥  
 बहु कल्प उपायन करि अनेक । विनु संसु-कृपा नहिं भव-विवेक ॥८॥  
 चिग्यान-भवन, गिरिसुता-रमन । कह तुलसिदास मम श्रास-समन ॥९॥

भावार्थ—सम्पूर्ण कल्याणके देनेवाली कामधेनुकी तरह शिवजीके चरणकमलकी रजका स्नेहन करो ॥१॥ वे शिवजी कर्पूरके समान गौर-चर्ण हैं, करुणा करनेमें बड़े उदार हैं, इस अनारमरूप अक्षर संसारमें आत्मरूप सार-तत्त्व हैं, सर्पोंके राजा धामुक्तिका हार पहने रहते हैं ॥२॥ वे सुखकी जन्मभूमि हैं—समस्त सुख उन सुखरूपसे ही निकलते हैं, उनकी अपार महिमा है, वे तीनों गुणोंसे अतीत हैं, सब प्रकारके दिव्य गुणोंके स्वामी हैं, वस्तुतः उनका कोई आकार नहीं है ॥३॥ उनके तीन नेत्र हैं, वे मर्दनका मर्दन करनेवाले महेश्वर, अहंकार-रूप कोहरेके लिये उदय हुए सूर्य हैं ॥४॥ उनके मस्तकपर सुन्दर घात

चन्द्रमा शोभित है, वे तीनों लोकोंका शोक हरण करनेवाले तथा गणोंके राजा हैं ॥५॥ विधाताने जिनके मस्तकपर अच्छी गतिका कोई योग ही नहीं लिखा, कार्शानाथ कृपालु शिवजी उभकी गति हैं—शिव-जीकी कृपासे वे भी सुगति पा जाते हैं ॥६॥ धीशंकरके समान उपकारी संसारमें दूसरा कौन है, जिन्होंने विपकी ज्वालासे जलते हुए देव-दानवोंको बचानेके लिये स्वयं विप पी लिया ॥७॥ अनेक कल्पोंतक कितने ही उपाय क्यों न किये जायँ, शिवजीकी कृपा बिना संसारके बसली स्वरूपका शान कभी नहीं हो सकता ॥८॥ तुलसीदास कहते हैं कि हे विज्ञानके धाम, पार्वती-रमण शंकर ! आप ही मेरे भयको दूर करनेवाले हैं ॥९॥

[ १४ ]

देखो देखो, वन धन्यो आजु उमाकंत। मानों देखन तुमहि आई रितु वसंत  
जनु तनुदुति चंपक-कुसुम-माल। बर बसन नील नूतन तमाल ।२।  
कल कदलि जंघ, पद कमल लाल। सूचत कटि केहरि, गति मराल ।३।  
भूपन प्रसन्न बहु विविध रंग। नूपुर किंकिनि कलरव विहंग ।४।  
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकिलता-जाल ।५।  
आनन सरोज, कच मधुप गुंज। लोचन विसाल नव नील कंज ।६।  
पिक बचन चरित बर बहिं कीर। सित सुमन हास, लीला समीर ।७।  
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान। उर बसि प्रपंच रचे पंचवान ।८।  
करि कृपा हरिय भ्रम-कंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ।९।

मोघार्थ-देविये, शिवजी ! आज भाग धन धन गये हैं । भाते  
अर्द्धांगमें भिन्न धीपार्यवर्तीजी मानो यगन्त क्रतु धनकर भागधे  
देगने भारी हैं ॥१॥ जिनके शरीरकी काञ्चित मानो चम्पाके फूलोंके  
माला हैं, सुन्दर नीले घन मर्यान तमाल-पत्र हैं ॥२॥ सुन्दर जंजर  
केलेके गृह और चरण लाल कमल हैं, पत्नी कमर सिद्धकी और सुन्दर  
चाल हंसकी सूचना दे रही है ॥३॥ गहने अनेक रंगोंके बहुत-से फूल हैं,  
नूपुर (पंजनी) और किंकिणी (करघनी) पत्रियोंका सुमधुर शब्द है ॥४॥  
हाथ मालमिरी और आमके पत्ते हैं, स्तन येलके फल और घोंटी लताओंका  
जाल है ॥५॥ मुख कमल और चाल गूँजन हुए मीरे हैं, विशाल नेत्र  
नवीन नील कमलकी पंगड़ियाँ हैं ॥६॥ मधुर धवन कोयल तथा सुन्दर  
चरित्र मोर और तोते हैं, हँसी सफेद फूल और लीला शीतल-मन्द-  
सुगन्ध समीर है ॥७॥ तुलसीदास कहते हैं कि हे परम प्रानी शिवजी !  
यह कामदेव मेरे हृदयमें घसकर बड़ा प्रपञ्च रचता है ॥८॥ इस कामकी  
भ्रम-फाँसीको काट डालिये, जिससे सुखस्वरूप श्रीराम मेरे हृदयमें  
सदा निवास करें ॥९॥

### देवी-स्तुति

राग मारु

[ १५ ]

दुसह दोष-दुख दलनि, करु देवि दाया ।

विश्व-मूलाऽसि, जन-सानुकूलाऽसि, कर शूलधारिणि महामूलमाया । १ ।  
तद्वित गर्भाङ्ग सर्वाङ्ग सुन्दर लसत, दिव्य पट मव्य भूषण विराट् ।  
बालमृग-मंजुसंजन-विलोचनि, चन्द्रवदनि लखि कोटि रतिमार लाजि । २ ।

ध्रुव-मुख-शील-सीमाऽसि, मीमाऽसि, रामाऽसि, वामाऽसि घर युद्धिचानी  
 उग्रुख-हेरम्ब-अंबासि, जगदधिके, शंभु-जायासि जय जय भवानी ॥३॥  
 चंड-भुजदंड-खंडनि, विहंडनि महिष, मुंड-मद-भंग कर अंग तोरे ।  
 शुंभ निःशुंभ कुम्भीश रण केशरिणि, क्रोध वारीश अरि-शृन्द घोरे । ४।  
 निगम-आगम-अगम गुर्वि। तत्र गुन-कथन, उर्विधर करत जेहि सहसजीहा  
 देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज, राम धनश्याम तुलसी पपीहा ॥५॥

भावार्थ—हे देवि ! तुम दुःसह दोष और दुःखोंको दमन करनेवाली  
 हो, मुझपर दया करो । तुम विजय-प्रहाण्डकी मूल ( उत्पत्ति-स्थान ) हो,  
 मत्तोंपर सदा अनुकूल रहती हो, दुष्टदलनके लिये हाथमें त्रिशूल  
 धारण किये हो और सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाली मूल ( अद्यावत् )  
 प्रकृति हो ॥१॥ तुम्हारे सुन्दर शरीरके समस्त अंगोंमें विजली-सी  
 चमक रही है, उनपर दिव्य घल और सुन्दर आभूषण शोभित हो रहे  
 हैं । तुम्हारे नेत्र मृगछीने और खज्जनके नेत्रोंके समान सुन्दर हैं, मुख  
 चन्द्रमाके समान है, तुम्हें देखकर करोड़ों रति और कामदेव लज्जित  
 होते हैं ॥२॥ तुम रूप, सुख और शीलकी सीमा हो; दुष्टोंके लिये तुम  
 भयानक रूप धारण करनेवाली हो । तुम्हीं लक्ष्मी, तुम्हीं पार्वती और  
 तुम्हीं श्रेष्ठ युद्धिवाली सरस्वती हो । तुम स्वामिकार्तिक और गणेशजी-  
 की ही माता नहीं हो, जगज्जननी हो, शिवजीकी शृद्धिणी ही; हे भवानी !  
 तुम्हारी जय हो, जय हो ॥३॥ तुम चण्ड दानवके भुजदण्डोंका खण्डन  
 करनेवाली और महिषासुरकी मारनेवाली हो । मुण्ड दानवके घमण्डका  
 नाश कर तुम्हींने उसके अंग-प्रत्यंग तोड़े हैं । शुंभ-निशुंभरूपी

मतयामे हाथियोंके लिये तुम स्वयं गिहिरनी हो। तुमने अपने हाथ-  
रुपी समुद्रमें शत्रुओंके दन्त-के-दन्त कुशो दिये हैं ॥३॥ येद, शास्त्र और  
सद्व्यज्जर्मियाले शेषजी तुम्हारा गुणगान करने हैं, परन्तु उमर  
पार पाना उनके लिये यद्वा कठिन है। हे माता ! मुझ तुलसीदासके  
धीरामर्जामें येगा ही प्रण, प्रेम और नेम दो, जैसा चालकका स्वयं  
मेघमें होता है ॥५॥

राग रामकृती

[ १६ ]

जय जय जगजननि देवि, सुर-नर-मुनि-अमुर-सेवि,  
शुक्ति-शुक्ति-दायिनि, भय-हरणि कालिका ।  
मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्वशर्वरीश-वदनि,  
ताप-तिमिर तरुण तरणि-किरणमालिका ॥१॥  
वर्म-वर्म कर कृपाण, शूल-शूल-धनुषबाण,  
घरणि, दलनि दानव दल, रण-करालिका ।  
पूतना-पिशाच-प्रेत-डाकिनि-शाकिनि, समेत,  
भूत-ग्रह-बैताल-स्वग-मृगालि-जालिका ॥२॥  
जय महेश-भामिनी, अनेकरूप-नामिनी,  
समस्त-लोक-स्वामिनी, हिमशैल-बालिका ।  
रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम,  
देहु हैं प्रसन्न पाहि प्रणत-पालिका ॥३॥

भाकार्य—हे जगत्की माता ! हे देवि !! तुम्हारी जय हो, जय हो ।  
 खता, मनुष्य, मुनि और असुर सभी तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम  
 योग और मोक्ष दोनोंकी ही देनेवाली हो । भक्तोंका भय दूर करनेके  
 लिये तुम कालिका हो । कल्याण, सुख और सिद्धियोंकी स्थान हो ।  
 तुम्हारा सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश है । तुम आध्यात्मिक,  
 भाषिणीतिक और आधिदैविक तापरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये  
 मध्याह्नके तरुण सूर्यकी किरण-माला हो ॥१॥ तुम्हारे शरीरपर कवच  
 है । तुम हाथोंमें ढाल-नलवार, त्रिशूल, सांगी और धनुष-बाण लिये हुए  
 हो । दानवोंके दलका संहार करनेवाली हो, रणमें विकरालरूप धारण कर  
 लेती हो । पूतना, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, भूत, ग्रह और  
 वेतालरूपी पक्षी और मृगोंके समूहको पकड़नेके लिये तुम जालरूप  
 हो ॥२॥ हे शिवे ! तुम्हारी जय हो । तुम्हारे अनेक रूप और नाम हैं । तुम  
 समस्त संसारकी स्वामिनी और हिमाचलकी कन्या हो । हे शरणागत-  
 की रक्षा करनेवाली ! मैं तुलसीदास श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें परम  
 प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ, सो प्रसन्न होकर मुझे दो और मेरी  
 रक्षा करो ॥३॥

गंगा-स्तुति

राग रामकली

[ १७ ]

जय जय भगीरथनन्दिनि, मुनि-चय-चकोर-चन्दिनि,  
 नर-नाग-बिबुध-बन्दिनि, जय जङ्ग-बालिका ।

विस्तु-पद-सरोजजासि, इंग-मीगपर विमासि,  
 त्रिपथगासि, पुन्यगामि, पाप-छालिका ॥१॥  
 विमल विपुल बहसि वारि, मीतल प्रयताप-हारि,  
 मँवर धर विमंगतर तरंग-मालिका ।  
 पुरजन पूजोपहार, सोमित ससि धवलधार,  
 मंजन मय-भार, भक्ति-कल्पपालिका ॥२॥  
 निज तटवासी बिहंग, जल-धल-धर पमु-पतंग,  
 फीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका ।  
 तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवंस-धीर,  
 बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥३॥

भावार्थ—हे भगीरथनन्दिनी ! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम  
 मुनियोंके समूहरूपी चकोरोंके लिये चन्द्रिकारूप हो । मनुष्य, नाग  
 और देवता तुम्हारी वन्दना करते हैं । हे जहकी पुत्री ! तुम्हारी  
 जय हो । तुम भगवान् विष्णुके चरणकमलसे उत्पन्न हुई हो; शिवजी  
 के मस्तकपर शोभा पाती हो; स्वर्ग, भूमि और पाताल-इन तीनों  
 मार्गोंसे तीन धाराओंमें होकर बहती हो । पुण्योंकी राशि और  
 पापोंकी धोनेवाली हो ॥१॥ तुम अगाध निर्मल जलको धारण किये हो,  
 वह जल शीतल और तीनों तापोंका हरनेवाला है । तुम सुन्दर मँवर  
 और अति चञ्चल तरंगोंकी माला धारण किये हो । नगर-निवासियोंके  
 पूजाके समय जो सामग्रियाँ भेंट बढायी हैं उनसे तुम्हारी चन्द्रमाके  
 समान धवल धारा शोभित हो रही है । वह धारा संसारके जन्म-मरण-

रूप मारको नाश करनेवाली तथा मन्त्ररूपी कल्पयुक्षकी रक्षाके लिये  
 घास्कारूप है ॥२॥ तुम अपने तीरपर रहनेवाले पक्षी, जलचर,  
 घलचर, पशु, पतंग, कीट और जटाधारी तपस्वी आदि सबका  
 समानमायमें पालन करती हो । हे मोहरूपी महिषासुरकी मारनेके  
 लिये कालिकारूप गंगाजी ! मुझ तुलसीदासको ऐसी बुद्धि दो कि  
 जिसमें धीरघुनाथजीका स्मरण करता हुआ मैं तुम्हारे तीरपर विचरा  
 सकूँ ॥३॥

[ १८ ]

जयति जय मुरसरी जगदखिल-पावनी ।  
 विष्णु-पदकंज-मकरंद इव अम्बुवर वहसि, दुख दहसि अघघृन्द-विद्राविनी  
 मिलित जलपात्र-अज युक्त-हरिचरणरज, विरज-चर-चारि त्रिपुरारि  
 शिर-धामिनी ॥

बहु-कन्या धन्य, पुण्यकृत सगर-सुत, भूधरद्रोणि-विहरणि बहुनामिनी  
 यश, गंधर्व, मुनि, किन्नरोग, दनुज, मनुज मज्जहिं सुकृत-पुंज युत-कामिनी  
 स्वर्ग-सोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रदे, मोह-मद-मदन-पाथोज-हिमयामिनी ३  
 हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीरवर, मध्य धारा विशद, विश्व-अभिरामिनी  
 नील-पर्यंक-कृत-शयन सपेश जनु, सहस्र सीसावली स्रोत सुर-स्वामिनी  
 अमित-महिमा, अमितरूप, भूपावली-मुकुट-मनिबंध त्रैलोक्य पथगामिनी  
 देहि रघुवीर-पद-प्रीति निर्भर मातु, दासतुलसी त्रासहरणि भवभामिनी

भावार्थ—हे गंगाजी ! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम सम्पूर्ण संसारको  
 पवित्र करनेवाली हो । विष्णुभगवान्के चरण-कमलके मकरन्दरसके



## चिनय-पत्रिका

समान सुन्दर जल धारण करनेवाली हो। दुःखोंको मरम करनेवाली और पापोंके समूहका नाश करनेवाली हो ॥१॥ भगवान्की चरणर मिश्रित तुम्हारा निर्मल सुन्दर जल ब्रह्माजीके कमण्डलुमें मरा है, तुम शिवजीके मस्तकपर रहनेवाली हो। हे जाह्नवी ! तुम्हें ध है। तुमने सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार कर दिया। तुम पर्वत कन्दराओंकी विदीर्ण करनेवाली हो। तुम्हारे अनेक नाम हैं ॥२॥ जो गन्धर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य अपनी स्त्रियोंसे तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं वे अनन्त पुण्योंके भागी हो जाते हैं। स्वर्गकी निसेनी हो और ज्ञान-विज्ञान प्रदान करनेवाली हो। मोह और कामरूपी कमलोंके नाशके लिये शिशिर क्रतुकी रात्रि हो। तुम्हारे दोनों सुन्दर तीरोंपर हरे और घने घँतके वृक्ष लगे हैं। उनके बीचमें संसारको मुक्त पहुँचानेवाली तुम्हारी विशाल निघाटा यह रही है, यह ऐसा सुन्दर हृदय है मानो नीले रंगके पलंग सहस्र फनवाले शेषनाग सो रहे हैं। हे देवताओंकी स्वामिनी ! तुम हजारों सोते शेषजीकी फनायली-जैसे शोभित हो रहे हैं ॥४॥ तुम असीम महिमा है, अगणित रूप हैं, राजाओंकी मुकुटमणियोंसे पन्दरीय हो। हे तीनों मार्गोंमें जानेवाली ! हे शिवप्रिये !! हे भव-हाग्निनी जननी !!! भुक्त तुलसीदासकी धारधुनाथजीके चरणोंमें भक्ति प्रेम दो ॥१॥

[ १९ ]

हरति, पाप त्रिबिध ताप मुमिरत मुरसरित ।  
बिलसति महि बन्ध-बेलि मुद, मनोरथ फरित ॥१॥

सोहत ससि धवल धार सुधा-सलिल-मरित ।  
 विमलतर तरंग लसत रघुवर कैसे चरित ॥२॥  
 तो विनु जगदंब गंग कलिजुग का करित ?  
 घोर भव-अपारसिंधु तुलसी किमि तरित ॥३॥

भावार्थ—हे गंगाजी ! स्मरण करते ही तुम पापों और दैहिक, दैविक, भौतिक-इन तीनों तापोंको हर लेती हो । आनन्द और मनोकामनाओंके फलोंसे फली हुई कल्पलताके सदृश तुम पृथ्वीपर शोभित हो रही हो ॥१॥ अमृतके समान मधुर एवं मृत्युसे छुड़ानेवाले जलसे भरी हुई तुम्हारी चन्द्रमाके सदृश धवल धारा शोभा पा रही है । उसमें निर्मल रामचरित्रके समान अत्यन्त निर्मल तरङ्ग उठ रही हैं ॥२॥ हे जगज्जननी गंगाजी ! तुम न होतीं तो पता नहीं कलियुग क्या-क्या अनर्थ करता और यह तुलसीदास घोर अपार संसार-सागरसे कैसे तरता ? ॥३॥

[ २० ]

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि, नभ-पताल-धरनि ।  
 सुर-नर-मुनि-नाग-सिद्ध-मुजन मंगल-करनि ॥१॥  
 देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि ।  
 सगर-सुवन-साँसति-समनि, जलनिधि जल भरनि ॥२॥  
 महिमाकी अवधि करसि बहु विधि-हरि-हरनि ।  
 तुलसी करु बानि विमल, विमल बारि चरनि ॥३॥  
 भावार्थ—हे गंगाजी ! तुम शिवजीके सिरपर विराजती हो; आकाश,

पाताल भीर पृथ्वी-इन तीनों मार्गों में बदनी हुई शोभायमान होती है।  
 देवता, मनुष्य, मुनि, नाग, गिद्ध भीर सज्जनों का तुम कल्याण कार्य  
 हो ॥१॥ तुम देवते ही दुःख, दोष, पाप, ताप भीर क्षुब्धता का नश  
 कर देती हो। तुमने सगरके साठ हजार पुत्रोंको यम-यातनामें सु  
 दिया। जलनिधि समुद्रमें तुम सदा जल भरा करती हो ॥२॥  
 ब्रह्माके कमण्डलुमें रहकर, विष्णुके धरणसे निकलकर और शिवकी  
 के मस्तकपर विराजकर तुम्होंने तीनोंकी महिमा बढ़ा रखी है।  
 हे गंगाजी ! जैसा तुम्हारा निर्मल पापनाशक जल है, तुलसीदासकी  
 चाणीको भी घेसी हो निर्मल बना दो, जिसमें वह सर्वपापनाशक  
 रामचरितका गान कर सके ॥३॥

यमुना-स्तुति

राग विलावल

[ २१ ]

जमुना ज्यों ज्यों लगी बाढ़न।

त्यों त्यों सुकृत-सुभट कलि-भूषहिं, निदरि लगे बहु काढ़न ॥१॥

ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़न।

तुलसिदास जगदध जवास ज्यों अनधमेष लगे डाढ़न ॥२॥

भावार्थ—यमुनाजी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, त्यों-त्यों पुण्यरूपी योद्धा-  
 गण कलिपुगरूपी राजाका निरादर करते हुए उसे निकालने लगे ॥१॥  
 बरसातमें यमुनाजीका जल बढ़कर ज्यों-ज्यों मैला होने लगा, त्यों-

य्यों यमदूतोंका मुख भी काला होता गया। अन्तमें उन्हें कोई भी आसरा नहीं रहा, अब घे किसको यमलोकमें ले जायँ ? तुलसीदास हते हैं कि यमुनाजीके बढ़ते ही पुण्यरूपी मेघने संसारके पापरूपी घासेको जलाकर भस्म कर डाला ॥२॥

### काशी-स्तुति

राग भैरव

[२२]

- सेइय सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी ।  
समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल सुमंगल-रासी ॥ १ ॥
- मरजादा चहुँओर चरन धर, सेवत सुरपुर-वासी ।  
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिबलिंग अमित अचिनासी ॥ २ ॥
- अंतरऐन ऐन भल, धन फल, बच्छ वेद-बिस्वासी ।  
गलकंबल बरुना विभाति जनु, लूम लसति सरिताऽसी ॥ ३ ॥
- दंडपानि भैरव विपान, मलरुचि-खलगन-भयदा-सी ।  
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा-सी ॥ ४ ॥
- मनिकार्निका चदन-ससि सुन्दर, सुरसरि-सुख सुखमा-सी ।  
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पंचकोसि महिमा-सी ॥ ५ ॥
- विश्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा-सी ।  
सिद्धि, सची, सारद पूजाहि, मन जोगवति रहति रमा-सी ॥ ६ ॥

पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गन्ध सुपंचनदासी ।  
 ब्रह्म-जीव-सम रामनाम जुग, आखर बिख-विकासी ॥ ७ ॥  
 चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगनं घासी ।  
 लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच-उदासी ॥ ८ ॥  
 कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कलासी ।  
 तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस कलियुगमें काशीरूपी कामधेनुका प्रेमसहित जीव  
 भर सेवन करना चाहिये। यह शोक, सन्ताप, पाप और रोगका नाश करने  
 वाली तथा सब प्रकारके कल्याणोंकी खान है ॥१॥ काशीके चारों ओर  
 सीमा इस कामधेनुके सुन्दर चरण हैं। स्वर्गवासी देवता इसके चरणों  
 सेवा करते हैं। यहाँके सब तीर्थस्थान इसके शुभ अंग हैं और नाशरहित  
 अगणित शिवलिङ्ग इसके रोम हैं ॥२॥ अन्तर्गृही (काशीका मध्यभाग) इस  
 कामधेनुका ऐनः ( गद्दी ) है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों फल इसके  
 चार धन हैं; वेद-शास्त्रोंपर विश्वास रखनेवाले आस्तिक लोग इसके बच्चे  
 हैं,—विश्वासी पुरुषोंको ही इसमें निवास करनेसे मुक्तिरूपी अमृतमय दूध  
 मिलता है; सुन्दर घरुणा नदी इसकी गल-कंबलके समान शोभा यक्षाती  
 है और भागी नामक नदी पूँछके रूपमें शोभित हो रही है ॥३॥ दण्डघाते  
 भैरव्य इगके र्भाग हैं, पापमें मन रखनेवाले दुष्टोंको उन सींगोंसे या  
 गदा डगती रहती है। लोलकं (कुण्ड) और अिलोचन (एक तीर्थ) इसके  
 नेत्र हैं और कर्णघण्टा नामक तीर्थ इगके कानके घण्टा है ॥४॥ मन्दि-  
 कर्णिका इगका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, गंगातीने मिलनेवाला

• धनोः इ ऊपरका भाग तिममें दूध भग रहता है ।

पाप-ताप-नाशरूपी सुख इसकी शोभा है, भोग और मोक्षरूपी सुखोंसे परिपूर्ण पञ्चकोमीकी परिक्रमा ही इसकी महिमा है ॥१॥ दयालु-हृदय विध्वनायत्री इस कामधेनुका पालन-पोषण करते हैं और पार्यंती-भरींगी ज्येष्ठमयी जगज्जननी इसपर सदा प्यार करती रहती है, भाठों मिरियाँ, सरस्यता और इन्द्राणी शची इसका पूजन करती हैं, जगत्का पालन करनेवाली लक्ष्मी-भरींगी इसका गन्ध देखती रहती है ॥६॥ 'नमः शिषाष' यह पञ्चाक्षरी मन्त्र ही इसके पाँच प्राण हैं । भगवान् विन्दुमाधय ही आनन्द है । पञ्चनदी (पञ्चगङ्गा) नीर्य ही इसके पञ्चगव्य० हैं । यहाँ संसारकी प्रकट करनेवाले रामनामके दो अक्षर 'रकार' और 'मकार' इसके अधिष्ठाता प्रह्व और जीव हैं ॥ ७ ॥ यहाँ भग्नेवाले जीयोंका सय सुकर्म और कुकर्मरूपी घाम यह चर जाती है, जिससे उनको यहाँ परमपदरूपी पवित्र दूध मिलता है, जिसको संसारके विरक्त महात्मागण चाहा करते हैं ॥८॥ पुराणोंमें लिखा है कि भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण कला लगाकर अपने हाथोंसे इसकी रचना की है । हे तुलसीदास ! यदि तू सुखी होना चाहता है तो काशीमें रहकर श्रीरामनाम जपा कर ॥९॥

चित्रकूट-स्तुति

राग वसन्त

[ २३ ] ✓

सय सौच-विमोचन चित्रकूट । कलिहरन, करन कल्याण घूट ॥१॥  
 सुचि अवनि मुहावनि आलबाल । कानन विचित्र, वारी विसाल ॥२॥  
 मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच । धर वारि, विपम नर नारि नीच ॥३॥

मंगला शेषक  
 ३१/११/१९०६ ईश, दही, घी, गोबर और गोमूत्र ।

साखा सुयुग, भूरुह-सुपात । निरस्र मधुवर, मृदु मलय वात ॥  
 सुक, पिक, मधुकर, मुनिवर विहार । साधन प्रघन, फल चारि चार ॥  
 भव-घोरघाम-हर सुखद छाँह । थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह ॥  
 साधक-सुपथिक बड़े भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥  
 रस एक, रहित-गुन-करम-काल । सिय राम लखन पालक कृपाल ॥  
 तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥

भावार्थ—चित्रकूट सब तरहके शोकोसें छुड़ानेवाला है । यह कल्पित  
 का नाश करनेवाला और कल्याण करनेवाला हरा-भरा वृक्ष है ॥  
 पवित्र भूमि इस वृक्षके लिये सुन्दर धाल्हा और विविध वन ही इस  
 यही भारी घाड़ है ॥२॥ मन्दाकिनीरूपी मालिन इसे अपने उस उच  
 जलसे सदा सींचती है, जिसमें दुष्ट और नीच स्त्री-पुरुषोंके नि  
 स्नान करनेसे भी उसपर कोई बुरा असर नहीं पड़ता ॥३॥ यहाँके सुन  
 शिखर ही इसकी शाखाएँ और वृक्ष सुन्दर पत्ते हैं । झरने मधुर मकर  
 है और चन्दनकी सुगन्धसे मिली हुई पवन ही इसकी कोमलता है ॥४॥  
 यहाँ विहार करनेवाले श्रेष्ठ मुनिगण ही इन वृक्षमें रमनेवाले ती  
 कोयल और मौरें हैं । उनके नानाप्रकारके साधन इसके फूल हैं औ  
 अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-ये ही चार सुन्दर फल हैं ॥५॥ इस वृक्षकी छा  
 संसारकी जन्म-मृत्युरूप कड़ी धूपका नाश कर सुन्दर सुप्त देती है  
 जानकीनाथ धीरामने इसके प्रभावको सदाके लिये स्थिर कर दि  
 है ॥६॥ साधकरूपी श्रेष्ठ पथिक बड़े सौभाग्यसे इस वृक्षको पाकर, इस  
 प्रकारके मनोवाञ्छित सुख प्राप्त करके वृत्त हो जाते हैं ॥७॥ य

—याके तीनों गुण, काल और कर्मसे रहित सदा एकरस है, अर्थात्  
 मके संघन करनेवाले माया, काल और कर्मके यन्त्रनसे छूट जाते हैं,  
 योंकि कृपालु सीता, राम और लक्ष्मण इन्के रक्षक हैं ॥८॥ हे तुलसी-  
 त्तम ! ओ तू श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम चाहता है तो विघ्नकृष्ट-पर्यंतका  
 नेहछल नियमपूर्वक संघन कर ॥९॥

राग पद्महरा

[ २४ ]

अथ चित्तेति विघ्नकृष्टहि षड् ।  
 कोपित कलि, लोपित मंगल मगु, विलमत पदत मोह-माया-मलु । १।  
 भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुवर-विहारथलु ।  
 सैल-सुंग मवभंग-हेतु लरु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु ॥२॥  
 जहै जनमे जग-जनक जगतपति, बिधि-हरि-हर परिहरि प्रपंच छलु ।  
 सकृत् प्रपेम करत जेहि आद्यम, विगत-विपाद भये पारथ नलु ॥३॥  
 न करु बिलंब बिचारु चारुमति, बरप पाछिले मम अगिले षलु ।  
 मंत्र मो जाइ जपहि, ओ जपि भे. अजर अमर हर अचइ इलाहलु ॥४॥  
 रामनाम-जप जाग करत नित, मज्जत पय पावन पौरत जलु ।  
 करिहै राम भावता मनका, सुर-भाषन, अनयान महाकलु ॥५॥  
 कामद मनि कामता-कलपतरु मो जुग-जुग जागत जगतीवलु ।  
 तुलसी तोहि विनेपि प्दिये, एक प्रतीति प्रीति एहै षलु ॥६॥



मायार्थ—हे चित्त ! अब तो येनकर चित्रकूटकी घल । कलिबुद्धि  
 क्रोध कर धर्म और ईश्वरमन्त्रिरूप कल्याणके मार्गोंका लोप कर दिया ।  
 मोह, माया और पापोंकी निम्न वृद्धि हो रही है ॥१॥ चित्रकूटमें श्रीरामजी  
 के चरणोंसे चिदिन भूमिका और उनके विहारके स्थान वनका दर्शन कर  
 वहाँ कपट, पाण्डव और दम्भके दल (समूह) का नाश करनेवाले पर्वतों  
 उन शिखरोंको देग, जो जन्म-मरणरूप संसारसे छुटकारा मिलनेके  
 कारण हैं ॥२॥ जहाँपर जगदिपता जगदीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिवने सर्व  
 अनसूपाके पुत्ररूपसे प्रपञ्च और छल छोड़कर जन्म लिया है । जिस  
 चित्रकूटरूपी आधममें एक बार प्रवेश करते ही जुएमें-हारकर वन-वन  
 भटकते हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डव और राजा नलका सारा दुःख दुःख  
 हो गया ॥३॥ वहाँ जानेमें अब देर न कर, अपनी अच्छी बुद्धिसे यह ठो  
 विचार कर कि जितने धर्म धीत गये सो तो गये, अब आयुके जितने पल  
 बाकी हैं, वे धीते हुए वर्षोंके समान हैं । एक-एक पलको एक-एक वर्षके  
 समान बहुमूल्य समझकर, मृत्युको समीप जानकर, जल्दी चित्रकूट जाकर  
 उस श्रीराम-मन्त्रका जप कर, जिसे जपनेसे श्रीशिवजी कालकूट नि  
 पीनेपर भी अजर-अमर हो गये ॥४॥ जब तू वहाँ निरन्तर श्रीराम-नाम  
 जपरूपी सर्वश्रेष्ठ यज्ञ और पयस्विनी नदीके पवित्र जलमें स्नान तथा  
 उसके जलका पान करता रहेगा, तब श्रीरामजी तेरी मनोकामना पूरी कर  
 देंगे और इस सुखमय साधनसे सहजहाँमें तुझे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-  
 चारों फल दे देंगे ॥५॥ चित्रकूटमें जो कामतानाथ पर्वत है, वही मनोरथ  
 की चिन्तामणि और कल्पवृक्ष है, जो युग-युग पृथ्वीपर  
 ॥ १ ॥ यों तो चित्रकूट सभीके लिये सुखदायक है, परन्तु

तुलसीदास ! तुझे तो विशेषरूपसे उसीके विश्वास, प्रेम और बलपर निर्भर रहना चाहिये ॥६॥

### हनुमत्-स्तुति

राग धनाश्री

[ २५ ]

जयत्यंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-विधु, विबुध-कुल-कैरवानंदकारी ।  
 केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन शोक-संतापहारी ॥१॥  
 जयति जय बालकपि केलि-कौतुक उदित चंडकर-मंडल-ग्रासकर्ता ।  
 राहु-रवि-शक्र पवि-गर्व-खर्वीकरण शरण भयहरण जय भुवन-भर्ता ॥२॥  
 जयति रणधीर, रघुवीरहित, देवमणि, रुद्र-अवतार, संसार-पाता ।  
 विप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आशिपाकारवपुष, विमलगुण, बुद्धि-चारिधि-विधाता  
 जयति मुग्धीव ऋक्षादि रक्षण-निपुण, बालि बलशालि-वध-मुख्यहेतू ।  
 जलधि-लंघन सिंह सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर-उत्पात-केतू ४  
 जयति भूनन्दिनी-शोच-मोचन विपिन-दलन घननादबश विगतशंका ।  
 लूमलीलाऽनल-ज्वालमालाकुलिव, होलिकाकरण लंकेश-लंका ॥५॥  
 जयति सौमित्रि-रघुनंदनानंदकर, ऋक्ष-कपि-कटक-संघट-विघायी ।  
 पद्म-चारिधि-सेतु, अमर-मंगल हेतु, मानुकूल-केतु-रणविजयदायी ॥६॥  
 जयति जय वज्रतनु दशन नख मुख विकट, चंड-भुजदंड तरु-शैल-पानी ।  
 समर-तैलिक-यंत्र तिल-तमीचर-निकर, पेरि डारे सुभट घालि धानी ७

## धिनय-पत्रिका

जयति दशयंठ-षट्कर्ण-चारिद-नाद-कदन-कारन, कालिनेनिहंता  
अघटघटना-सुघट सुघट-विघटन विकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-रत  
जयति विश्व-विख्यात धानंत-विस्दावली, विदुष धरनत वेद विमल व  
दास तुलसी शस शमन सीतारमण संग शोभित राम-राजधानी ॥१॥

भावार्थ—हे हनुमान्जी ! तुम्हारी जय हो । तुम अक्षरीके गर्भमें  
समुद्रसे चन्द्ररूप उत्पन्न होकर देव-कुल-रूपी कुमुदोंको प्रफुल्लित करने  
वाले हो, पिता केसरीके मुन्दर नम्र-रूपी चकोरोंको आनन्द देनेवाले हो  
और समस्त लोकोंका शोक-सन्ताप हरनेवाले हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो  
जय हो । तुमने वचनमें ही चाललीलासे उदयकालीन प्रचण्ड सूर्य  
मण्डलको लाल-लाल खिलौना समझकर निगल लिया था । उस समय  
तुमने राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्रका गर्व चूर्ण कर दिया था । हे शरणागत  
भय हरनेवाले ! हे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले !! तुम्हारी जय  
हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो, तुम रणमें बड़े धीर, सदा धीरामज्जित  
हित करनेवाले, देव-शिरोमणि रुद्रके अवतार और संसारके रक्षक  
हो । तुम्हारा शरीर ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वाद  
मूर्तिमान् रूप है । तुम निर्मल गुण और बुद्धिके समुद्र तथा विधात  
हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो ! तुमने सुग्रीव तथा रीछ (जाम्बवन्त) आदि  
की कुशलतासे रक्षा की । महा बलवान् वालिके मरवानेमें तुम्हें  
मुख्य कारण हो । तुम्हें समुद्र लौंघनेके समय सिंहिका राक्षसीके  
मर्दन करनेमें सिंहरूप तथा राक्षसोंकी लङ्कापुरीके लिये धूमके  
( २७७ तारे ) रूप हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो । तुम श्रीसीतार्जीको राम

ज सन्देशा सुनाकर उनकी चिन्ता दूर करनेवाले, रावणके अशोक-  
 त्तको उजाड़नेवाले हो। तुमने अपनेको निर्दशक हीकर मेघनादसे घृणा ख-  
 िँ धवा लिया था। अपनी पूँछकी लीलासे अग्निकी घघकती हुई  
 टपटोंसे ध्याकुल हुए रावणकी लङ्कामें चारों ओर होली जला दी थी  
 ॥१॥ तुम्हारी जय हो। तुम श्रीराम-लक्ष्मणकी आनन्द देनेवाले, रीछ  
 और चन्द्रोंकी सेना इकट्ठी कर समुद्रपर पुल बाँधनेवाले, देवताओंका  
 कल्याण करनेवाले और सूर्यकुल-केतु श्रीरामजीको संग्राममें विजय-लाभ  
 करानेवाले हो ॥६॥ तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम्हारा शरीर, दौँत, नख  
 और विकराल मुख वज्रके समान है। तुम्हारे भुजदण्ड बड़े ही प्रचण्ड  
 हैं, वृक्षों और पर्वतोंको तुम हाथोंपर उठानेवाले हो। तुमने संग्रामरूपी  
 कोल्होंमें राक्षसोंके समूह और घड़े-घड़े योद्धा-रूपी तिलोंको डाल-डाल-  
 कर घानीकी तरह पेल डाला ॥७॥ तुम्हारी जय हो। रावण, कुम्भकर्ण  
 और मेघनादके नाशमें तुम्हीं कारण हो; कपटी कालनेमिकी तुम्हींने मारा  
 था। तुम असम्भवको सम्भव और सम्भवको असम्भव कर दिखानेवाले हो।  
 तुम बड़े विकट हो। पृथ्वी, पाताल, समुद्र और आकाश सभी स्थानोंमें  
 तुम्हारी अबाधित गति है ॥८॥ तुम्हारी जय हो। तुम विश्वमें विख्यात  
 हो, धीरताका याना सदा ही कसे रहते हो। विद्वान् और वेद अपनी  
 विशुद्ध वाणीसे तुम्हारी विरदावलीका वर्णन करते हैं। तुम तुलसीदासके  
 भव-भयको नाश करनेवाले हो और अयोध्यामें सीतारमण श्रीरामजीके  
 साथ सदा शोभायमान रहते हो ॥ ९ ॥

[ २६ ]

जयति मर्कटाधीश, मृगराज-विक्रम, महादेव, मुद-भंगलालय, कपाली ।  
 मोह-मद-क्रोध-कामादि-खल-संकुला, घोर संसार-निशि किरणमाली ॥१॥

## विनय-पत्रिका

जयति दशकंठ-घटकर्ण-चारिद-नाद-कदन-कारन, कालिनेमि-इन्द्रा ।  
अघटघटना-गुघट गुघट-विघटन विकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-पट ।  
जयति विश्व-विरूपात बानंत-विरुदावली, विद्रुप वरनत वेद विमल वन ।  
दास तुलसी दास शमन मीतारमण संग शोभित राम-राजधानी ॥१॥

भाषार्थ—हे हनुमान्जी ! तुम्हारी जय हों । तुम अञ्जनीके गर्भसे समुद्रसे चन्द्ररूप उत्पन्न होकर देव-कुल-रूपी कुमुदोंको प्रफुल्लित करने वाले हो, पिता केशरीके सुन्दर नेत्र-रूपी चकोरोंको आनन्द देनेवाले हो और समस्त लोकोंका शोक-सन्ताप हरनेवाले हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो । तुमने वचपनमें ही बाललीलासे उदयकालीन प्रचण्ड मूर्ति मण्डलको लाल-लाल खिलौना समझकर निगल लिया था । उम समान तुमने राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्रका गर्व चूर्ण कर दिया था । हे शरणागतोंके भय हरनेवाले ! हे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले !! तुम्हारी जय हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो, तुम रणमें बड़े धीर, सदा धीरामजीका हित करनेवाले, देव-शिरोमणि रुद्रके अयतार और संसारके रक्षक हो । तुम्हारा शरीर ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादकी भूर्तिमान् रूप है । तुम निर्मल गुण और बुद्धिके समुद्र हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो ! तुमने सुग्रीव-की कुशलतासे रक्षा की । महा-मुख्य कारण हो । तुम्हीं समुद्र-मर्दन करनेमें सिंहरूप तथा (पुच्छल तारे) रूप

दुष्टोंसे व्याप्त घोर संसाररूपी अन्धकारमयी रात्रिके नाश करनेवाले तुम साक्षान् मूर्त्य हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो। तुम्हारा जन्म अजनीरूपी अदिति (देव-माता) और घानरोंमें सिंहके समान केसरीरूपी कदयपसे हुआ है। तुम गतके कष्टोंके हरनेवाले हो तथा लोक और लोकपालरूपी चकवा-फची और कमलोंका शोक नाश करनेवाले साक्षात् कल्याण-मूर्ति मूर्त्य हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो। तुम्हारा शरीर बड़ा विशाल और भयङ्कर है, त्येक अंग बज्रके समान है। बड़े भारी भुजदण्ड हैं, बज्रके समान नख और सुन्दर दाँत शोभित हो रहे हैं। तुम्हारी पूँछ बड़ी लम्बी है, शत्रुओंके तंहारके लिये तुम अनेक प्रकारके अस्त्र, शस्त्र और पर्यंतोंको लिये रहते हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो। तुम श्रीसीताजीके शोक-सन्तापका नाश करनेवाले और धीराम-लक्ष्मणके आनन्दरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले हो। बन्दर-स्वभावसे खेलमें ही पूँछसे लंका जला देनेवाले, अशोक-वनको उजाड़नेवाले, तरण तेजके पुञ्ज मध्याह्नकालके सूर्यरूप हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो। तुम समुद्रपर पत्थरका पुल बाँधनेवाले, राक्षसोंके महान् आनन्दके नाश करनेवाले, दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनादके मर्म-स्थानोंको तोड़कर उनके कर्मोंका फल देनेवाले हो ॥५॥ तुम्हारी जय हो। तुम त्रिभुवनके भूषण हो, विभीषणको राम-भक्तिका घर देनेवाले हो और रणमें धीरामजीके साथ बड़े-बड़े काम करनेवाले हो। लक्ष्मण और सीताजी-सहित पुष्पक-विमानपर विराजमान सूर्यकुलके सूर्य धीरामजीकी कीर्ति-पताका तुम्हीं हो ॥६॥ तुम्हारी जय हो। तुम शत्रुओंद्वारा किये जानेवाले यन्त्र-मन्त्र, अभिचार (मोहन-उच्चाटन आदि प्रयोगों तथा जादू-टोमे) को प्रसनेवाले तथा गुप्त मारण-प्रयोग और प्राणनाशिनी कृत्या



जयति संग्रामजय, रामसंदेशहर, कौशला-कुशल-कल्याणभापी ।  
 राम-विरहार्क-संतप्त-भरतादि-नरनारि-शीतलकरण कल्पशापी ॥४॥  
 जयति सिंहासनासीन सीतारमण, निरखि निर्भरहरप नृत्यकारी ।  
 राम संभ्राज शोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-विहारी ॥५॥

भावार्थ—हे हनुमानजी ! तुम्हारी जय हो । तुम कल्याणके स्थान,  
 संसारके भारको हरनेवाले, धन्द्रके आकारमें साक्षात् शिव-स्वरूप हो ।  
 [म राक्षसरूपी पतंगोंको भस्म करनेवाली धीररामचन्द्रजीके क्रोधरूपी अग्नि-  
 की ज्वालमालाके मूर्तिमान् स्वरूप हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो, तुम पवन और  
 राजनी देवीको आनन्द देनेवाले हो । नीची गर्दन किये हुए, दुखी सुग्रीव-  
 के दुःखमें तुम सधे धन्धुके समान सहायक हुए थे । तुम राक्षसोंके  
 [रालक्रीधरूपी प्रलय-कालकी अग्निका नाश करनेवाले और सिद्ध, देवता  
 तथा स्वप्ननोंके लिये आनन्दके समुद्र हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो, तुम  
 रक्षादत्त रुद्रोंमें और जगत्पूज्य क्षानियोंमें अग्रगण्य हो, संसारभरके  
 शूरवीरोंके प्रसिद्ध सम्राट् हो । तुम सामवेदका गान करनेवालोंमें और  
 कामदेवको जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हो । तुम धीररामजीके हितकारी  
 और धीरराम-भक्तोंके साथ रहनेवाले रक्षक हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो ।  
 तुम संग्राममें विजय पानेवाले, धीररामजीका सन्देश ( सीताजीके पास )  
 पहुँचानेवाले और अयोध्याका कुशल-मंगल ( धीरघुनाथजीसे ) कहने-  
 वाले हो । तुम धीररामजीके वियोगरूपी मूर्खमें जलते हुए भरत आदि  
 अयोध्यावासी नर-नारियोंका ताप मिटानेके लिये कल्पवृक्ष हो ॥४॥  
 तुम्हारी जय हो । तुम धीररामजीको राज्य-सिंहासनपर विराजमान देख,



## पिनय-पत्रिका

मादि मूर देवियोंका नाश करनेवाले हो । शार्ङ्गिनी, इक्षि  
भूतना, प्रेत, घंताल, मृत और प्रमथ आदि भयानक जीवोंके नियन्त्र  
कर्ता शामक हो ॥७॥ तुम्हारी जय हो । तुम वेदान्तके जाननेवाले, न  
प्रकारकी विधाओंमें विनायक, चार वेद और छः वेदाङ्ग (शिक्षा, इ  
ध्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) के माता तथा शुद्ध प्रथके स्वर  
का निरूपण करनेवाले हो । ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यके पात्र होय  
तुम्हारे इनको अच्छी तरहसे जाना है । तुम समर्थ हो । इमाने मुक्त  
और नारद आदि देवर्षि सदा तुम्हारी निर्मल गुणायली गाथा करते  
॥८॥ तुम्हारी जय हो । तुम काल ( दिन, घड़ी, पल आदि) वि  
(सत्य, रज, तम) कर्म (सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण) और मायाका  
करनेवाले हो । तुम्हारी स्थिति ज्ञानमें सदा निश्चल रहती है । सत्य  
अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप महाप्रतोंके पालनमें तुम  
सदा रत हो और सदा धर्मका आचरण करते हो । सिद्ध, देवगण और  
योगिराज सदा तुम्हारी सेवा किया करते हैं । हे भय-भयरूपी अन्धकारका  
नाश करनेवाले सूर्य ! यह दास तुलसी तुम्हारी शरण है ॥९॥

[ २७ ]

जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी ।  
राम-रोपानल-ज्वालमाला-मिष ध्वांतचर-सलम-संहारकारी ॥१॥  
जयति मरुदंजनामोद-भंदिर, नतग्रीव सुग्रीव-दुःखैकबंधो ।  
यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालामिहर, सिद्ध-सुर-सजनानंद-सिंधो ॥२॥  
जयति रुद्राग्रणी, विश्व-बंधाग्रणी, विश्वविख्यात-भट-चक्रवर्ती ।  
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती ॥३॥

जयति संग्रामजय, रामसंदेसहर, कौशला-कुशल-कल्याणभापी ।

राम-विरहार्क-संतप्त-भरवादि-नरनारि-शीतलकरण कल्पशापी ॥४॥

जयति सिंहासनासीन सीतारमण, निरखि निर्भरहरण नृत्यकारी ।

राम संभ्राज शोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-विहारी ॥५॥

मावार्थ—हे हनुमानजी ! तुम्हारी जय हो । तुम कल्याणके स्थान, संसारके भारको हरनेवाले, बन्दरके आकारमें साक्षात् शिव-स्वरूप हो । [म राक्षसरूपी पतंगोंको भस्म करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीके क्रोधरूपी अग्नि-विज्वालमालाके मूर्तिमान् स्वरूप हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो, तुम पवन और वज्रनी देवीको आनन्द देनेवाले हो । नीची गर्दन किये हुए, दुम्बी सुग्रीव-के दुःखमें तुम सच्चे बन्धुके समान सहायक हुए थे । तुम राक्षसोंके कराल क्रोधरूपी प्रलय-कालकी अग्निका नाश करनेवाले और सिद्ध, देवता तथा सज्जनोंके लिये आनन्दके समुद्र हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो, तुम एकादश रुद्रोंमें और जगत्पूज्य ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हो, संसारभरके शूरवीरोंके प्रसिद्ध सम्राट् हो । तुम सामवेदका गान करनेवालोंमें और कामदेवको जीतनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हो । तुम श्रीरामजीके हितकारी और श्रीराम-भक्तोंके साथ रहनेवाले रक्षक हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो । तुम संग्राममें विजय पानेवाले, श्रीरामजीका सन्देश ( सीताजीके पास ) पहुँचानेवाले और अयोध्याका कुशल-संगल ( धीरघुनाथजीने ) कहने-वाले हो । तुम श्रीरामजीके वियोगरूपी सूर्यसे जलते हुए भरत आदि अयोध्यावासी नर-नारियोंका ताप मिटानेके लिये कल्पवृक्ष हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो । तुम श्रीरामजीको राज्य-सिंहासनपर विराजमान देख,

## विनय-पत्रिका

आनन्दमें विह्वल होकर नाचनेवाले ही। जैसे श्रीरामजी सिंहासनपर विराजित हो शोभा पा रहे थे, वैसे ही तुम इस तुलसीदास की मानसरूपी अयोध्यामें सदा विहार करते रहो ॥१॥

[ २८ ]

जयति वात-संजात, विख्यातविक्रम, बृहद्बाहु, बलविपुल, बालधिरिन्द्र  
जातरूपाचलाकारविग्रह, लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला ॥१॥  
जयति बालार्क वर-चदन, पिंगल-नयन, कपिश-कर्कश-जटाजूटघाती  
विकट भृकुटी, वज्र दशन नख, वैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी ॥२॥  
जयति भीमार्जुन-व्यालघ्न-गर्बहर, घनंजय-रथ-त्राण-केत  
भीष्म-द्रोण-कर्णादि-पालित, कालदृक सुयोधन-चमू-निघन-हेतू ॥३॥  
जयति गतराजदातार, हंतार संसार-संकट, दनुज-दर्पहाती  
ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-व्याधिवाधा-शमन घोर मारी ॥४॥  
जयति निगमागम ध्याकरण करणलिपि, काव्यकांतुक-कला-कोटि-नि  
मामगायक, मत्त-कामदायक, वामदेव, श्रीराम-प्रिय-प्रेम-बंधो ॥५॥  
जयति धर्मांशु-संदग्ध-संपाति नवपक्ष-लोचन-दिव्य-देहदाता  
कालकलि-पापसंताप-संकुल सदा, प्रणत तुलसीदास सात-माता ॥

भावार्थ—हे शत्रुमानत्री ! तुम्हारी जय हो। तुम पवनसे उरपन्न हुए  
तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है। तुम्हारी भुजाएँ बड़ी विशाल हैं, तुम्हारे  
बल धरात है। तुम्हारी पूँछ बड़ी लम्बी है। तुम्हारा शरीर सुमेरु-पर्यं

समान विद्याल पयं तेजस्वी है। तुम्हारी रोमाचरी विजलीकी रेखा  
 अथवा ज्वालामोकी मालाके समान जगमगा रही है ॥१॥ तुम्हारी  
 जय हो। तुम्हारा मुग उदय-कालीन सूर्यके समान सुन्दर है। पाले नेत्र है,  
 तुम्हारे मिरपार भूरे रंगकी कठोर जटाभोंका जूड़ा बंध रहा है। तुम्हारी  
 माँटे टेढ़ी हैं। तुम्हारे शीत और नग पत्रके समान हैं, तुम शत्रुरूपी मदमत्त  
 हाथियोंके दलकों विदीपन करनेवाले सिंहके समान हो ॥२॥ तुम्हारी जय  
 हो। तुम मीममेन, मजुन और गरुड़के गर्भकी हरनेवाले तथा मजुनके रथ-  
 की पताकापर घटकर उमकी वरदा करनेवाले हो। तुम भीष्मपितामह,  
 द्रोणाचार्य और कर्ण आदिमें शिक्षित कालकी दृष्टिके समान भयानक,  
 दुर्योधनकी महान् मनाका नाश करनेमें मुख्य कारण हो ॥३॥ तुम्हारी  
 जय हो। तुम सुर्पायके रायें हुए राज्यको पितरमें दिलानेवाले, संसारके  
 संकटोंका नाश करनेवाले और दानयोंके दर्पको चूर्ण करनेवाले हो। तुम  
 अतिशृष्टि, अनाशृष्टि, टीडी, चूहे, पक्षी और राज्यके आक्रमणरूप गेतीमें  
 याधक छः प्रकारकी ईति, महाभय, प्रह, प्रेत, घोर, अग्निकाण्ड, रोग,  
 बाधा और महामारी आदि हेरोंके नाश करनेवाले हो ॥४॥ तुम्हारी  
 जय हो। तुम वेद, शास्त्र और व्याकरणपर भाष्य लिखनेवाले और काव्य-  
 के कौतुक तथा करोंदों कलाओंके समुद्र हो। तुम सामयेदका गान  
 करनेवाले, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले साशान् शिष्यरूप हो और  
 श्रीरामके प्यारे प्रेमी बन्धु हो ॥५॥ तुम्हारी जय हो। तुम सूर्यसे जले  
 हुए मन्वारी नामक (जटायुके भारी) शूद्रको नये पंख, नेत्र और दिव्य  
 शरीरके देनेवाले हो। और कलिकालके पाप-सन्तापोंसे पूर्ण इस  
 शरणागत तुलसीदासके माता-पिता हो ॥६॥

जयति निर्भरानंद-संदोह कपिकेसरी, कंसरी-सुवन सुवनैकमर्षी ।  
 दिव्य भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे, मक्त-संताप-चिंतापहर्त्री ॥१॥  
 जयति धर्मार्थ-कामापवर्गद विभो, ब्रह्मलोकादि-वैभव-विरागी ।  
 वचन-मानस-कर्म सत्य-धर्मव्रती, जानकीनाथ-चरणानुरागी ॥२॥  
 जयति विहगेश-त्रलबुद्धि-त्रेगाति-मद-मथन, मनमथ-मथन, ऊर्ध्वरेता ।  
 महानाटक-निपुण, कोटि-कविकुल-तिलक, गानगुण-गर्व-गंधर्व-जेता ।  
 जयति मंदोदरी-केश-कर्पण, विद्यमान दशकंठ भट-मुकुट मानी ।  
 भूमिजा-दुःख संजात-रोपांतकृत जातना जंतु कृत जातुधानी ॥३॥  
 जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच, लोचन सजल, शिथिल बाणी ।  
 रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर, पाहि, दास तुलसी शरण, शूलपाणी ॥४॥

भावार्थ—हे हनुमान्जी ! तुम्हारी जय हो । तुम पूर्ण आनन्दके समान  
 ध्यानरौमें साक्षात् केसरी सिंह (धर शेर), कंसरीके पुत्र और संसार  
 एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हो । तुम ब्रह्मणी-रूपी दिव्य भूमि  
 सुन्दर स्थानमें निकली हुई मनोहर मणि हो और भक्तोंके सन्ताप  
 विघ्नाओंको गदा नाश करते हो ॥१॥ हे विभो ! तुम्हारी जय हो । तुम  
 धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले हो, ब्रह्मलोकके समस्त मोक्ष  
 विधियोंमें घोरार्यवान् हो । मन, यथन और कर्ममें सत्यरूप धर्मके प्रत्यक्ष  
 पालन करनेवाले हो और श्रीजानकीनाथ रामजीके चरणोंके परम प्रेमी  
 ॥२॥ तुम्हारी जय हो । तुम गदगदके बाल, बुद्धि और धैर्यके मङ्गल

गर्वकी खर्व करनेवाले तथा कामदेवके नाश करनेवाले बाल-ब्रह्मचारी  
 हैं। तुम बड़े-बड़े नाटकोंके निर्माण और अभिनयमें निपुण हो, करोड़ों  
 महाकवियोंके कुलशिरोमणि और गान-विद्याका गर्व करनेवाले गन्धर्वोंपर  
 बेजय पानेवाले हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो। तुम वीरोंके मुकुटमणि, महा  
 अभिमानी रावणके सामने उसकी स्त्री मन्दोदरीके बाल खाँचनेवाले हो।  
 तुमने श्रीजानकीजीके दुःखको देखकर उत्पन्न हुए क्रोधके वश हो  
 राक्षसियोंको ऐसा क्लेश दिया, जैसा यमराज पापी प्राणियोंको दिया  
 करता है ॥४॥ तुम्हारी जय हो। श्रीरामजीका चरित्र सुनते ही तुम्हारा  
 शरीर पुलकित हो जाता है, तुम्हारे नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भर आते हैं,  
 तुम्हारी वाणी गद्गद हो जाती है। हे श्रीरामके चरण-कमल-परागके  
 रमिक भँरे! हे हनुमान-रूपी त्रिशूलधारी शिव! यह दास तुलसी  
 तुम्हारी शरण है, इसकी रक्षा करो ॥५॥

राग सारंग

[ ३० ]

जाके गति है हनुमानकी ।

ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पपानकी ॥१॥

अघटित-घटन, मुषट-विघटन, ऐसी विरुदावलि नहिं आनकी ।

सुमिरत संकट-सोच-विमोचन, भूरति मोद-निधानकी ॥२॥

वापर सानुकूल गिरिजा, हर, लपन, राम अरु जानकी ।

तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्याणकी ॥३॥

## चिनय-पत्रिका

भावार्थ—जिसको (सब प्रकारसे) श्रीहनुमान्जीका आश्रय है, उसकी प्रतिष्ठा पूरी हो ही गयी। यह सिद्धान्त वज्र (हीरे) की लकीरके समान ही है ॥१॥ क्योंकि श्रीहनुमान्जी असम्भव घटनाको सम्भव और सम्भव असम्भव करनेवाले हैं, ऐसे यशका याना दूसरे किसीका भी नहीं। श्रीहनुमान्जीकी आनन्दमयी मूर्तिकी स्मरण करते ही सारे संकट शोक मिट जाते हैं ॥२॥ सब प्रकारके कल्याणोंकी खान श्रीहनुमान्जीकी कृपा-दृष्टि जिसपर है, हे तुलसीदास ! उसपर पार्यती, शङ्कर, लक्ष्मी श्रीराम और जानकीजी सदा कृपा किया करती हैं ॥३॥

राग गौरी

[ ३१ ]

ताकिहै तमकि ताकी ओर को ।

जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोरको ॥१॥

जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन खल बरजोर को ।

षेद-पुरान-भ्रगट पुरुषारथ सकल-सुमट-सिरमोर को ॥२॥

उपपे-थपन, थपे उथपन पन, विषुषपुंद पैदिछोर को ।

त्रयधि लौपि दहि लंक प्रबल बल दलन निसाचर घोर को ॥३॥

त्राको बालधिनाद ममुक्षि जिय दरत दिवाकर भोरको ।

त्राही विषुक-शोट धून किय रद-मद कुलिग फठोरको ॥४॥

अनुकूल बिलोकियो रहत बिलोचन-कोरको ।

अप, मृद-भंगलमय जो गेयक रनरोरको ॥५॥

मगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद्र चकोरको ।

तुलसी फल चारों करतल जंस गावत गईबहोरको ॥६॥

मायायं—जिसे सब प्रकारसे केसरी-नन्दन श्रीहनुमान्जीका भरोसा है, उसकी ओर भला क्रोधमयी दृष्टिसे कौन नाक सकता है? ॥१॥ हनुमान्-जीके समान भक्तोंको प्रसन्न करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला, दुष्टोंका मुँह तोड़नेवाला बड़ा बलवान् संसारमें और कौन है? इनका पुरुषार्थ वेदों और पुराणोंमें प्रकट है। इनके समान समस्त शूरवीरोंमें शिरोमणि दूसरा कौन है? ॥२॥ इनके समान (सुग्रीव, विभीषण आदि) राज्यव्यहृष्टोंका पुनः स्थापित करनेवाला, सिंहासनपर स्थित (पालि, रावण आदि) राजाधिराजोंको राज्यच्युत करनेवाला, द्रेवताओंको प्रण करके रावणके बन्धनसे छुड़ानेवाला, समुद्र लौंघकर लङ्काको जलानेवाला और बड़े-बड़े बलवान् भयानक राक्षसोंके बलका नाश करनेवाला दूसरा कौन है? ॥३॥ जिनके बाल-घिनोदको याद करके अब भी प्रातःकालके सूर्यदेव डरा करते हैं, जिनकी ठोड़ीकी चोटने कठोर यज्ञके धाँतोंका घमण्ड चूर कर दिया ॥४॥ बड़े-बड़े लोकपाल भी जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, ऐसे रणयाँकुरे हनुमान्जीकी जो सेवा करता है, वह सदा निडर रहता है, शत्रुओंपर विजयी होता है और संसारके सभी सुख तथा कल्याणरूप मोक्षको प्राप्त करता है ॥५॥ पूर्णकला-सम्पन्न चन्द्रमा-जैसे श्रीरामचन्द्रजीके मुखको अग्निमेष-दृष्टिसे देखनेवाले चकोररूप हनुमान्जीका नाम भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। हे तुलसीदास ! गयी हुई वस्तुको फिरसे दिला देनेवाले श्रीहनुमान्जीका जो गुण गाता है, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप चारों फल सदा उसकी हथेलीपर धरे रहते हैं ॥६॥



ऐसी तोहि न वृक्षिये हनुमान हठीले ।  
 साहेब कहूँ न रामसे, तोसे न उसीले ॥१॥  
 तेरे देखत सिंहके सिसु मँडक लीले ।  
 जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले ॥२॥  
 हाँक सुनत दसकंधके भये बंधन डीले ।  
 सो बल गयो किधौं भये अब गरवगहीले ॥३॥  
 सेवकको परदा फटे तू समरथ सीले ।  
 अधिक आपुते आपुनो सुनि मान सही ले ॥४॥  
 साँसति तुलसीदासकी सुनि सुजस तुही ले ।  
 तिहूँकाल तिनको भली जे राम रंगीले ॥५॥

भाषार्थ—हे हठीले (मर्कोंके कष्ट धरयस दूर करनेवाले) हनुमान  
 तुझे ऐसा नहीं चाहिये । धीराम-भरीये तो कहीं स्वामी नहीं हैं  
 मेरे समान कहीं महायक नहीं हैं ॥१॥ यह होते हुए भी आज तेरे  
 देगते मुझ सिंहके बच्चेको (तुझ सिंहके महायकके शरणागत  
 बालकको) कलियुगरूपी मँडक (जिसकी तेरे सामने कोई हस्ती नहीं  
 जगले मंगा है । भाव्यम होता है, इन कलियुगने तेरे मन्त्रधर  
 शरणागतकी श्वाके लिये दृष्टकारिता, उदारता आदि गुणोंको





दिया है ॥२॥ एक दिन तेरी हुंकार सुनते ही रावणके अङ्ग-अङ्गके जोड़ हीले पड़ गये थे, वह तेरा बल-पराक्रम आज कहाँ गया ? अथवा क्या तू अब दयालुके बदले घमण्डी हो गया है ? ॥३॥ आज तेरे सेवकका पर्दा फट रहा है, उसे तू सी दे,—जाती हुई इज्जतको बचा दे, तू बड़ा समर्थ है, पहले तो तू सेवकको अपनेसे अधिक मानता, उसकी सुनता और सहता था, पर अब क्या हो गया ? ॥४॥ इस तुलसीदासके संकटको सुनकर उसे दूर करके यह सुयश तू ही ले ले । धास्तवमें तो जो रामके रँगिले मक्त हैं उनका तीनों कालोंमें कल्याण ही है ॥५॥

[ ३३ ]

समरथ सुअन समीरके, रघुवीर-पियारे ।  
 मोपर कीधी तोहि जो करि लेहि भिया रे ॥१॥  
 तेरी महिमा ते चलें चिचिनी-चिया रे ।  
 अंधियारो मेरी बार क्यों, त्रिभुवन-उजियारे ॥२॥  
 केहि करनी जन जानिकें सनमान किया रे ।  
 केहि अघ आँगुन आपने कर डारि दिया रे ॥३॥  
 खाई खोंची माँगि में तेरो नाम लिया रे ।  
 तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागिं जियारे ॥४॥  
 जो तोसों होतौ फिरां मेरो हेतु दिया रे ।  
 तौ क्यों पदन देखावगे कहि बचन श्यारे ॥५॥  
 तोसो ग्यान-निधान को मरबग्य दिया रे ।  
 हाँ समुद्रत माई-द्रोहकी गति छार छिया रे ॥६॥

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिधा रे ।

तहँ तुलसीके कौनको काको तकिया रे ॥७॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् पवनकुमार ! हे रामजीके प्यारे ! तुझे मुझ पर जो कुछ करना हो सो मैया भयो कर ले ॥१॥ तेरे प्रतापसे इन्हीं चिचों भी ( रुपय-अशरफ़ीकी जगद ) चल सकते हैं, अर्थात् यदि तू चाहे तो मेरे-जैसे निकम्मोंकी भी गणना मतोंमें हो सकती है। फिर मेरोलिये त्रिभुवन-उजागर ! इतना बंधेरा क्यों कर रक्खा है ? ॥२॥ पहले मैं कौन-सी अच्छी करनी जानकर तँने मुझे अपना दास समझा था तयाने सम्मान किया था और अब किस पाप तथा अवगुणसे मुझे हाथसे भँव दिया, अपनाकर भी त्याग दिया ? ॥३॥ मैंने तो सदासे ही तेरे नाम टुकड़ा माँगकर खाया, तेरी बलैया लेता हूँ, मैं तो तेरे ही बलके मारने जगत्में उजागर होकर अबतक जीता रहा हूँ ॥४॥ जो मैं तुमसे विमुख हो तो मेरा हृदय ही उसमें कारण होता, फिर मैं निज-परिवारके मनुष्य तरह भली-बुरी सुनाकर तुझे अपना मुँह कैसे दिखाता ? ॥५॥ तू मनकी सब कुछ जानता है, क्योंकि तेरे समान ज्ञानकी शक्ति और मनकी जाननेवाला दूसरा कौन है ? यह तो मैं भी समझता हूँ कि सबके साथ द्रोह करनेवालेको नष्ट-भ्रष्ट हो जाना पड़ता है ॥६॥ तेरे साथ श्रीरामजी और स्वामिनी श्रीसीताजी सरीखी हैं, यहाँ तुलसीदास तेरे सिधा और किस मनुष्यका और किस वस्तुका सहारा है ! इतकि तू ही मुझे यहाँतक पहुँचा दे ॥७॥

[ ३४ ]

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन-दुखारी ।  
 इनको बिलगु न मानिये, बोलहिं न विचारी ॥१॥  
 लोक-रीति देखी सुनी, ब्याकुल नर-नारी ।  
 अति बरपे अनवरपेहूँ, देहिं देवहिं गारी ॥२॥  
 नाकहि आये नाथसों, साँसति भय भारी ।  
 कहि आयो, कीबी छमा, निज ओर निहारी ॥३॥  
 समै साँकरे सुभिरिये, समरथ हितकारी ।  
 सो सब चिधि ऊवर करै, अपराध विसारी ॥४॥  
 विगरी सेवककी सदा, साहेबहिं सुघारी ।  
 तुलसीपर तेरी कृपा, निरुपाधि निरारी ॥५॥

भावार्थ—हे हनुमान्जी! भक्ति पीड़ित, अति स्वारथी, अति दीन और  
 अति दुर्गति के कहेका पुरा नहीं मानना चाहिये, क्योंकि ये घबराये हुए  
 रहनेके कारण भले-बुरेका चोलने ॥१॥ संसारमें यह  
 प्रायस देखा-सुना जाता है कि ब्याकुल हुए स्त्री-पुरुष  
 व्याकुल हुए स्त्री-पुरुष देखको परमेश्वर कोई न होनेपर  
 परमेश्वर कोई नवाल नहीं मय-सागरके भारी भयसे  
 भय मुम संकटके समय लोग

यह भी उनके गाने भावगर्भीयों भुलाकर उनकी सब प्रकारसे  
 है ॥४॥ सेवककी भूलोंको मर्यादा स्वामी ही सुधारते भाये हैं ।  
 गुल्मीदासपर तो सुधारी एक निगली ही एवं निरुद्ध रूप है ।

[ ३५ ]

फटु कहिये गाढ़े परं, सुनि समुद्रि सुसाई ।  
 करहिं अनमलेउ को भलो, आपनी मलाई ॥१॥  
 समरथ सुम जो पाइये, वीर पीर पराई ।  
 ताहि तर्कें सब ज्यों नदी पारिधि न बुलाई ॥२॥  
 अपने अपनेको भलो, चहैं लोग लुगाई ।  
 भावै जो जेहि तेहि मजै, सुम असुम सगाई ॥३॥  
 बाँह धोलि दै थापिये, जो निज बरिआई ।  
 बिन सेवा सौं पालिये, सेवककी नाई ॥४॥  
 चूक-चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई ।  
 होत आदरे डीठ है, अति नीच निचाई ॥५॥  
 बंदिछोर बिरुदावली, निगमागम गाई ।  
 नीको तुलसीदासको, तेरियै निकाई ॥६॥

भावार्थ—जय संकट पड़ता है, तभी अपने स्वामीको भला-बुरा कह  
 है, और अच्छे स्वामी यह समझ-बूझकर अपनी मलाईसे उस गुं  
 ॥१॥ समरथ, कल्याणकारी और ऐसे शूरवीरकी

।। कर जो दूसरोंकी विपत्तिमें सहायता देता है, सब लोग उस ओर  
 ऐसे देखा करते हैं, जैसे समुद्रके पास नदियाँ बिना धुलाये ही दौड़-दौड़-  
 हर जाती हैं ॥२॥ संसारमें सभी स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी भलाई चाहते  
 हैं, शुभ-अशुभके नातेसे जो ( देवता ) जिसको अच्छा लगता है, वह  
 उसी ( देवता ) को भजता है । मुझे तो एक तुम्हारा ही भरोसा है ॥३॥  
 जिसे जबरदस्ती अपने बलका भरोसा देकर रख लिया वह यदि तुम्हारी  
 सेवा नहीं करता, तो भी उसे सेवककी तरह पालना चाहिये ॥४॥ भूल  
 और सञ्जलता तो सब मेरी ही है; पर तुम बड़े हो, मुझ-जैसे अपराधियोंको  
 क्षमा करनेमें ही तुम्हारी बड़ाई है । यह तो सभी जानते हैं कि आदर  
 करनेसे नीच भी ढीठ हो जाता और नीचता करने लगता है ॥५॥ वेद-  
 शास्त्र गाते हैं कि तुम बन्धनोंसे छुड़ानेवाले हो । मुझ तुलसीदासका  
 भला अथ तुम्हारी भलाईसे ही होगा, अन्यथा मैं तो किसी भी योग्य  
 नहीं हूँ ॥ ६ ॥

राग गौरी

[ ३६ ]

मंगल-मूरति मारुत-नंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥१॥  
 पवनतनय संतन-हितकारी । हृदय विराजत अवघ-विहारी ॥२॥  
 मातु-पिता, गुरु, गनपति, सारद । सिवा-समेत संभु, सुक, नारद ॥३॥  
 चरन बंदि विनवाँ सब काहू । देहु रामपद-नेह-निवाहू ॥४॥  
 बंदौ राम-लखन-चैदेही । जे तुलसीके परम सनेही ॥५॥

भावार्थ—पवन-कुमार हनुमान्जी कस्याणकी मूर्ति हैं । सारी बुराईयों-  
 को जड़से उखाड़नेवाले हैं ॥१॥ पवनके पुत्र हैं, सन्तोंका हित करनेवाले





भावते भरतके, सुमित्रा-सीताके दुलारे,  
चातक चतुर राम स्वाम घनके ॥  
बल्लभ उरमिलाके, सुलभ सनेहवस,  
धनी धन तुलसीसे निरघनके ॥४॥

भावार्थ—हे प्यारे लखनलालजी ! तुम भक्तोंका हित करनेवाले हो । शरण करते ही तुम संकट हर लेते हो । सब प्रकारके सुन्दर कल्याण करनेवाले, अपने प्रणकी पालनेवाले और शीनोंपर कृपा करनेवाले हो ॥१॥ पृथ्वीको धारण करनेवाले, संसारका भार दूर करनेवाले, बड़े साहसी और शेषनागके अघतार ही । अपने प्रण और व्रतकी सत्य करनेवाले, धर्मके परम प्रेमी तथा निर्मल मन, ध्यान और कर्मवाले हो ॥२॥ तुम सुन्दरताके भण्डार हो, हाथोंमें धनुष-बाण धारण किये और कमरमें तरकम कसे हुए हो, तुम विश्व-विख्यात महान् वीर हो ! और बड़े-बड़े संग्राममें विजय प्राप्त करनेवाले हो । तुम सेयकोंको सुख देनेवाले, महा-बली, सब प्रकारसे योग्य और जानकीनाथ श्रीरामकी गुणायलीके गानेवाले हो ॥३॥ तुम भरतजीके प्यारे, सुमित्रा और सीताजीके दुलारे तथा राम-रूपी स्वाम भेषके चतुर चातक, उर्मिलाजीके पति, प्रेमसे सहजहीमें मिलनेवाले और तुलसी-सरीखे रंकको राम-भक्ति-रूपी धन देनेमें बड़े भारी धनी हो ॥ ४ ॥

राग धनाश्री

[ ३८ ]

जयति ।

लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर, भुजग-  
राज, भुवनेश, भूमारहारी ।

प्रलय-पावक-महाज्वालमाला-चमन,

शमन-संताप लीलावतारी ॥१॥

जयति दाशरथि, समर-समरथ, मुमित्रा-

सुवन, शत्रुघ्नदन, राम-भरत बंधो ।

चारु-चंपक-चरन, वसन-भूपन-घरन,

दिव्यतर, मन्व्य, लावण्य-सिंधो ॥२॥

जयति गाधेय-गौतम-जनक-सुख-जनक,

विश्व-कंटक-कुटिल-कोटि-हंता ।

वचन-चय-चातुरी-परशुघर-नारदहर,

सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥३॥

जयति सीतेश-सेवासरस, विपयरस-

निरस, निरुपाधि धुरधर्मधारी ।

विपुलबलमूल शार्दूलविक्रम जलद-

नाद-मर्दन, महावीर मारी ॥४॥

जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरन,

रामहित-करण चरनाहु-सेतू ।

उर्मिला-रवन, कल्याण-मंगल-भवन,

दासतुलसी-दीप-दवन-हेतू ॥५॥

भावार्थ—लक्ष्मणजीकी जय हो-जो अनन्त, छः प्रकारके ऐश्वर्यसे यु

र्थीको धारण करनेवाले सर्पराज शेषनागके अवतार, भारे संसारके  
 ामी, पृथ्वीके भारको दूर करनेवाले, क्रोधके समय प्रलय-कालकी अग्निके  
 मान भयङ्कर ज्वालामुखी उगलनेवाले, जगत्के सन्तापको नाश करनेवाले  
 और अपनी लीलासे ही अवतार धारण करनेवाले हैं ॥१॥ दशरथ-पुत्र श्री-  
 लक्ष्मणजीकी जय हो-जो संग्राममें सर्वशक्तिमान्, सुमित्राजीके पुत्र,  
 भ्रातृभोंका नाश करनेवाले और श्रीरामजी तथा भरतजीके प्यारे भाई हैं।  
 जनके सुन्दर शरीरका रंग चम्पेके फूलके समान है, जो अत्यन्त दिव्य  
 रत्नमय वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं और सौन्दर्यके महान् समुद्र हैं  
 ॥२॥ विश्वामित्र, गौतम और जनकके सुख उपभोग करनेवाले, संसारके लिये  
 करोड़ों काँटेके समान कुटिल राक्षसोंको मारनेवाले, चतुराईकी बहुत-सी  
 बातोंसे ही परशुरामजीका गर्भ हरनेवाले और सदा श्रीरामजीके पीछे-  
 पीछे चलनेवाले लक्ष्मणजीकी जय हो ॥३॥ सीतापति श्रीरामजीकी  
 सेवामें परम अनुरागी, विषय-रसके विरागी, कपटरहित हीकर  
 श्रीराम-सेवा-रूपी धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले, अनन्त बलके आदि-  
 स्थान, सिंहके समान पराक्रमवाले, मेघनादका मर्दन करनेवाले अत्यन्त  
 महावीर लक्ष्मणजीकी जय हो ॥४॥ भयानक संग्रामरूपी समुद्रको  
 अनायास ही पार कर जानेवाले, श्रीरामजीके हितके लिये अपनी सुन्दर  
 भुजाओंका पुल बनानेवाले, उर्मिलाजीके पति, कल्याण तथा मंगलके  
 स्थान और तुलसीदासके पापोंके नाश करनेमें मुख्य कारण, ऐसे  
 श्रीलक्ष्मणजीकी जय हो ॥५॥

भरत-स्तुति

[ ३९ ]

जयति

भूमिजा-रमण-पदकंज-मकरंद-रस-

रसिक-मधुकर भरत भूरिभागी ।

शुवन भूषण-मानुवंश-भूषण, भूमिपाल-  
मणि रामचंद्रानुरागी ॥१॥

जयति विबुधेश-धनदादि दुर्लभ महा  
राज-संम्राज-सुख-पद-विरागी ।  
खड्ग-धाराग्रती-प्रथमरेखा प्रकट  
शुद्धमति-युवति पति-प्रेमपागी ॥२॥

जयति निरुपाधि-भक्तिभाव-पंक्ति-हृदय,  
बंधु-हित चित्रकूटाद्रि-चारी ।  
पादुका-नृप-सचिव, पुद्गुमि-पालक परम  
धरम-धुर-धीर, वरवीर भारी ॥३॥

जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान  
धनुवान-महिमा वखानी ।  
बाहुबल विपुल परमिति पराक्रम अतुल,  
गूढ़ गति जानकी-जानि जानी ॥४॥

जयति रण-अजिर गन्धर्व-गण-गर्वहर,  
फिर किये रामगुणगाथ-जाता ।

माण्डवी-चित्त-चातक-नवांबुद-वरन,  
सरन तुलसीदास अभय-दाता ॥५॥

भावार्थ—बड़े भाग्यवान् धर्माभरतजीकी जय हो—जो जानकीप

रामजीके चरण-कमलोंके मकरन्दका पान करनेके लिये रसिक भ्रमर हैं ।  
 संसारके भूषणस्वरूप, सूर्यवंशके विभूषण हैं और नृप-शिरोमणि  
 श्रीरामचन्द्रजीके पूर्ण प्रेमी हैं ॥१॥ भरतजीकी जय हो—जिन्होंने, इन्द्र,  
 वैश्रवण आदि लोकपालोंको भी जो अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे महान सुखप्रद  
 ह्याराज्य और साम्राज्यसे मुख मोड़ लिया । जिनका सेवा-व्रत तलवार-  
 की धारके समान अति कटिन है, ऐसे सत्-पुरुषोंमें भी जो सर्वश्रेष्ठ  
 माने जाते हैं और जिनकी शुद्ध बुद्धिरूपी तरुणी स्त्री श्रीराम-रूपी स्वामी-  
 के प्रेममें लवलीन है ॥२॥ भरतजीकी जय हो—जो निष्कपट भक्तिभावके  
 अधीन होकर प्रिय भाई श्रीरामचन्द्रजीके लिये चित्रकूट-पर्वतपर पैदल  
 गये, जो श्रीरामजीकी पादुका-रूपी राजाके मन्त्री बनकर पृथ्वीका पालन  
 करते रहे और जो राम-सेवा-रूपी परम धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले  
 तथा बड़े भारी धीर हैं ॥३॥ श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगानेपर सर्जितनी  
 शूरी लानेके समय, जय भरतजीके घाणसे व्यथित होकर हनुमान्जी गिर  
 पड़े तब उन्होंने जिन भरतजीके धनुष-घाणकी बड़ी बड़ाई की थी,  
 जिनकी भुजाओंका बड़ा भारी बल है, जिनका अनुपम पराक्रम है ।  
 जिनकी गूढ़ गतिकों श्रीजानकीनाथ रामजी ही जानते हैं ऐसे भरतजी-  
 की जय हो ॥४॥ जिन्होंने रणाङ्गणमें गन्धर्वोंका गर्भ तर्क कर दिया और  
 फिरसे उन्हें श्रीरामकी गुण-गाथाओंका गानेवाला बनाया, ऐसे भरत-  
 जीकी जय हो । माण्डवीके चित्तरुपी घातकके लिये जो नयीन मेघ-वर्ण  
 हैं, ऐसे समय देनेवाले भरतजीकी यह तुलसीदास शरण है ॥५॥

शत्रुम-स्तुति

गग धनार्थी

[ ४० ]

जयति जय शत्रु-करि-केसरी शत्रुहन,  
शत्रुतम-तुहिनहर किरणकेतू ।  
देव-महिदेव-महि-धेनु-सेवक मुजन-  
सिद्ध-मृनि-सकल-कल्याण-हेतू ॥१॥

जयति सर्वांगमुन्दर मुमित्रा-सुवन,  
भुवन-विख्यात-भरतानुगामी ।  
वर्मचर्मासि-घनु-चाण-तूणीर-घर  
शत्रु-संकट-समय यत्प्रणामी ॥२॥

जयति लवणाम्युनिधि-कुंभसंभव महा-  
दनुज-दुर्जनदवन, दुरितहारी ।  
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरण-  
रेणु-भूषित-भाल-तिलकधारी ॥३॥

जयति श्रुतिकीर्ति-बल्लभ सुदुर्लभ सुलभ  
नमत नर्मद भुक्तिमुक्तिदाता ।  
दासतुलसी चरण-शरण सीदत विमो,  
पाहि दीनार्च-संताप-हाता ॥४॥

मावार्थ—शत्रुरूपी हाथियोंके नाश करनेको सिंहरूप श्रीशत्रुघ्नजीकी जय हो, जय हो—जो शत्रुरूपी अन्धकार और कुदरेके हरनेके लिये ज्ञाशात् सूर्य हैं और देवता, ब्राह्मण, पृथ्वी और गौके सेवक, सज्जन सिद्ध और मुनियोंका सब प्रकार कल्याण करनेवाले हैं ॥१॥ जिनके सारे अंग सुन्दर हैं, जो सुमित्राजीके पुत्र और विश्व-विख्यात भरतजीकी आशामें चलनेवाले हैं; जो कवच, ढाल, तलवार, धनुष, बाण और तरकस धारण किये हैं और शत्रुओंद्वारा दिये हुए संकटोंका नाश करनेवाले हैं, उन शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ लक्ष्मणासुररूपी समुद्रकी पान करनेके लिये अगस्त्यके समान, बड़े-बड़े दुष्ट दान्योंका संहार करनेवाले और पापोंका नाश करनेवाले शत्रुघ्नजीकी जय हो। ये लक्ष्मणजीके छोटे भाई हैं और भरतजी, श्रीरामजी तथा सीताजीके चरणकमलोंकी रजका, मस्तकपर सुन्दर तिलक धारण करनेवाले हैं ॥३॥ श्रुतिकीर्तिजीके पति हैं, दुष्टोंको दुर्लभ और सेवकोंको सुलभ हैं, प्रणाम करते ही सुख, भोग और मुक्ति देनेवाले हैं, ऐसे शत्रुघ्नजीकी जय हो। हे प्रभो! यह तुलसीदास तुम्हारे चरणोंकी शरण आकर भी दुःख भोग रहा है, हे दीन और आतोंके सन्ताप हरनेवाले! उसकी (तुलसीदामकी) रक्षा करो ॥४॥

श्रीसीता-स्तुति\*

राग केदारा

[ ४१ ]



कवहुँक अंब, अवसर पाइ ।

मेरिऔ सुधि घाइयी, कलु करुन-कथा चलाई ॥१॥

\* कई पुरानी प्रतिषोंमें भीसीता-स्तुति-प्रसंगमें नीचे लिखा दण्डक भी मिलता



दीन, सब अंगहीन, छीन, मलीन, अर्था अघाड ।

नाम ले मरे उदर एक प्रसू-दासी-दाम कहाड ॥२॥

मूझिहँ 'सो है कौन', कहिषी नाम दसा जनाड ।

मुनत राम कृपालुके मेरी पिगरिआ बनि जाड ॥३॥

हे । इसे ५० क सल्या देकर हम यहाँ टिप्पणीके रूपमें देते हैं, क्योंकि जो इसे छेपक भी समझते हैं ।

जयति श्रीजानकी मानुकुल-मानुकी प्राणप्रियबलभे तरणि भूरे ।  
 राम आनंद-चैतन्यघन-विमहा शक्ति आहादिनी साररूपे ॥  
 जयति चितचरणचिन्तनि जेहि धरति हृत काम-भय-कोह-मद-भोह माया ।  
 रुद्र-विधि-विष्णु-सुर-सिद्ध-बंदितपदे जयति सर्वेश्वरी रामजाया ॥  
 कर्म जप योग विज्ञान वैराग्य लहि मोक्षहित योगि जे प्रसु भनारै ।  
 जयति वैदेहि सब शक्तिशिरभूषणे ते न तव दृष्टि विन कबहुँ पावै ॥  
 जयति जय कोटि ब्रह्माण्डकी ईशि, जेहि निगम-मुनि बुद्धिते अगम गावै ।  
 विदित यह गाय अहदानकुलमाय सो नाथ तव दान ते हाय आवै ॥  
 दिव्य शत वर्ष जप-ध्यान जब शिव घरघो राम गुरुरूप मिलि पय बतायो ।  
 चिते हित छीन लखि कृपा कीन्ही तवै देवि, दुर्लभ देव-दरस पायो ॥  
 जयति श्रीत्वामिनी सीय मुभनामिनी, दामिनी कोटि निज देह दरसै ।  
 इदिया आदि दै मत्त गजगामिनी देवभामिनि सबै पाँव परसै ॥  
 दुखित लखि भक्त-विन दरस निज रूप तप यजन जप तत्रतें सुलभ नाहीं ।  
 कृपा करि पूर्ण नवकजदललोचना प्रकट भरजनकनूप-अजिर माहीं ॥  
 रमित तव विपिन प्रिय प्रेम प्रगटन करन लकपति व्याज कछु खेल ठान्यौ ।  
 गोपिका कृष्ण तव दुल्य बहु जतन करि तोहि मिलि ईश आनंद मान्यौ ॥  
 हीन तव मुमुखि कै संग रहि रंकसों विमुख जो देव नहि नाथ नेरौ ।  
 अधमउदरण यह जानि गहि शरण तव दासतुलसी मयौ आय चेरौ ॥ ५० ॥

जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ ।

तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ॥४॥

भावार्थ—हे माता ! कभी अवसर ही तो कुछ करुणाकी घात छेड़कर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी भी याद दिला देना, इसीसे मेरा काम बन जायगा ॥१॥ यों कहना कि एक अत्यन्त दीन, सर्व साधनोंसे हीन, मन-मलीन, दुर्बल और पूरा पापी मनुष्य आपकी दासी ( तुलसी ) का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पेट भरता है ॥२॥ इसपर प्रभु कृपा करके पूछें कि वह कौन है, तो मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता देना । कृपालु रामचन्द्रजीके इतना सुन लेनेसे ही मेरी सारी विगड़ी घात बन जायगी ॥३॥ हे जगज्जननी जानकीजी ! यदि इस दासकी आपने इस प्रकार बचनोंसे ही सहायता कर दी तो यह तुलसीदास आपके स्वामीकी गुणावली गाकर भव-सागरसे तर जायगा ॥४॥

[ ४२ ]

कबहुँ समय सुधि घायबी, मेरी मातु जानकी ।

जन कहाइ नाम लेत हीं, किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी ॥१॥

सरल प्रकृति आपु जानिए करुना-निधानकी ।

निजगुन, अरि कृत अनहितौ, दास-दोष, सुरति चित रहत न, दिये दानकी ।

बानि विसारनसील है मानद अमानकी ।

तुलसीदास न विसारिये, मन करम बचन जाके, सपनेहुँ गति न आनकी ।

भावार्थ—हे जानकी माता ! कभी भी का पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी याद दिला देना । मैं उन्हींका दास कहाता हूँ, उन्हींका नाम लेता हूँ-

उन्हींके लिये पपीहेकी तरह प्रण किये घैटा हैं; मुझे उनके स्वार्ती-जनरूप  
 प्रेम-रसकी यड़ी प्यास लग रही है ॥१॥ यह तो आप जानती ही हैं कि  
 करुणा-निधान रामजीका स्वभाव बड़ा सरल है; उन्हें अपना गुण, शत्रु  
 द्वारा किया हुआ अनिष्ट, दामका अपराध और दिये हुए दानकी वा  
 कभी याद ही नहीं रहती ॥२॥ उनकी आदत भूल जानेकी है; जिस  
 कहीं मान नहीं होता, उसको यह मान दिया करते हैं, पर यह मं  
 भूल जाते हैं ! हे माता ! तुम उनसे कहना कि तुलसीदासको न भूलिये  
 क्योंकि उसे मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी किसी दूसरेके  
 आश्रय नहीं है ॥३॥

### श्रीराम-स्तुति

[ ४३ ]

जयति

सच्चिद्व्यापकानंद परब्रह्म-पद, विग्रह-व्यक्त लीलावतारी  
 विकल ब्रह्मादि सुर, सिद्ध संकोचवश, विमल गुण-गेह नर-देह-धारी ॥१॥

जयति

कोशलाधीश कल्याण कोशलसुता, कुशल फल-फल चारु घाती  
 वेद-शोधित करम-धरम-धरनी-धेनु, विप्र-सेवक साधु-मोदकारी ॥२॥

जयति ऋषि-मखपाल, शमन सजन-साल, शापवश मुनिवधू-पापहारी  
 भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाय भारी ॥३॥

जयति धारमिक-धुर, धीर रघुवीर गुर-मातु-पितु-बंधु-वचनानुमारी  
 चित्रकूटाद्रि विन्ध्याद्रि दंडकविपिन, धन्यकृत पुन्यकानन-विहारी ॥४॥

जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि खनि गर्भ गोपित रिराष  
 दिव्य देवी घेष देखि लखि निशिघरी जनु विडंबित करी विश्वशापा ॥५॥

जयति खर-त्रिशिर-दूषण चतुर्दश-सहस-सुमट-भारीच-संहारकर्ता ।  
 गृध्र-शयरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित निरुपाधि, त्रिविधार्तिहर्ता ॥  
 जयति मद-अंध कुकबंध बधि, बालि बलशालि बधि, करन सुग्रीव राजा ।  
 सुमट मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत, नमत पद रावणानुज निवाजा । ७।  
 जयति पाथोधि-कृत-सेतु कौतुक हेतु, काल-मन-अगम लई ललकि लंका ।  
 सकुल, सानुज, सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किये रहित-शंका ॥  
 जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारुढ़ निज राजधानी ।  
 दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप वैदेहि रानी ॥९॥

भावार्थ—धर्मरामचन्द्रजीकी जय हो । आप सत्, चेतन, ध्यापक, भानन्दरूप परमेश्वर हैं । आप छीला करनेके लिये ही भव्यकसे ध्यकरूपमें प्रकट हुए हैं । जय ब्रह्मा आदि सय देवता और सिद्धगण दानवाँके भत्याचारसे ध्याकुल हो गये, तब उनके संकोचसे आपने निर्मल गुण-सम्पन्न नर-शरीर धारण किया ॥१॥ आपकी जय हो,—आप कल्याणरूप कौशलनरेश दशरथजी और कल्याण-स्वरूपिणी महारानी कौशल्याके यहाँ धार भाइयोंके रूपमें (सालोप्य, सामीप्य, स्मारुप्य और सायुज्य) मोक्षके सुन्दर धार फल उत्पन्न हुए । आपने घेदोक्त यज्ञादि कर्म, धर्म, पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण, भक्त और साधुओंकी भानन्द दिया ॥२॥ आपकी जय हो—आपने विष्णुमित्रजीके यज्ञकी, राक्षसोंको मारकर रक्षा की, मज्जनोंकी सतानेवाले दुष्टोंका दहन किया, शापके कारण पापानरूप हुए गौतम-पत्नी महारथ्याके पापोंकी हर लिया, शिष्योंके धनुषकी तोड़कर राजाओंके दलका हर्ष घूर्ण किया और बल-वीर्य-विजयके मदसे ऊँचा

## द्वितीय-परिचय

रहनेवाला परशुरामजीका मन्त्रक शुक दिया ॥३॥ भारती जय हो-  
भाय धर्मके भारको धारण करनेमें बड़े धीर और शूर्यवंशमें ममायण  
धीर हैं । भावने शुक, माता, पिता और भाईके धनत्र मानकर विग्रह  
विग्रह्याचल और शङ्खक धनकों, उन परितः धनमें पिदार करके ह  
एतय कर दिया ॥४॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिन्होंने इन्द्रके पु  
काश-रूप धने हुए कपटी जयन्तको उमकी करनीका उचित फल दि  
जिन्होंने गड्ढा शोकर विराध शैत्यको उममें गाड़ दिया, दिन हे  
कन्याका रूप धरकर भायी हुई राक्षसी शूर्पणमाको पहचानकर उ  
नाक-कान कटयाकर मानो संसारमरके मुन्ममें बाधा पहुँचानेक  
रावणका तिरस्कार किया ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-भाय सर  
शिशिरा, दूषण, उनकी शीदह हजार सेना और मारीचको मारनेवाले हैं  
मांसभोजी गृध्र जटायु और नीच जातिकी स्त्री शयरीके प्रेमके बर हैं  
उनका उद्धार करनेवाले, करुणाके समुद्र, निष्कलह चारित्रवाले और  
श्रियिध तापोंका हरण करनेवाले हैं ॥६॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो  
जिन्होंने दुष्ट, मदान्ध कयन्धका घघ किया, महा बलवान् बालिको मार  
कर सुग्रीवको राजा बनाया, बड़े-बड़े धीर यन्त्र तथा रीछोंकी सेनाके  
एकत्र करके उनको व्यूहाकार मजाया और शरणागत विभीषणको मुक्ति  
और भक्ति देकर निहाल कर दिया ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिन्होंने  
ने खेलके लिये ही समुद्रपर पुल बाँध लिया, कालके मनको भी मार  
लंकाको उमंगसे ही लपक लिया और कुलसहित, भाईसहित और  
सारी सेनासहित रावणको रणमें नाश करके तीनों लोकों और इन्द्र  
कुबेरादि लोकपालोंको निर्मय कर दिया ॥८॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-  
जो लंका विजयकर लक्ष्मणजी, जानकीजी और सुग्रीव, हनुमानादि

मन्त्रियोंसहित पुष्पक विमानपर चढ़कर अपनी राजधानी भयोप्याको  
 घले । तुलसीदास गाता है कि यहाँ पहुँचकर धीरामके महाराजा और  
 धीसीताजीके महारानी होनेपर समस्त अवधयासी परम प्रसन्न हो गये ॥९॥

[ ४४ ]

जयति

राज-राजेंद्र राजीवलोचन, राम,  
 नाम कलि-कामतरु, साम-शाली ।

अनप-अंमोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-  
 तिमिर घनघोर खर किरणमाली ॥१॥

जयति मुनि-देव-नरदेव दसरत्यके,  
 देव-मुनि-बंध किय अवध-यासी ।

लोकनायक-कोक-शोक-भंगट-शमन,  
 भानुकूल-कमल-कानन-विकासी ॥२॥

जयति भृंगार-भर तामरम-दामदुति-  
 देह, गुणगेह, विद्वेषोपकारी ।

मकल सांभाग्य-सांदर्य-शुषमारूप,  
 मनोमय फोटि गर्वापहारी ॥३॥

(जयति) शुभग सारंग मुनिखंग सायक शक्ति,  
 चारु धर्मांगि धर धर्मधारी ।

धर्मधुरधारी, रघुवीर, ध्रुज-चल अतुल,  
 हेलया दलित भूमार मारी ॥४॥

जयति कन्दर्पात मणि-कुट्ट, कुंडल, तिलक-  
 हलक मलि माल, रिपु-बदन-शोभा ।

दिव्य भूपन, पसन पीत, उपवीत,

क्रिय ध्यान कल्याण-माजन न को मा ॥१७॥

(जयति) भरत-सौमित्रि-शत्रुघ्न-सेवित, सुमुख,

सचिव-सैवक-सुखद, सर्वदाता ।

अधम, आरत, दीन, पतित, पातक-पीन

सकृत नतमात्र कहि 'पाहि' पाता ॥१८॥

जयति जय भुवन दसचारि जस जगमगत,

पुन्यमय, धन्य जय रामराजा ।

चरित-सुरसरित कवि-मुख्य गिरि निःसरित,

पिबत, मज्जत मुदित सैंत-समाजा ॥१९॥

जयति वर्णाश्रमाचारपर नारि-नर,

सत्य-शम-दम-दया-दानशीला ।

विगत दुख-दोष, संतोष सुख सर्वदा,

सुनत, गावत राम राजलीला ॥२०॥

जयति वैराग्य-विज्ञान-चारांनिधे,

नमत नर्मद, पाप-ताप-हर्ता ।

दास तुलसी चरण शरण संशय-हरण,

देहि अवलंब वैदेहि-भर्ता ॥२१॥

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जो राज-राजेश्वरोंमें इन्द्रके

समान हैं, जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं, जिनका नाम कलियुगमें

कल्पवृक्षके समान है, जो (शरणागत भक्तोंको) सान्त्वना देनेवाले

(दादस धँधानेवाले) हैं, अर्नातिरूपी समुद्रको सोलनेके लिये

तो अगस्त्य ऋषिके समान और दानव-दलरूपी गाढ़ और भयानक  
 रन्धकारके नाश करनेके लिये जो प्रचण्ड सूर्यके समान हैं ॥१॥ श्रीराम-  
 चन्द्रजीकी जय हो-मुनि, देवता और मनुष्योंके स्वामी जिन दशरथसूनु  
 श्रीरामचन्द्रजीने अवधवासियोंकी पेशा श्रेष्ठ बना दिया कि मुनि और  
 देवता भी उनकी घन्दना करने लगे। जो लोकपालरूपी चक्रोंके शोक-  
 सन्तापका नाश करनेवाले और सूर्यकुलरूपी कमलोंके वनको प्रफुल्लित  
 करनेवाले साक्षात् सूर्य हैं ॥२॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-सौन्दर्यरूपी  
 सरोवरमें उत्पन्न हुए नीले कमलोंकी मालाके समान जिनके शरीरकी  
 आभा है, जो सम्पूर्ण दिव्य गुणोंके धाम हैं, सारे विश्वका हित करनेवाले हैं  
 और समस्त सौभाग्य, सौन्दर्य तथा परम शोभायुक्त अपने रूपसे करोड़ों  
 कामदेवोंके गर्वको खर्य करनेवाले हैं ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जो  
 सुन्दर शार्ङ्ग धनुष, तरकस, बाण, शक्ति, ढाल, तलवार और श्रेष्ठ कवच  
 धारण किये हैं, धर्मका भार उठानेमें जो धीर हैं, जो रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ वीर  
 हैं, जिनकी प्रचण्ड भुजाओंका अतुलनीय बल है और जिन्होंने खेलसे ही  
 राक्षसोंका नाश करके पृथिवीका भारी भार हरण कर लिया ॥४॥ श्रीराम-  
 चन्द्रजीकी जय हो-जो मणि-जड़ित सुवर्णका मुकुट मस्तकपर धारण किये  
 और कानोंमें मकराकृत कुण्डल पहने हैं; जिनके मालपर तिलककी सुन्दर  
 झलक है और चन्द्रमाके समान जिनका मुखमण्डल शोभित हो रहा  
 है, जो पीताम्बर, दिव्य आभूषण और यज्ञोपवीत धारण किये  
 हुए हैं। ऐसा कौन है जो श्रीरामके इस नयनाभिराम रूपका ध्यान  
 करके कल्याणका भागी न हुआ हो ? ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-  
 जो भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे रेवित और सुग्रीव, सुमन्त आदि  
 मन्त्रियों और भक्तोंको सुख तथा सम्पूर्ण इच्छित प्रशार्थ देनेवाले हैं;



जो अधम, आर्त, दीन, पतित और महापापियोंको केवल एक बार प्रणम करने और 'मेरी रक्षा करो' इतना कहनेपर ही जन्म-मरणरूप संसारसे बचा लेते हैं ॥६॥ महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिनका पवित्र यश चौदहों भुवनोंमें जगमगा रहा है, जो सर्वथा पुण्यमय और धन्य हैं, जिनकी कथारूपी गंगाजी आदिकावि महर्षि श्रीवाल्मीकिरूपी हिमालय-पर्वतसे निकली है, जिसमें स्नान कर और जिसके जलपा पान कर अर्थात् जिसका श्रवण-मनन कर सन्त-समाज सदा प्रसन्न रहता है ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिनके प्रसिद्ध रामराज्यमें सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने वर्णाश्रम-विहित आचारपर चलनेवाले सत्य, शम, दम, दया और दानरूपी व्रतोंका पालन करनेवाले, दुःखों और दोषोंमें रहित, सदा सन्तोषी, सब प्रकारसे सुखी और रामकी राज्यलीलाको सदा गाया और सुना करते थे अर्थात् वे निश्चिन्त होकर सदा रामकी लीलाको ही गाते-सुनते थे ॥८॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जो पैराग्य और ज्ञान-विज्ञानके समुद्र हैं, जो प्रणाम करनेवालोंको सुख देते और उनके सारे पाप-तापोंको हर लेते हैं। हे जानकीनाथ! हे मंशयका नाश करनेवाले! यह तुलसीदास आपको शरण पड़ा है। कृपाकर इसे अपने प्रणतपाल घरणोंका सहारा दीजिये ॥९॥

राग गौरी

[ ४९ ]

श्री रामचंद्र कृपालु भवु मन हरण भवभय दाह्यं ।  
नवकंठ-लोचन, कंठ-शुभ, कर-कंज, पद कंत्राल्यं ॥१॥

111 101

१ कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील नीरद सुंदरं । ११  
 २ पद् पीत मानहु तडित रुचि शुचि नौमि जनक-सुतावरं ॥२॥  
 ३ भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-वंश-निकंदनं ।  
 ४ रघुनंद आनंदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं ॥३॥  
 ५ सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं । ७  
 ६ आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-स्वरदूषणं ॥४॥  
 ७ इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं ।  
 ८ मम हृदय-कंज-निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं ॥५॥

भावार्थ—हे मन ! कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर । वे संसारके म-मरणरूप दारुण भयको दूर करनेवाले हैं, उनके नेत्र नव-विकसित मलके समान हैं; मुख, हाथ और चरण भी लाल कमलके सहदा हैं ॥१॥ उनके सौन्दर्यकी छटा अगणित कामदेवोंसे बढ़कर है, उनके शरीरका पीन-नील-सजल मेघके जैसा सुन्दर वर्ण है, पीताम्बर मेघरूप शरीरमें जो विजलीके समान चमक रहा है, ऐसे पावन-रूप जानकीपति श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ हे मन ! दीनोंके बन्धु, सूर्यके समान तेजस्वी, दानव और दैत्योंके वंशका समूल नाश करनेवाले, आनन्द-चन्द्र, कोशल-देशरूपी आकाशमें निर्मल चन्द्रमाके समान, दशरथनन्दन श्रीरामका भजन कर ॥३॥ जिनके मस्तकपर राजतटित मुकुट, कानोंमें हुण्डल, भालपर सुन्दर तिलक और प्रत्येक अंगमें सुन्दर आभूषण लुशाभित हो रहे हैं; जिनकी भुजायें घुटनौतक लम्बी हैं; जो धनुष-बाण लिये हुए हैं; जिन्होंने संग्राममें स्वर-दूषणको जीत लिया है ॥४॥ जो शिव, शेष और मुनियोंके मनको प्रसन्न करनेवाले, और काम-क्रोध-लोमादि

## दिनय-पत्रिका

शत्रुभोंका भाग करमेयाने हैं । तुम्हमीत्रास प्रायना कगता है कि  
श्रीरघुनाथजी मेरे हृदय कमलमें मदा निवास करें ॥१॥

गग रामकृती

[ ४६ ]

मदा

राम जपु, राम जपु, राम जपु, गग जपु, राम जपु, मूढ़ मन, बार वा  
सकल साँमाग्य-सुख-खानि जिय जानि शठ, मानि विश्वासवदवेदना  
कोशलेन्द्र नव-नीलकंजामतनु, मदन-रिपु-कंजहृदि-चंचरीति  
जानकीरवन सुखमवन भुवनकप्रभु, समर-भंजन, परम कारुणीकं ॥  
दनुज-वन-धूमधुज पीन आजानुष्ठुज, दंड-कोदंडवर चंड बान  
अरुण करचरण मुख नयनराजीव, गुन-अयन, बहु मयन-शोमा-निवा  
वासनाष्टंद-कैरव-दिवाकर, काम-क्रोध-मद-कंज-कानन-तुषारं  
लोम अति मत्त नागेंद्र पंचाननं मक्तहित हरण संसार-भारं ॥४  
केशवं, क्लेशहं, केश-चंदित पद-द्वंद्व मंदाकिनी-मूलभूतं  
सर्वदानंद-संदोह, मोहापहं, घोर-संसार-पाथोधि-पातं ॥५  
शोक-संदेह-पाथोदपटलानिलं, पाप-पर्वत-कठिन-कुलिशरूपं  
संतजन-कामधुक-धेनु, विश्रामप्रद, नाम कलि-कलुष-भंजन अनूपं ॥६  
धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि संचलं, मूलमिदमेव एकं  
भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम, नाम आधीन साधन अनेकं ॥७  
तेन तप्तं, हुतं, दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं  
येन श्रीरामनामाभृतं पानकृतमनिशमनवधमवलोक्य कालं ॥८॥

षपच, खल, मिह, यवनादिहरिलोकगत, नामबलविपुलमतिमलनपरसी  
त्यागि सब आस, संत्रास, मचपास, असि निसितहरिनामजपु दासतुलसी॥

भावार्थ—रे मूर्ख मन ! सदा-मर्वदा बारबार श्रीरामनामका ही जप  
कर; यह सम्पूर्ण सौभाग्य-सुखकी खान है और यही वेदका निचोड़ है, ऐसा  
जीमें समझकर और पूर्ण विश्वास करके सदा श्रीरामनाम कहा कर ॥१॥  
कोशलराज श्रीरामचन्द्रजीके शरीरकी कान्ति मर्दान नील कमलके समान  
है; ये कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीके हृदयरूपी कमलमें रमनेवाले  
धरर हैं। ये जानकीरमण, सुखधाम, अखिल विश्वके एकमात्र प्रभु, समर-  
में दुष्टोंका नाश करनेवाले और परम दयालु हैं ॥२॥ ये दानधोंके वनके  
सिये अभिके समान हैं। पुष्ट और घुटनोंतक लम्बे भुजदण्डोंमें सुन्दर  
घनुष और प्रचण्ड बाण धारण किये हैं। उनके हाथ, चरण, मुख और  
नेत्र लाल कमलके समान कमनीय हैं। ये सद्गुणोंके स्थान और अनेक  
कामदेवोंकी सुन्दरताके भण्डार हैं ॥३॥ विविध घासनारूपी कुमुदिनीका  
नाश करनेके लिये साक्षात् मूर्य और काम, क्रोध, मद आदि कमलोंके  
वनको नष्ट करनेके लिये तुषार ( पाला ) हैं; लोभरूपी अत्यन्त मतवाले  
गजराजके लिये घनराज सिंह और भकोंकी भलाईके लिये राक्षसोंको  
मारकर संसारका भार उतारनेवाले हैं ॥४॥ जिनका नाम केशव है,  
जो ह्येशोंके नाश करनेवाले हैं, ब्रह्मा और शिवसे जिनके चरणयुगल  
घन्दिता होते हैं—जो गंगाजीके उत्पत्तिस्थान हैं। सदा आनन्दके समूह,  
मोहके विनाशक और भयानक भय-सागरके पार जानेके लिये जहाज  
हैं ॥५॥ श्रीरामजी शोक और संशयरूपी मेषोंके समूहको लिभ-भिन्न  
करनेके लिये धायु-रूप और पाप-रूपी कटित पर्यतको तोड़नेके लिये

## दिनय-पत्रिका

यज्ञरूप हैं। जिनका अनुपम नाम सन्तोंको कामधेनुके समान फल देनेवाला तथा शान्तिदायक और कल्पियुगके भारी पापोंको करनेमें सानी नहीं रम्बता ॥६॥ यह श्रीरामनाम धर्मरूपों कल्प यगीचा, भगवान्के धाममें जानेवाले पथिकोंके लिये पाथेय तथा साधन और सिद्धियोंका मूल आधार है। भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, दान आदि मोक्षके अनेक साधन सभी इस राम-नामके अर्घात हैं जिसे इस कराल कलिकालको देखकर नित्य निरन्तर श्रीरामनाम निक्षेप अमृतका पान किया, उसने सारे तप कर लिये, सब अनुष्ठान कर लिया, सर्वस्व दान दे दिया और विधिके अनुसार सभी कर्म कर लिये ॥८॥ अनेक चाण्डाल, दुष्कर्मी, भील और यवनादि रामनामके प्रचण्ड प्रतापसे श्रीहरिके परमधाममें पहुँच गये और बुद्धिको विकारोंने स्पर्श भी नहीं किया। हे तुलसीदास! सारी भय और भयको छोड़कर संसाररूपी बन्धनको काटनेके लिये पैनी तल समान श्रीराम-नामका सदा जप कर ॥९॥

[ ४७ ]

ऐसी आरती राम रघुवीरकी करहि मन ।

हरन दुखदुंद गोविंद आनन्दधन ॥१॥

अक्षररूप हरि, सरयगत, सरबदा बसत, इति यासना धूप

मोह-मद-मोह-तम, प्रौढ़-अभिमान चितवृत्ति छ

विशद प्रवर नैवेद्य शुभ श्रीरमण परम संतोषका

शूल संशय सकल, विपुल भव-यासना-बीजहा

अशुभ-शुभकर्म-घृतपूर्ण दश वर्तिका, त्याग पावक, सतोगुण प्रकाशं ।  
 भक्ति-धैर्याग्य-विज्ञान दीपावली, अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥४॥  
 विमल हृदि भवन कृत शान्ति पर्यक शुभ, शयन विश्राम श्रीरामराया ।  
 क्षमा-करुणा प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहि भेद, माया ॥५॥  
 इति

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भावार्थ—हे मन ! रघुकुल-वीर श्रीरामचन्द्रजीकी इस प्रकार आरती  
 पढ़ । ये रागद्वेष आदि द्वन्द्वों तथा दुःखोंके नाशक, इन्द्रियोंका नियन्त्रण  
 करनेवाले और आनन्दकी धर्या करनेवाले हैं ॥१॥ जड़-चेतन जगत् सब  
 मोहारेका रूप है, ये सर्वव्यापी और नित्य हैं—इस वासना ( सुगन्ध ) की  
 इनकी धूप कर । इससे तेरी भेदरूप दुर्गन्ध मिट जायगी । धूपके बाद  
 शीप दिखाना चाहिये, सो आत्मज्ञानका स्वयं प्रकाशमय दीपक जलाकर  
 उगमे क्रोध, मद, मोहके अन्धकारका नाश कर दे । इस ज्ञान-प्रकाशसे  
 अभिमानभरी चित्त-धृत्तियाँ आप ही क्षीण हो जायँगी ॥२॥ इसके बाद  
 अत्यन्त निर्मल श्रेष्ठ मायका नैवेद्य भगवान्के अर्पण कर, विशुद्ध मायका  
 सुन्दर नैवेद्य लक्ष्मीपति भगवान्को परम सन्तोषकारी होगा । फिर  
 दुःख, समस्त सन्देह और अपार-संसारकी वासनाओंके योजके नाश  
 करनेवाले 'प्रेम' का ताम्बूल भगवान्के निवेदन कर ॥३॥ तदनन्तर  
 शुभानुभवात्मक कर्मरूपी घृतमें हूयी हुई दस इन्द्रियरूपी धृत्तियोंको त्यागकी  
 अग्निसे जलाकर सत्यगुणरूपी प्रकाश कर, इस तरह भक्ति, धैर्याग्य और  
 विज्ञानरूपी दीपावलीकी आरती जगन्निवास भगवान्के अर्पण कर ॥४॥



भारतीके समय हाथोंसे बजायी जानेवाली तालीका शब्द सुनकर पाप-रूपी पक्षी तुरन्त उड़ जाते हैं ॥२॥ यह भारती भक्तोंके हृदयरूपी भवन-के अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाली और निर्मल विज्ञानमय प्रकाशकी फैलानेवाली है ॥३॥ यह मोह, मद, क्रोध और कलियुगरूपी कमलोंके नाश करनेके लिये आवेकी रात है और मुक्तिरूपी नायिकासे मला देनेके लिये दूती है तथा इसके शरीरकी चमक बिजलीके समान है ॥४॥ यह शरणागत भक्तरूपी कुमुदिनीके घनको प्रफुल्लित करनेके लिये चन्द्रमाकी किरणोंकी माला है और तुलसीदासके अभिमानरूपी महिपासुरका मर्दन करनेके लिये अनेक कालिकाओंके समान है ॥५॥

### हरिशंकरी पद

[ ४२ ]

देव—

दनुज-वन-दहन, गुन-गहन, गोविंद नंदादि-आनंद-दाताऽविनाशी ।  
 शंभु, शिव, रुद्र, शंकर, भयंकर, भीम, घोर, तेजायतन, क्रोध-राशी ॥१॥  
 अनंत, भगवंत, जगदंत-अंतक-त्रास-शमन, श्रीरमन, भुवनाभिरामं ।  
 भूधराधीश जगदीश ईशान, विज्ञानघन, ज्ञान-कल्याण-धामं ॥२॥  
 वामनाव्यक्त, पावन, परावर, विभो, प्रकट परमात्मा, प्रकृति-स्वामी ।  
 चंद्रशेखर, शूलपाणि, हर, अनघ, अज, अमित, अविच्छिन्न, वृषभेश-गामी ॥  
 नील जलदामतनु श्याम, बहु काम छवि राम राजीवलोचन कृपाला ।  
 कंबु-कर्पूर-वपु, घवल, निर्मल, मौलि जटा, सुर-तटिनि, सित सुमन माला ॥  
 वसन किंजल्कधर, चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति विशाला ।  
 मार-करि मत्त मृगराज, ग्रैनेन, हर, नौमि अपहरण संसार-जाला ॥५॥



## विनय-पत्रिका

कृष्ण, कल्लुगामवन, दवन कालीय खल, विपुल कंमादि निर्वृत्त  
त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्मघर, अन्धकार-प्रसन्न पद्मगारी  
मद्य, ध्यापक, अकल, सकल, पर, परमदित, ग्यान, गोवीर्य गुण-शक्ति  
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र, गौरीश, भव, दक्ष-मण अखिल विध्वंस  
भक्तिप्रिय, भक्तजन-कामधुक धेनु, हरि, हरण दुर्घट विकट विपति  
सुखद, नर्मद, वरद, विरज, अनवद्यसखिल, विपिन-आनंद-वीथिन  
रुचिर हरिशंकरी नाम-भंत्रावली इन्द्रदुख हरनि, आनंदस  
विष्णु-शिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा वदति तुलसीदास विशद

[ इस भजनके प्रत्येक पदमें आधेमें भगवान् श्रीविष्णुकी और  
में भगवान् शिवकी स्तुति की गयी है, इसीसे इसका नाम हरि-शंकर  
गोसाईंजी महाराजने विष्णु और शिवकी एक साथ स्तुति करने  
हरमें अभेद सिद्ध किया है। ]

भगवान् विष्णु—शान्तरूपी धनके जलानेवाले, गुणोंके धन  
सात्त्विक सद्गुणोंसे सम्पन्न, इन्द्रियोंके नियन्ता, मन्द-उपनन्द  
आनन्द देनेवाले और अविनाशी हैं।

भगवान् शिव—शम्भु, शिव, रुद्र, शंकर आदि कल्याणकारी  
प्रसिद्ध हैं; यह भारी मयङ्कर, महान् तेजस्वी और क्रोधकी राशि

भगवान् विष्णु—अनन्त हैं, छः प्रकारके देवियोंसे युक्त हैं,  
का अन्त करनेवाले यमकी प्रासकी मिटानेवाले, लक्ष्मीजीके  
और समस्त प्रहाण्डको भानन्द देनेवाले हैं।

भगवान् शिव—कैलासके राजा, जगत्के स्वामी, ईशान, विज्ञानधन और ज्ञान तथा मोक्षके धाम हैं ॥२॥

भगवान् विष्णु—धामनरूप धरनेवाले, मन-इन्द्रियोंसे अव्यक्त, पवित्र ( विकाररहित ), जड़-चेतन और लोक-परलोकके स्वामी, साक्षान् परमात्मा और प्रकृतिके स्वामी हैं ।

भगवान् शिव—चन्द्रमाको मस्तकपर और हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, सृष्टिके मंहारकर्त्ता, पापशून्य, अजन्मा, अमैय, अघण्ड और नदीपर सवार होकर चलनेवाले हैं ॥३॥

भगवान् विष्णु—नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले, अनेक नामधेयोंकी-सी शोभावाले, कमलके सहस्र सुन्दर नेत्रवाले और समस्त विषयमें रमनेवाले, कृपालु हैं ।

भगवान् शिव—दाँव और कपूरके समान चिकने, श्वेत और सुगन्धित शरीरवाले, मलरहित, मस्तकपर जटाजूट और गंगार्जाकी धारण करनेवाले तथा नपेद् पुष्पोंकी माला पहने हुए हैं ॥४॥

भगवान् विष्णु—कमलके केसरके समान पीताम्बर धारण किये तथा हाथोंमें दाँव, चक्र, पद्म, शार्ङ्ग धनुष और भृत्पन्त विनाल कीमोदकी गद्दा लिये हुए हैं ।

भगवान् शिव—कामदेवरूपी भगवाले हाथोंको मारनेके लिये त्रिशूलरूप, तीव्र नेत्रवाले और भाषागमनरूपी जगत्के जालका नाश करनेवाले हैं, येने शिवजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

## विनायक-पश्चिका

भगवान् विष्णु—मयका भा कर्यण करनेवाले, करणोंके धाम, नागके दमन करनेवाले और करी भादि अनेक दुष्टोंको करनेवाले हैं ।

भगवान् शिव—त्रिपुरासुरका मद चूर्ण करनेवाले, मनवाले, चर्म धारण करनेवाले और मन्धकासुररूपी सर्पको लिये गरुड़ हैं ॥६॥

भगवान् विष्णु—पूर्णब्रह्म, चराचरमें व्यापक, कलारहित धेष्ट, परम हितैषी, ज्ञानस्वरूप, अन्तःकरणरूपी भीतरी और ध्याहरी इन्द्रियोंसे अतीत और तीनों गुणोंकी वृत्तियोंका हरण करने

भगवान् शिव—जलन्धरके गर्गरूपी पर्वतकी तीड़नेके लिरूप, पार्यतीके पति, संसारके उत्पत्तिस्थान हैं और दशके यज्ञके विध्वंस करनेवाले हैं ॥७॥

भगवान् विष्णु—जिनको भक्ति ही प्यारी है, जो करनेके लिये कामधेनुके समान हैं और उनकी बड़ी-बड़ी कठिन भयानक विपत्तियोंको हरनेवाले, अतएव हरि कहलानेवाले हैं ।

भगवान् शिव—सुख, आनन्द और मनचाहा घर देनेवाले। सब प्रकारके विकारों एवं दोषोंसे रहित और आनन्द-घन क गलियोंमें विहार करनेवाले हैं ॥८॥

यह हरि और शंकरके नाम-मन्त्रोंकी सुन्दर पंक्तियाँ राग ह्रन्धोंसे जनिन सुखको हरनेवाली, आनन्दकी खानि और विष्णु शिवलोकमें जानेके लिये सदा सीढ़ीके समान हैं, यह बात तुलसीशुद्ध घाणिसि कहता है ॥९॥





[ ५० ]

देव—

मानुकुल-कमल-रवि, कोटि-धंदर्प-छवि, काल-कलि-व्यालमिव वैनतेयं ।  
 प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड-धर तूणवर विशिख बलमप्रमेयं ॥१॥  
 अरुण राजीवदल-नयन, सुपमा-अयन, श्याम तन-कांति धर वारिदामं ।  
 तप्त कांचन-वस्त्र, शस्त्र-विद्या-निष्ठुण, सिद्ध-सुर-सेव्य, पाथोजनाभं ॥  
 अखिल लावण्य-गृह, विश्व-विग्रह, परम प्रौढ़, गुणगूढ़, महिमा उदारं ।  
 दुर्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग-अपवर्ग-पति, भद्र संसार-पादप-कुठारं ॥३॥  
 शापवश मुनिवधू-मुक्तकृत, विप्रहित, यज्ञ-रक्षण-दक्ष, पक्षंकर्ता ।  
 जनक-नृप-सदसि शिवचाप-भंजन, उग्र भार्गवागर्भव-गुरिमापहर्ता ॥४॥  
 गुरु-गिरा-गौरवामर-सुदुस्त्यज राज्य त्यक्त, श्रीसहित सौमित्रि-भ्रांता ।  
 संग जनकात्मजा, मनुजमनुसृत्य अज, दुष्ट-वध-निरत, त्रैलोक्यत्राता ॥  
 दंडकारण्य कृतपुण्य पावन चरण, हरण मारीच-मायाकुरंगं ।  
 बालि बलमत्त गजराज इव केसरी, सुहृद-सुग्रीव-दुख-राशि-भंगं ॥६॥  
 ऋक्ष, मर्कट विकट सुमट उद्धट समर, शैल-संकाश रिपु त्रासकारी ।  
 बद्धपाथोधि, सुर-निकर-मोचन, सकुल दलन दससीस-भुजवीस भारी ॥  
 दुष्ट विषुघारि-संघात, अपहरण महि-भार, अवतार कारण अनूपं ।  
 अमल, अनवध, अद्वैत, निर्गुण, सगुण, ब्रह्म सुमिरामि नरभूष-रूपं ॥८॥  
 शेष-श्रुति-शारदा-शंभु-नारद-सनक गनत गुण अंत नहिं तव चरित्रं ।  
 सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी-त्रास-निधि-बहित्रं

## विनय-पत्रिका

भावार्थ—सूर्यवंश-रूपी कमलकी खिलानेके लिये जो सूर्य हैं, व कामदेवोंके समान जिनकी सुन्दरता है, कालिकालरूपी सर्पकी प्र लिये जो गरुड़ हैं, अपने प्रबल भुजदण्डोंमें जिन्होंने प्रचण्ड घनुष घाण धारण कर रखे हैं, जो तरकस घाँचे हैं और जिनका घल है ॥१॥ लाल कमलकी पँखुड़ियों-जैसे जिनके नेत्र हैं, जो शोभाके हैं, जिनके साँवरे शरीरकी सुन्दर कान्ति मेघके समान है। जो त सोनेके समान पीताम्बर धारण किये हैं, जो शस्त्र-विद्यामें निपुण सिद्धों तथा देवताओंके उपास्य हैं, और जिनकी नामसे कमल उ दुआ है ॥२॥ जो सम्पूर्ण सुन्दरताके स्थान हैं, सारा विश्व ही जि मूर्ति है, जो बड़े ही बुद्धिमान् और रहस्यमय गुणवाले हैं, जिनकी महिमा है, जिनकी कोई भी नहीं जीत सकता और जिनकी लीं पार कोई भी नहीं पा सकता, जिनकी पहचानना बड़ा कठिन है, स्वर्ग और मोक्षके स्वामी तथा आवागमनरूपी संसारके घृशकी जड़ के नित्य कुठार हैं ॥३॥ जो गौतम मुनिकी स्त्री अहल्याको शापने करनेवाले, विभ्यामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेमें बड़े चतुर और भक्तोंका पक्ष करनेवाले हैं, तथा राजा जनककी सभामें शिष्यजीके घु तोड़कर महान् तेजस्वी एयं क्रोधी परशुरामजीके गर्भ और महारथकी करनेवाले हैं ॥४॥ जिन्होंने पिताके घचनोंका गौरव रखनेके दयना भी जिनकी बड़ी कठिनतामें छोड़ सकते हैं, ऐसे राम महजमें ही ग्याग दिया और माई लक्ष्मण तथा धीजानकीतीकी लेकर, मज्जमा पग्नइ होकर भी, नरतीत्याने तीनों लोकोंकी लिये रावणादि दुष्ट राक्षसोंका संहार किया ॥५॥ जिन्होंने

गवन चरणकमलोंसे दण्डक घनको पवित्र कर दिया, कपट-मृगरूपी मारीचका नाश कर दिया, जो बालिरूपी महान् बलसे मतवाले हाथीके संहारके लिये सिंहरूप हैं और सुग्रीवके समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले परम सुहृद् हैं ॥६॥ जिन्होंने भयंकर और बड़े भारी शूरवीर रीछ-बन्दरोंको साथ लेकर संग्राममें कुम्भकर्ण-सरीखे पर्वतके समान आकारवाले योद्धाओंको डरा दिया, समुद्रको बाँध लिया, देवताओंके समूहको रावणके बन्धनसे छुड़ा दिया और दस सिर तथा विशाल बीस भुजाओंवाले रावणका कुलसहित नाश कर दिया ॥७॥ देवताओंके शत्रु दुष्ट राक्षसोंके समूहका, जो पृथ्वीपर भाररूप था, संहार करनेके लिये अवतार लेनेमें उपमाराहित कारणवाले, निर्मल, निर्दोष, अद्वैतरूप, धास्तयमें निर्गुण, मायाको साथ लेकर सगुण, परब्रह्म नर-रूप राजराजेश्वर श्रीरामका मैं स्मरण करता हूँ ॥८॥ शेषजी, घेद, सरस्वती, शिवजी, भारद् और सनकादि सदा जिनके गुण गाते हैं, परन्तु जिनकी लीलाका पार नहीं पा सकते वही शिवजीके प्यारे अयोध्यानाथ श्रीराम इस तुलसीदासको दुःखरूपी समुद्रसे पार उतारनेके लिये सदा-सर्वदा जहाजरूप हैं ॥९॥

[ ५१ ]

देव—

जानकीनाथ, रघुनाथ, रागादि-त्तम-तरणि, तारुण्यतनु, तेजधामं ।  
 सच्चिदानंद, आनंदकंदाकरं, विश्व-विधाम, रामाभिरामं ॥१॥  
 नीलनव-चारिधर-सुभग-सुमकांति, कटि पीत कौशेय वर वसनधारी ।  
 रत्न-हाटक-जटित-मुकुट-मंडित-भौलि, मानु-शत-सदृश उद्योतकारी ॥



## धनपत्रिका

श्रवण कुंडल, माल तिलक, मूर्ध्नि अति, अरुण अंमोज लोचन वि  
वक्र अवलोक, त्रैलोक्य शोकापहं, मार-रिपु-हृदय-मानस-भगंतं  
नामिका चारु, मुकुपोल, द्विज वज्रदुति, अधर विद्योपमा, मधुर  
कंठ दर, चिपुक वर, वचन गंभीरतर, सत्य संकल्प, सुरग्राम-न  
सुमन सुविचित्र नय तुलसिकादल-शुतं मृदुल वनमाल उर ब्राज  
भ्रमत्त आमोदवश मत्त मधुकर-निकर, मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं  
सुमग श्रीवत्स, केयूर, कंकण, हार, किंकिणी-रटनि कटि-तट रसाल  
वाम दिशि जनकजासीन-सिंहासनं कनक-मृदुवह्निवत तरु तमालं  
आजातु भुजदंड, कोदंड-मंडित वाम बाहु, दक्षिण पाणि वाणमेकं  
अखिल मुनि-निकर, सुर, सिद्ध, गंधर्व वर नमत नर नाग अबनिप अ  
अनघ, अविष्टिन्न, सर्वज्ञ, सर्वेश, खलु सर्वतोमद्र-दाताऽसंमर्कं ।  
प्रणतजन-खेद-विच्छेद-विद्या-निपुण नमि श्रीराम सौमित्रिसाकं ।  
युगल पदपद्म सुखसद्य पद्मालयं, चिन्ह कुलिशादि शोभाति मारी ।  
हनुमंत-हृदि विमल कृत परममंदिर, सदा दासतुलसी-शरण शोकाहं ।

भाषार्थ—जानकी-नाथ श्रीरघुनाथजी राग-द्वेषरूपी अन्धकार  
नाश करनेके लिये सूर्यरूप, तरुण शरीरवाले, तेजके धाम, सच्चिदान  
आनन्द-कन्दकी खानि, संसारको शान्ति देनेवाले, परम सुन्दर हैं ।  
जिनकी गर्वीम नील सजल मेघके समान सुन्दर और शुभ कान्ति  
जो कटि-तटमें सुन्दर रेशमी पीताम्बर धारण किये हैं, और त्रि

लकरर सैकड़ों सूर्योके समान प्रकाश करनेवाला रज-जड़ित सुन्दर  
 वर्ण-मुकुट शोभित हो रहा है ॥२॥ जो कानोंमें कुण्डल पहिने, भालपर  
 लक लगाये, अत्यन्त सुन्दर भ्रुकुटि तथा लाल कमलके समान बड़े-  
 डे नेत्रोंवाले, तिरछी वितचनसे देखते हुए, तीनों लोकोका शोक  
 करनेवाले और कामारि श्रीशिवजीके हृदय-रूपी मान-सरोवरमें विहार  
 करनेवाले हंस-रूप हैं ॥३॥ जिनकी नासिका बड़ी सुन्दर है, मनोहर  
 हपोल हैं, दाँत हीरे-जैसे चमकदार हैं, होठ लाल-लाल यिम्वाफलके  
 समान हैं, मधुर मुसकान है, शंखके समान कण्ठ और परम सुन्दर ठोड़ी  
 है। जिनके वचन बड़े ही गम्भीर होते हैं, जो सत्य-संकल्प और देयताओंके  
 दुःखोंका नाश करनेवाले हैं ॥४॥ रंग-बिरंगे फूलों और नये तुलसी-पत्रोंकी  
 कोमल घनमाला जिनके हृदयपर सुशोभित हो रही है, उस मालापर  
 सुगन्धके घश मतवाले भीरोंका समूह मधुर गुजार करता हुआ उड़  
 रहा है ॥५॥ जिनके हृदयपर सुन्दर धीयत्सका चिह्न है, बाहुओंपर  
 याजूयन्द, हाथोंमें कंकण और गलेमें मनोहर हार शोभित हो रहा है,  
 त्रि-देशमें सुन्दर तागड़ीका मधुर शब्द हो रहा है। सिंहासनपर घाम  
 गमें धीजानकीजी विराजमान हैं, जो तमाल-शृङ्गके समीप कोमल  
 वर्ण-लता-सी शोभित हो रही हैं ॥६॥ जिनके भुजदण्ड घुटनोंतक लम्बे  
 : धार्ये हाथमें धनुष और दाहिने हाथमें एक बाण है; जिनकी सम्पूर्ण  
 निमण्डल, देयता, सिद्ध, थोष्ट गन्धर्व, मनुष्य, नाग और अनेक राजा-  
 द्वाराजागण प्रणाम करते हैं ॥७॥ जो पापरहित, अखण्ड, सर्वज्ञ, सबके  
 गमी और निश्चयपूर्णक हमलोगोंको कल्याण प्रदान करनेवाले हैं, जो  
 अरणागत भक्तोंके कष्ट मिटानेकी कष्टामें सर्वथा निपुण हैं, ऐसे लक्ष्मण-

जी महिग श्रीगामन्धर्जीको भैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥ जिनके कें  
 चरण-कमल आनन्दके धाम और कमला (सद्गुरुजी)के निजाम-स्थान  
 मर्यात् लक्ष्मीजी महा उन चरणोंकी मंत्र्यामें लगी रहती हैं । यज्ञ प्रां  
 ४८ विद्वांसि जो भक्त्यन्त शोभा पा रहे हैं और जिन्होंने मन्त्र  
 श्रीहनुमान्जीके निर्मल हृदयको अपना श्रेष्ठ मन्दिर बना रक्खा है या  
 श्रीहनुमान्जीके हृदयमें यह चरणकमल मद्रा यमने हैं, ऐसे शोक हने  
 वाले श्रीरामके चरणोंकी शरणमें यह तुलसीदास है ॥९॥

[ ५२ ]

देव—

कोशलाधीश, जगदीश, जगदेकहित, अमितगुण, विपुल विस्तार लील  
 गायंतितव चरितमुपवित्र श्रुति-शेष-शुक-शंभु-सनकादिमुनि मननशी  
 वारिचर-वपुष धरि भक्त-निस्तारपर, धरणि कृत नाव महिमातिगुर्वा  
 सकल यज्ञांशमय उग्र विग्रह श्रोत्र, मर्दि दनुजेश उद्धरण उर्वा ॥२  
 कमठ अति विकट तनु कठिन पृष्ठोपरी, भ्रमत मंदर कंडु-सुख मुरारी  
 प्रकटकृत अमृत, गो, इंदिरा, इंदु, वृंदारकावृंद-आनंदकारी ॥३  
 मनुज-मुनि-सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक, दुष्ट दनुज द्विज-धर्म-भरजाद-हर्ष  
 अतुल मृगराज-वपुधरित, विदरित अरि, भक्त प्रहलाद-अहलाद-कर्ष  
 छलन धलि कपट-चडुरूप वामन ब्रह्म, भुवन पर्यंत पद तीन कर्ण  
 चरण-नख-नीर त्रैलोक-पावन परम, विबुध-जननी-दुसह-शोक हरणी ॥५  
 क्षत्रियाधीश-करि निकर-नव-केसरी, परशुधर विप्र-ससि-जलदरूपं ।  
 चीस भुजदंड दससीस खंडन चंड वेग सायक नौमि राम भूपं ॥६॥

भूमिभर-मार-हर, प्रकट परमात्मा, ब्रह्म नररूपधर भक्तहेतू ।  
 घृष्णि-कुल-कुमुद-राकेश राधारमण, कंस-बंसाटवी-धूमकेतू ॥७॥  
 प्रबल पाखंड महि-मंडलाकुल देखि, निंदकृत अखिल मख कर्म-जालं ।  
 शुद्ध बोधैकधन, ज्ञान-गुणधाम, अज, चौद्ध-अवतार वंदे कृपालं ॥८॥  
 कालकलिजनित मलमलिन मन सर्वनर मोह-निशि-निबिडयवनांधकारं ।  
 विष्णुयश पुत्र कलकी दिवाकर उदित दासतुलसी हरण विपतिभारं ॥९॥

भावार्थ—हे कोसलपति ॥ हे जगदीश्वर ! आप जगत्के एकमात्र  
 त्तकारी हैं, आपने अपने अपार गुणोंकी वड़ी लीला फँलायी है । आपके  
 रम पवित्र धरित्रको चारों वेद, शेषजी, शुक्रदेव, शिव, सनकादि और  
 लिन-शील मुनि गाते हैं ॥१॥ आपने मत्स्य-रूप धारणकर अपने  
 त्तोंको पार करनेके लिये ( महाप्रलयके समय ) पृथ्वीकी नौका बनायी,  
 आपकी अपार महिमा है । आप समस्त यज्ञोंके अंशोंसे पूर्ण हैं,  
 आपने बड़े भयङ्कर शरीरवाले हिरण्याक्ष दानवका मर्दन करके शूकर-  
 रूपसे पृथ्वीका उद्धार किया ॥२॥ हे मुरारे ! आपने अति मयानक कछुएका  
 रूप धारण करके, समुद्र-मन्थनके समय रसातलमें जाते हुए मन्दराचल  
 पहाड़को अपनी कठिन पीठपर रख लिया, उस समय उसपर पर्यंतके  
 घूमनेसे आपको खुजलाइटका-सा सुख प्रतीत हुआ था । समुद्र मथने-  
 पर आपने उसमेंसे अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमाको उत्पन्न किया,  
 इससे आपने देवताओंको बहुत आनन्द दिया ॥३॥ आपने अनुलित बलशाली  
 नृसिंहरूप धारण करके मनुष्य, मुनि, सिद्ध, देवता और नागोंको दुःख

## पिनय-पत्रिका

मंनेपाले, ब्राह्मण भीर धर्मकी मर्यादा नाश करनेवाले दुष्ट दानव द्वि-  
कशिपुरूप दायुको विदीर्ण कर मनयगर प्रह्लादको भाहादित कर दिया।  
आपने यामन ब्राह्मणारीका रूप धारण कर राजा यन्तिको छलनेके  
पहिले तीन पैर पृथ्वी माँगी, पर नापते समय तीन पैरमें सारा ब्रह्म  
तक नाप लिया। (नापनेके समय) आपके चरण-नखमें न  
लोकोंको पचित्र करनेवाला (गंगा) जल निकला। आपने यति  
पातालमें भेज, और यह राज्य इन्द्रको देकर देवमाता अदितिका दु-  
शोक हर लिया ॥५॥ आपने सहस्रयादु आदि अभिमानी क्षत्रिय र-  
रूपी हाथियोंके समूहको विदीर्ण करनेके लिये सिंह-रूप और ब्राह्मण-  
धान्यको हराभरा करनेके लिये मेघरूप, ऐसा परशुराम अवतार ध-  
किया। और रामरूपसे दस सिर तथा बीस भुजदण्डवाले रावणको प्र-  
याणोंसे खण्ड-खण्ड कर दिया, ऐसे राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीके  
प्रणाम करता हूँ ॥६॥ भूमिके भारी भारको हरनेके लिये आप परम  
शुद्ध ब्रह्म होकर भी भक्तोंके लिये मनुष्यरूप धारण करके प्रकट हुए  
वृष्णिवंश-रूपी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा, राधाजीके  
और कंसादिके वंशरूपी वनको जलानेके लिये अग्निस्वरूप थे ॥७॥  
पाण्डव-दम्भसे पृथ्वीमण्डलको व्याकुल देखकर आपने यज्ञादि स  
कर्मकाण्डरूपी जालका खण्डन किया, ऐसे शुद्ध बोधस्वरूप, विशाल  
सर्व दिव्य-गुण-सम्पन्न, अजन्मा, रूपालु बुद्ध भगवान्की मैं ध-  
करता हूँ ॥८॥ कलिकालजनित पापोंसे सभी मनुष्योंके मन  
हो रहे हैं। आप मोहरूपी रात्रिमें म्लेच्छरूपी घने अन्धकारके  
ले सूर्योदयकी तरह विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ

रूपसे कल्कि-अवतार धारण करेंगे । हे नाथ ! आप तुलसीदासकी विपत्तिके भारको दूर करें ॥९॥

[ ५३ ]

देव—

सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोमद्र-निधि, सर्व, सर्वेश, सर्वाभिरामं ।  
 शर्व-हृदि-कंज-मकरंद-मधुकर रुचिर रूप, भूपालमणि नौमि रामं ॥१॥  
 सर्वमुख-धाम गुणग्राम, विश्रामपद, नाम सर्वसपदमति पृनीतं ।  
 निर्मलं, शांत, सुविशुद्ध, बोधायतन, क्रोध-मद-हरण, करुणा-निकेतं ॥  
 अजित, निरुपाधि, गोतीतमव्यक्त, विभ्रुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं ।  
 प्राकृतं, प्रकट परमात्मा, परमहित, प्रेरकानंत वंदे तुरीयं ॥३॥  
 भूधरं, सुन्दरं, श्रीधरं, मदन-मद-मथन सौन्दर्य-सीमातिरम्यं ।  
 दुष्प्राप्य, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर्क्य, दुष्पार, संसारहर, सुलभ, मृदुभाव-गम्यं ॥  
 सत्यकृत, सत्यरत, सत्यव्रत सर्वदा, पुष्ट, संतुष्ट, संकष्टहारी ।  
 धर्मवर्मनि ब्रह्मकर्मबोधैक, विप्रपूज्य, ब्रह्मप्यजनप्रिय, मुरारी ॥५॥  
 नित्य, निर्मम, नित्यमुक्त, निर्मानि, हरि, ज्ञानघन, सच्चिदानंद मूलं ।  
 सर्वरक्षक सर्वमक्षकाध्यक्ष, कूटस्थ, गूढार्चि, भक्तानुकूलं ॥६॥  
 सिद्ध-साधक-साध्य, वाच्य-वाचकरूप, मंत्र-जापक-जाप्य, सृष्टि-स्रष्टा ।  
 परम कारण, कंजनाम, जलदाभतनु, सगुण, निर्गुण, सकल दृश्य-द्रष्टा ॥७॥  
 व्योम-व्यापक, विरज, ब्रह्म, वरदेश, वैकुण्ठ, वामन, विमल ब्रह्मचारी ।  
 सिद्ध-शृंगारकाशुंदवदित सदा, खंडि पाखंड-निर्मूलकारी ॥८॥

## चिनय-पत्रिका

पूरनानंदसंदोह, अपहरन संमोह-अज्ञान, गुण-सक्ति  
वचन-मन-कर्म-गत शरण तुलसीदास त्रास-पाथोधि इव कुंभज

भावार्थ—समस्त सौभाग्यके देनेवाले, सब प्रकारसे कल्याणके  
विश्वरूप, विश्वके ईश्वर, सबको सुख देनेवाले, शिवजीके हृदय-  
मकरन्दको पान करनेके लिये भ्रमर-रूप, मनोहर रूपवान् एषं रा  
शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥ हे श्री  
आप सब सुखोंके धाम, गुणोंकी राशि और परमशान्ति देनेवाले हैं  
का नाम समस्त पदार्थोंको देनेवाला तथा बड़ा ही पवित्र है। आप  
शान्त, अत्यन्त निर्मल, ज्ञान-स्वरूप, क्रोध और मदका नाश कर  
तथा करुणाके स्थान हैं ॥२॥ आप सबसे अजेय, उपाधिहित  
इन्द्रियोंसे परे, अव्यक्त, व्यापक, एक, निर्विकार, अजन्मा और अ  
हैं। परमात्मा होनेपर भी प्रकृतिको साथ लेकर प्रकट होनेवाले  
हितकारी, सबके प्रेरक, अनन्त और निर्गुणरूप हैं। ऐसे श्रीरामच  
को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥ आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, स  
लक्ष्मीपति, सुन्दरतामें कामदेवका गर्व स्वर्ध करनेवाले, सौन्दर्यकी  
और अत्यन्त ही मनोहर हैं। आपको प्राप्त करना बड़ा कठिन है,  
दर्शन बड़े कठिन हैं, तर्कसे कोई आपको नहीं जान सकता, म  
शौल्याका पार पाना बड़ा कठिन है। आप अपनी कृपासे मायागम  
संगारके हर्नेवाले, भक्तोंको सहजहीमें दर्शन देनेवाले और प्रेम  
दीप्ततामें प्राप्त होनेवाले हैं ॥४॥ आप सत्यको उत्पन्न करनेवाले,  
में रहनेवाले, सत्य-संकरूप, सदा ही पुण्य-विध्य शक्ति-सामर्थ्य

नुष्ट और महान् कष्टोंके हरनेवाले हैं। धर्म आपका कवच है, आप ब्रह्म  
 के कर्मके ज्ञानमें अद्वितीय हैं, ब्राह्मणोंके पूज्य हैं, ब्राह्मणों और भक्तोंके  
 गारे हैं, तथा मुरदानवके मारनेवाले हैं ॥५॥ हे हरे ! आप नित्य, ममता-  
 दित, नित्यमुक्त, मान-रहित, पापोंके हरनेवाले, ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्दधन  
 के सबके मूल कारण हैं। आप सबके रक्षक, सबको मृत्युरूपसे भक्षण  
 करनेवाले यमराजके स्वामी, कूटस्थ, गूढ़ तेजवाले और भक्तोंपर कृपा करने-  
 वाले हैं ॥६॥ आप ही सिद्ध, साधक और साध्य हैं, आप ही वाच्य और  
 श्रव्य हैं, आप ही मन्त्र, जापक और जाप्य तथा आप ही सृष्टि और आप  
 ही द्रष्टा हैं। आप परम कारण हैं। आपकी नाभिसे कमल निकला है।  
 आपका शरीर मेघके समान श्यामसुन्दर है। सगुण-निर्गुण दोनों ही  
 आप हैं। यह समस्त दृश्यरूप संसार भी आप हैं और उसके द्रष्टा भी  
 आप ही हैं ॥७॥ आप आकाशके समान सर्वव्यापी, रागरहित, ब्रह्म  
 और धर देनेवाले देवताओंके स्वामी हैं। आपका नाम वैकुण्ठ और  
 विमल वामन ब्रह्मचारी है। सिद्ध और देव-समूह सदा आपकी वन्दना  
 किया करते हैं, आप पाखण्डका खण्डन कर उसे निर्मूल करनेवाले  
 हैं ॥८॥ आप पूर्ण आनन्दकी राशि, अविद्येक, अज्ञान और सत्य, रज,  
 तम गुणोंके त्रिदोषकी हरनेवाले हैं। यह तुलसीदास वचन, मन और  
 कर्मसे आपकी शरण पड़ा है; इसके भव-भयरूपी समुद्रके सोखनेके लिये  
 आप ही साक्षान् भगवन्त्य ऋषिके समान हैं ॥९॥

[ ५४ ]

देव—

विश्व-विख्यात, विश्वेश, विश्वायतन, विश्वमरजाद, व्यालारिगामी ।  
 ब्रह्म, वरदेश, वागीश, व्यापक, विमल, विपुल बलवान्, निर्बान् स्वामी ॥१॥



## वित्त-पत्रिका

प्रकृति, महत्त्व, शब्दादि गुण, देवता ध्याम, मरुद्गनि, अमलांबु, उषी  
 बुद्धि, मन, इंद्रिय, प्राण, चित्तात्मा, काल, परमाणु, चिच्छक्ति  
 सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमणि ! व्यक्तमव्यक्त, गतमेद, विष्णो ।  
 सुवन भवदंग, कामारि-चंद्रित, पदद्वंद्व मंदाकिनी-जनक, विष्णो ॥  
 आदिमध्यांत, भगवंत ! त्वं सर्वगतमीश, पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी ।  
 यथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु करि, कनक-कटकंगदा  
 गूढ, गंभीर, गर्वघ्न, गूढार्थवित, गुप्त, गौर्तीत, गुरु, ग्यान-न्याता ।  
 ग्येय, ग्यानप्रिय, प्रचुर गरिमागार, घोर-संसार-पर, पार दात्रा ॥  
 सत्यसंकल्प, अतिकल्प, कल्पांतकृत्, कल्पनातीत, अहि-तल्पवानी  
 वनज-लोचन, वनज-नाम, वनदाम-वपु, वनचरध्वज-कोटि-लावण्य  
 सुकर, दुःकर, दुराराध्य, दुर्व्यसनहर, दुर्ग, दुर्दर्प, दुर्गातिहर्त्ता ।  
 वेदगर्भार्मकादर्भ-गुनगर्व, अर्वागपर-गर्व-निर्वाप-कर्त्ता ॥  
 भक्त-अनुकूल, भवशूल-निर्मूलकर, तूलअघ-नाम पावक-समानं ।  
 तरल वृष्णातमी-त्तरणि, धरणीधरण, शरण-भयहरण, करुणानिधानं  
 बहुल धृंदारकावृंद-चंदारु-पद-द्वंद्व मंदार-मालोर-धारी ।  
 पाहि मामीश संताप-संकुल सदा दास तुलसी प्रणत रावणारी ।

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आप विश्वमें प्रसिद्ध, अखिल ब्रह्मा  
 स्वामी, विश्व-रूप, विश्वकी मर्यादा और गरुड़पर जानेवाले हैं ।  
 ब्रह्म हैं । घर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंके और घाणीके स्वामी  
 आप सर्वव्यापक, निर्मल, सड़े बलवान् और मोक्ष-पदके अर्थात्

॥१॥ मूल प्रकृति, महत्त्व, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्व,

शमोगुण, समस्त देयता, आकाश, वायु, अग्नि, निर्मल जल, पृथ्वी, बुद्धि, मन, दसों इन्द्रियों, प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान नामक पञ्च-प्राण, चित्त, आत्मा, काल, परमाणु और महान् चैतन्य-शक्ति आदि सभी कुछ आपका ही रूप है। हे राज-शिरोमणि ! प्रकट और अप्रकट सब कुछ आप ही हैं, आप अमेदरूपसे अग्निल विश्वमें रम रहे हैं। यह समस्त जगत् आपके एक अंशमें स्थित है। शिवजी आपके दोनों चरण-कमलोंकी इन्दना करते हैं, श्रीगंगाजी इन्हीं चरणोंसे निकली हैं। आप सर्व-विजयी हैं ॥२-३॥ हे भगवन् ! आप ही आदि, मध्य और अन्त हैं। आप सबमें व्याप्त हैं। हे ईश ! ब्रह्मवादी भ्रानीजन आपको सबमें ऐसे ओतप्रोत देखते हैं, जैसे धरुमें मृत, घड़ेमें मिट्टी, सर्पमें माला, लकड़ीके बने हुए द्वारियोंमें लकड़ी और कड़े, घाजू आदि गहनोंमें सोना ओतप्रोत है ॥४॥ इस प्रकार आप अत्यन्त गूढ़, गम्भीर, दर्प-हारी, गुप्त रहस्यके ज्ञाता, गुप्त, मन-इन्द्रियोंसे अनीत, सबके गुरु, ज्ञान, ज्ञाता और प्रेयस्वरूप, ज्ञान-प्रिय, महान् गौरवके भण्डार और इस घोर भवसागरसे पार उतार देनेवाले हैं ॥५॥ आपका संकल्प सत्य है, आप प्रलय और महाप्रलय करनेवाले हैं। मन-बुद्धिसे आपकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। आप शोपनागकी शय्यापर निवास करनेवाले हैं। आपके कमलके समान नेत्र हैं, आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है, आपके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम है और करोड़ों कामदेवोंके समान आप सुन्दरताकी राशि हैं ॥६॥ आप भक्तोंके लिये सुलभ, दुष्टोंके लिये दुर्लभ हैं, आपकी आराधनामें (परीक्षाके लिये) बड़े-बड़े कष्ट आते हैं, आप भक्तोंके सारे दुर्गुणोंका नाश कर देते हैं, बड़े दुर्गम (बड़ी



वेद-विरुधात, वरदेश, वामन, विरज, विमल, वागीश, वैकुण्ठस्वामी ।  
 काम-क्रोधादिमर्दन, विवर्धन, छमा-शांति-विग्रह, विहगराज-गामी ॥५॥  
 राम पावन, पाप-पुंज-मुंजाटवी-अनलइव निमिप निर्मूलकर्ता ।  
 भुवन-भूषण, दूषणारि, भुवनेश, भूनाथ, श्रुतिमाध जय भुवनभर्ता ॥६॥  
 प्रमल, अविचल, अकल, सकल, संतप्त-कलि-विकलता-भंजनानंदरासी ।  
 उरगनायक-शयन, तरुणपंकज-नयन, छीरसागर-अयन, सर्ववासी ॥७॥  
 सिद्ध-कवि-कोविदानंद-दायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।  
 यत्र संभूत अतिपूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं ॥८॥  
 नित्य निर्मुक्त, संयुक्तगुण, निर्गुणानंद, भगवंत, न्यामक, नियंता ।  
 विश्व-पोषण-भरण, विश्व-कारण-करण, शरण तुलसीदास त्रास-हंता ॥९॥

भावार्थ—हे धीरामजी ! आप सन्तोंके संताप हरनेवाले, महाप्रलयके समय सारे विश्वको अपनेमें विधाम देनेवाले तथा शिवजीको आनन्द देनेवाले हैं । आप शुद्ध-बोध-धाम, सच्चिदानन्दघन, सज्जनोंके आनन्दको बढ़ानेवाले और खर दैत्यके शत्रु हैं ॥१॥ हे धीरामजी ! आप शील और समताके स्थान, भेद-बुद्धिरूप विपमताके नाशक, लक्ष्मी-रमण और रावणके शत्रु हैं । आप हाथमें तलवार, सुन्दर ढाल, धाण, धनुष और शक्ति लिये रहते हैं, शरीरपर कवच धारण किये और सुन्दर कमरमें तरकस कसे हैं ॥२॥ आप सत्य-संकल्प, कल्याणके दाता, सत्यके हितकारी, सर्व दिव्यगुण और ज्ञान, विज्ञानसे पूर्ण हैं । आपका राम-नाम (अज्ञान-रूपी) अत्यन्त घन अन्धकारसे पूर्ण घोर संसाररूपी रात्रिका नाश करनेके

## विनय-पत्रिका

लिये 'प्रचण्ड किरणयुक्त सूर्यके समान है ॥३॥ आपका तेज तीक्ष्ण है, संसारके नये-नये तीव्र तापोंको आप नाश करनेवाला राजाका शरीर होनेपर भी आपका स्वरूप तपोमय है। आप परे और तपस्वी हैं। मान, मद, काम, मत्सर, कामना और मोह समुद्रके मथनेके लिये आप मन्दराचल हैं; आप बड़े विचार हैं ॥४॥ वेदोंमें प्रसिद्ध, वर देनेवाले देवताओंके स्वामी, वामन, विष्णु, विमल, वाणिके अधीश्वर और वैकुण्ठके स्वामी हैं। आप काम, क्रोध, लोभ आदिके नाश करनेवाले, क्षमा बढ़ानेवाले, शान्ति-रूप और राज गरुड़पर चढ़कर जानेवाले हैं ॥५॥ आप परम पवित्र और पुत्ररूपी भूजके वनको पलभरमें जड़सहित जला देनेवाले अग्नि हैं। आप ब्रह्माण्डके भूषण, दूषण दैत्यके शत्रु, जगत्के स्वामी, पृथ्वीके धरतीके मस्तक और सारे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले हैं। अजय हो ॥६॥ आप निर्मल, एकरस, कला-रहित, कला-सहित फालियुगके तापसे तपे हुए जीवोंकी व्याकुलताका नाश करनेवाले आनन्दकी राशि हैं। आप शोपनागवर शयन करते हैं, आपके नेत्र में प्रकृतित कमलके समान हैं। आप व्यक्तरूपसे क्षीर-सागरमें निवास करते हैं और अव्यक्तरूपसे मयमें रहते हैं ॥७॥ सिद्धों, कथियों, विद्वानोंको सुख देनेवाले आपके ये चरण-युगल दुष्टात्मा मनुष्योंके दुर्लभ हैं; जिन पवित्र चरणोंसे परम पवित्र जलवाली गंगाजी निकलती हैं, जिनके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर हो जाते हैं ॥८॥ आप नित्य हैं, मर्यादा मुक्त हैं, दिव्य-गुण-वन्धन हैं, तीनों गुणोंसे रहित हैं, माया-रहित हैं, एः प्रकारके पेश्वरोंसे युक्त भगवान् हैं, नियमोंके शर्ता

व्यपर शासन करनेवाले हैं । आप समस्त विश्वके पालन-पोषण करनेवाले, जगत्के आदि-कारण और शरणागत तुलसीदासका भय करनेवाले हैं ॥ ९ ॥

[ ५६ ]

३४—

दनुजघदन, दयासिंधु, देमापहन, दहन दुर्दोष, दर्पापहर्ता ।  
 दुष्टतादमन, दममवन, दुःखौषहर, दुर्ग दुर्वासना नाशकर्त्ता ॥१॥  
 भूरिभूषण, मानुमंत, मगवंत, मव-भंजनामपद, भुवनेश्व मारी ।  
 भावनातीत, भवबंध, भवभक्तहित, भूमिउद्धरण, भूधरण-धारी ॥२॥  
 परद, पनदाम, पागीश, विश्वातमा, विरज, वैकुण्ठ-मन्दिर-विहारी ।  
 प्यापकं प्योम, बंदारु, वामन, विभो, मन्त्रविद, मन्त्र, चिंतापहारी ॥३॥  
 महज सुंदर, सुमुख, सुमन, शुभ सर्वदा, शुद्ध सर्वज्ञ, स्वच्छन्दधारी ।  
 सर्वकृत, सर्वभूत, सर्वजित, सर्वहित, सत्य-संकल्प, कल्पांतकारी ॥४॥  
 नित्य, निर्मोह, निर्गुण, निरंजन, निजानंद, निर्वाण, निर्याणदाता ।  
 निर्भरानंद, निःकंप, निःमीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम, विघाता ॥५॥  
 महामंगलमूल, मोद-महिमायतन, मुग्ध-मधु-मयन, मानद, अमानी ।  
 मदनमर्दन, मदातीत, मायारहित, मंत्रु मानाथ, पाषाणपानी ॥६॥  
 कमल-सोपन, फलाकोश, फोदंडधर, फोशलाधीश, कल्याणरानी ।  
 वातुधान प्रपुर मत्तवरि-केगरी, मन्त्र-मन-पुण्य-आरूप्यवासी ॥७॥  
 अनप, अद्वैत, अनवद्य, अम्यक्त, अत्र, अमित, अविहार, आनंदसिंधो ।  
 अबल, अनिबल, अविरल, अनामय, अनारंभ, अंमोदनादहन-बंधो ॥८॥

दासतुलसी गेदग्विन्न, आपन्न इह, शोकगंपन्न, अतिशय मर्त्तव्यं ।  
 प्रणतपालक राम, परम करुणाधाम, पाहि मामुर्विपति, दुर्विर्त्तव्यं ॥

भावार्थ—हे श्रीगणेशजी ! आप दानयोंके नाशकर्ता, दयाके स्रोत  
 दम्भ दूर करनेवाले, दुष्टोंको मम्म करनेवाले और दर्पको हारनेवाले हैं। आप दुष्टताका नाश करनेवाले, दमके म्यान अर्थात् जिनेन्द्रिय  
 श्रेष्ठ, दुःखोंके समूहको हरनेवाले और कठिन तथा गुरी वामनाके  
 विनाशक हैं ॥ १ ॥ आप अनेक अलंकार धारण किये, सूर्यके स्वरूप  
 प्रकाशमान, ऐश्वर्यादि छः दिव्य गुणोंसे युक्त, संसारसे मुक्तनेत्र  
 अभय दान देनेवाले और सबसे बड़े जगदीश्वर हैं । आप मन-बुद्धि  
 भावनाओंसे परे, शिष्यजासे वन्दनीय, शिवभक्तोंके हितकारी, भूत-  
 उद्धार करनेवाले और (गोवर्द्धन) पर्यंतको धारण करनेवाले हैं ॥ २ ॥  
 धरद ! आपका शरीर मेघके समान श्याम है । आप वाणीके अर्थात्  
 विश्वके आत्मा, राग-रहित और वैकुण्ठ-मन्दिरमें नित्य विहार करते  
 वाले हैं । आप आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त हैं, सबसे वन्दनीय, वाक्-  
 रूप-धारी, सर्वसमर्थ, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मरूप और चिन्ताओंको दूर करनेवाले  
 वाले हैं ॥ ३ ॥ आप स्वभावसे ही सुन्दर, सुन्दर मुखवाले और सुन्दर  
 वाले हैं । आप सदा शुभस्वरूप, निर्मल, सर्वज्ञ और स्वतन्त्र भावना  
 करनेवाले हैं । आप सब कुछ करनेवाले, सबका भरण-पोषण करनेवाले  
 सबको जीतनेवाले, सबके हितकारी, सत्य-संकल्प और कल्पका स्वामी  
 अर्थात् प्रलय करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ आप नित्य हैं, मोह-रहित हैं, निर्गुण  
 निजानन्दरूप हैं, मुक्तिस्वरूप और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं ॥  
 आप पूर्ण आनन्दस्वरूप, अवल, सीमारहित, मोक्षरूप, उपाधिहीन

ममतारहित और स्वके विधाता हैं ॥५॥ आप बड़े-बड़े मंगलोंके ल, आनन्द और महिमाके स्थान, मूर्ख मधु दैत्यको मारनेवाले, दूसरों-को मान देनेवाले और स्वयं मानरहित हैं। आप कामदेवके नाशक, दसे रहित, मायासे रहित, सुन्दरी लक्ष्मी देवीके स्वामी और हाथमें मल लेनेवाले हैं ॥६॥ आपके नेत्र कमलके समान हैं, आप चाँसठ ज्वालोंके मण्डार, धनुष धारण करनेवाले, कोसलदेशके स्वामी और ज्ञानका राशि हैं। राक्षसरूपी बहुत-से मृतवाले हाथियोंको मारनेके लये सिद्ध हैं, भक्तोंके मनरूपी पवित्र वनमें निवास करनेवाले हैं ॥७॥ आप पापरहित, अद्वितीय, दोषरहित, अप्रकट, अजन्मा, सीमारहित, नेपिंकार और आनन्दके समुद्र हैं। आप अचल हैं, (पर) एक ही स्थानमें आपका निवास नहीं है,—आप सर्वत्र हैं, परिपूर्ण हैं, नीरोग प्रियात् मायाके विकारोंसे रहित हैं और अनादि हैं। मेघनादके मारने-वाले लक्ष्मणजीके आप ही बड़े भाई हैं ॥८॥ यह तुलसीदास संसारके दुःखोंसे दुखी, विपद्-ग्रस्त, शोकयुक्त और अत्यन्त भयभीत हो रहा है; हे शरणागत-पालक ! हे परम करुणाके धाम ! हे पृथ्वीपति रामजी ! इस दुर्दिनीतकी रक्षा कीजिये ॥९॥

[ ५७ ]

तव—

तद्दि सतसंग निजअंग श्रीरंग ! भवभंग-कारण शरण-शोकहारी ।  
 त्वं तु भवदंघ्रिपल्लव-समाधित सदा, भक्तिरत, विगतसंशय, सुरारी ॥१॥  
 त्वं सुर-सुर, नाग-नर, यक्ष-गंधर्व-स्वग, रजनिचर, सिद्ध, ये चापि अने ।  
 त्वं त्व-संसर्ग त्रैवर्गपर परमपद, प्राप्य निःप्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने ॥२॥



## धिनय-पत्रिका

वृत्र, बलि, बाण, प्रह्लाद, मय, व्याध, गज, गृध्र, द्विजबन्धु निजधर्म  
साधुपद-सलिल निर्धूत-कल्मष सकल, श्वपच-यवनादि कैवल्य-म  
शांत, निरपेक्ष, निर्मम, निरामय, अगुण, शब्दब्रह्मैकपर, ब्रह्म  
दक्ष, समदृक, स्वदृक, विगतअति स्वपरमति, परमरतिविरति तव च  
विश्व-उपकारहित व्यग्रचित्त सर्वदा, त्यक्तमदमन्यु, कृत पुण्यरस  
यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धिवासी  
वेद-पयसिधु, सुविचार मंदरमहा, अखिल-मुनिपुंड निर्मथनकर्ता  
सार सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण वैदभिर्मता  
शोक-संदेह, भय-हर्ष, तम-तर्पण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी  
यथा रघुनाथ-सायकनिशाचर-चमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी  
यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश भ्रमत जगजोनि संकट अनेकं  
तत्र त्वद्भक्ति-सज्जन, समागम, सदा भवतु मे राम विधाममेकं  
प्रबल भव-जनित त्रैव्याधि-भैपज भगति, भक्त भैपज्यमद्वैतदरसी  
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं, किमपि भति मलिन कह दासतुल

माथार्थ-हे रामापते ! मुझे सत्संग दोजिये, क्योंकि यह मा  
प्राप्तिका एक प्रधान साधन है, संसारके आयागमनका माश करने  
भार शरणमें भाये हुए जीयोंके शोकका हरनेवाला है । हे मुर्ता  
लोग मदा भापके धरण-पहलुयके आधित और भापकी भक्तिमें लगे  
हैं, उनका अविद्याजनित मन्देह नष्ट हो जाता है ॥१॥ वैश्य, वै  
जाग, मनुष्य, पशु, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध तथा और भी  
जिनके जीय हैं, वे सभी ( भापकी भक्तिमें लगे हुए ) रामोंके सत्संग

धर्म, धर्म, कामसे परे आपके उस नित्य परमपदको प्राप्त कर लेते हैं, जो अन्य साधनोंसे नहीं मिल सकता, परन्तु केवल आपके प्रसन्न होनेसे ही मिलता है ॥२॥ वृत्रासुर, बलि, याणासुर, प्रहाद, मय, व्याध (मीकि), गजेन्द्र, गिद्ध जटायु और द्राह्मणोचित कर्मसे पतित अजामिल तथा चाण्डाल, ययनादि भी सन्तोंके चरणोदकसे अपने सारे पापोंको धोकर कल्याण-पदके भागी हो गये ॥३॥ ( ये साधु कैसे हैं ) इस सारी कामनाएँ निकल जानेके कारण शान्त, किसीभी वस्तु या पदकी आकांक्षा न रहनेसे निरपेक्ष, भ्रमतासे रहित, उपाधिरहित, ज्ञानोंसे अतीत, शब्दब्रह्म अर्थात् वेदके जाननेवालोंमें मुख्य और वेत्ता हैं । जिस कार्यके लिये मनुष्य-देह मिला है उसे पूरा करनेमें लाल, सम-द्रष्टा, अपने आत्मस्वरूपको जाननेवाले, अपनी-परायी बुद्धि और भेदबुद्धिसे रहित, सब कुछ अपने श्रीरामका समझनेवाले, और वक्रपाणे । ये संसारके भोगोंसे विरक्त और आप परमात्माके अनन्य भक्त हैं ॥४॥ संसारके उपकारके लिये उनका चित्त सदा व्याकुल रहता है और क्रोधको उन्होंने त्याग दिया है और पुण्योंकी चढ़ी पूँजी प्रायी है । ऐसे सन्त जहाँ रहते हैं, वहाँ ब्रह्मा और शिवजीकी साथ कर क्षीर-समुद्र-निवासी भीहरि भगवान् आप-से-आप दौड़े जाते हैं ॥ ( सत्संग कैसा है ) वेद क्षीर-समुद्र है, उसका भलीभाँति विचार । मन्दराचल है, समस्त मुनियोंके समूह उसे मयनेवाले हैं । मथनेपर सत्संगरूपी सार-अमृत निकला । यह सिद्धान्त रुक्मिणीपति भगवान् विष्णु यतलाते हैं ॥६॥ सन्त-महारमाओंकी सत्-युक्ति शोक, सन्देह, व्यर्थ, अज्ञान और घासनाओंके समूहको इस प्रकार नष्ट कर डालती है, सि धीरपुनायजीके बाण राक्षसोंकी सेनाके समुदायको क्षीण और

यह घेगसे नष्ट कर देते हैं ॥७॥ हे रामजी ! अपने कर्मवश जहाँ मेरा जन्म हो, जिस-जिस भी योनिमें अनेक संकट भोगता हुआ मैं चहाँ ही मुझे आपकी भक्ति और सन्तोंका संग सदा मिलता रहे राम ! वस, मेरा एकमात्र यही आश्रय हो ॥८॥ संसार-जनित (मौलि दैहिक और दैविक ) तीन प्रकारकी प्रबल पीड़ाका नाश करनेके लिए आपकी भक्ति ही एकमात्र औषधि है और अद्वैतदर्शी ( चराचरमें आपको ही देखनेवाले ) भक्त ही वैद्य हैं । वास्तवमें सन्त भगवानमें कभी किञ्चित् भी अन्तर नहीं है । मलिन-शुद्धि तुल्य दास तो यही कहता-है ॥९॥

[ ५८ ]

देव—

देहि अवलंब करकमल, कमलारमन, दमन-दुख, शमन-संताप भाँ  
अज्ञान-राकेश-ग्रासन विधुंतुद, गर्व-काम-करिमत्त-हरि, दूषणारी ॥  
चपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका-दुर्ग, रचित मन दनुज मय-रूपधारी ॥  
विविध कोशाघ, अति रुचिर मंदिर-निकर, सत्वगुण प्रमुख श्रेकटक  
कुणप-अभिमान सागर भयंकर घोर, विपुल अवगाह, दुस्तर अपार  
नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल, संग-संकल्प धीची-विकार ॥  
मोह दशमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी ॥  
लोम अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विषुधांतकारी ॥  
द्वेष दृमुंछ, दंभ गार, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद मद-शूलपानी ॥  
अमितबल परम दुर्जय निशाचर-निकर सहित पद्मवर्ग गो-यातुधानी ॥

ीव भवदंघ्रि-सेवक विभीषण वसत मध्य दुष्टाटवी प्रसितचिंता ।  
 नेयम-यम सकल सुरलोक-लोकेश लंकेश-वश नाथ ! अत्यंत भीता ॥६॥  
 ान-अवधेश-गृह गेहिनी भक्ति शुभ, तत्र अवतार भूभार-हर्ता ।  
 मक्त-संकष्ट अवलोकि पितु-वाक्य कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्ता ॥७॥  
 कैवल्य साधन अखिल भालु भर्कट विपुल ज्ञान-सुग्रीधिकृत जलधिसेतू ।  
 प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन-तनय, विषम धन भवनमिव धूमकेतू ॥८॥  
 दुष्ट दनुजेश निर्वेशकृत दासहित, विश्वदुख-हरण बोधैकरासी ।  
 अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी हृदय कमलवासी ॥९॥

भावार्थ—हे लक्ष्मी-रमण ! इस संसार-सागरमें डूबते हुए मुझको  
 अपने कर-कमलका सहारा दीजिये । क्योंकि आप दुःखोंके दूर करनेवाले  
 और घड़े-वहै मन्तापोंके नाश करनेवाले हैं । हे दूषणनाशक ! आप  
 अज्ञानरूपी चन्द्रमाको प्रसनेके लिये राहु और गर्व तथा कामरूपी  
 भतयाले हाथियोंके मर्दन करनेके लिये सिंह हैं ॥१॥ शरीररूपी प्रह्लाण्ड-  
 में प्रवृत्ति ही लंकाका किला है । मनरूपी मयदानवने इसे धनाया है ।  
 इसमें जो अनेक कोश ( शरीरमें पाँच कोश हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय,  
 विज्ञानमय और आनन्दमय ) हैं, ये इसके अत्यन्त सुन्दर महल हैं,  
 सरयुगुण आदि तीनों गुण इसके सेनापति हैं ॥२॥ देहाभिमान  
 अत्यन्त मयद्वार, अथाह, अशर, दुस्तर समुद्र है, जिसमें राग-द्वेष और  
 कामना आदि अनेक घड़ियाल भरे हैं और आसक्ति तथा संकल्पोंकी  
 लहरें उठ रही हैं ॥३॥ इस लंकामें मोहरूपी रावण, अहंकाररूपी उसका  
 भाई कुम्भकर्ण और शान्ति नष्ट करनेवाला कामरूपी मेघनाद है । यहाँ

## विनय-पत्रिका

लोभरूपी अतिकाय, मत्सररूपी दुष्ट महोदर, क्रोधरूपी  
देवान्तक, द्वेषरूपी दुर्मुख, दम्भरूपी खर, कपटरूपी महामत  
मनुजाद और मदरूपी शूलशणि राक्षस हैं, यह (दुष्ट राज-रि  
उसके सेनापतिरूपी) राक्षसोंका समूह अत्यन्त ...  
पड़ा कठिन है। इन मोह आदि छः राक्षसोंके साथ ...  
राक्षसियों भी हैं ॥३५॥ हे नाथ ! आपके चरणकमलोंका सेव  
विभीषण है, जो इन दुष्टोंसे भरे हुए घनमें सर्वथा विन्ताम  
नियाम कर रहा है। यम-नियमरूपी दसों विकपाल और इन्द्र इस  
मर्षित होकर अत्यन्त भयभीत रहते हैं ॥६॥ इसलिये जै  
महाराज दशरथ और कौसल्याके यहाँ पृथ्वीका भार उतारने  
अकार लिया था, वैसे ही हे जागकीयहाम ! क्षानरूपी दशरथके  
अनिरूपी कौशल्याजीके द्वारा ( इन मोहानि राक्षसोंका नाश  
लिये प्रकट होयें। ) और जीम भक्तोंका कष्ट देखकर विनाकी  
आप उन समय घन पधारेंगे, ( वैसे ही मैंने हृदयरूपी घनमें प  
॥३॥ मैंभके जो राव बाधन हैं, उन अनेक शीघ्र-वर्षोंके द्वा  
की सुशोभन ( शंभार ) शागरपर तुम बीधा वीरिजिये। फिर  
ही लम्बर ही महा बलवान् वयनदुमार हनुमानजी विनयकी प  
की अतिसे साजसज्जा कर वैसे ॥८॥ लक्ष्मणर हे केवल ह  
विषयका पुत्र हरमंगलके धीमावती ! जीवकी वाग्य  
ते हुए वाग्यकर वंश अतिम साश कर वीरिजिये और सुशो  
हृदयरूपी अनेक अर्चदा श्रीं हे माई लक्ष्मण और धीमावती  
विषय वर्णन ॥ ३ ॥

[ ५९ ]

व-

तेन-उद्धरण रघुवर्य करुणाभवन, शमन-संताप, पापौघहारी ।  
 वैमल विज्ञान-विग्रह, अनुग्रहरूप, भूपवर, विबुध, नर्मद, खरारी ॥१॥  
 संसार-कांतार अति घोर, गंभीर, घन, गहन तरुकर्म-संकुल, मुरारी ।  
 पासना बलि खर-कंठकाकुल विपुल, निबिड़ त्रिपाटवी कठिन मारी ॥२॥  
 विविध चितवृत्ति-खग निकर श्येनोत्क, काक वक गृध आमिष-अहारी ।  
 प्रखिल खल, निपुण छल, छिद्र निरखत सदा, जीवनपथिकमन-खेदकारी  
 क्रोध करिमत्त, मृगराज कंदर्प, मद-दर्प वृक-मालु अति उग्रकर्मा ।  
 महिष मत्सर क्रूर, लोम शूकररूप, फेरु छल, दंभ मार्जारघर्मा ॥४॥  
 कपट मर्कट विकट, व्याघ्र पाखण्डमुख, दुखद मृगत्रात, उत्पातकर्ता ।  
 हृदय अवलोकि यह शोक शरणागतं, पाहि मां पाहि, भो विश्वमर्त्ता ॥५॥  
 प्रबल अहंकार दुरघट महीधर, महामोह गिरि-गुहा निबिड़बंधकारं ।  
 चित्त घेताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौघ वृथिक-विकारं ॥६॥  
 विषय-सुख-लालसा दंश-मशकादि, खल क्षिप्रि रूपादि सब सर्प, स्वामी ।  
 तत्र आधिपत तव विषम माया नाथ, अंध में मंद, व्यालादगामी ॥७॥  
 घोर, अवगाह भव आपगा पापजलपूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर, अपारा ।  
 मकर पद्मर्ग, गो नक चक्राकुला, कूल शुभ-अशुभ, दुख तीव्र धारा ॥८॥  
 सकल संघट पीच शोचवश सर्वदा दासतुलसी विषम गहन ग्रस्तं ।  
 प्राहि रघुवंशभूषण कृपाकर, कठिन काल विकराल-कलिप्राप्त-ग्रस्तं ॥९॥

भावार्थ—हे धीरामजी ! भार हीनोंका उद्धार करनेवाले, रघुपुत्रमें  
 भेद्य, कठिनाईके स्थान, सन्तापका नाश करनेवाले और पापोंके समूहके

विनय-पत्रिका

हरनेवाले हैं। आप निर्विकार, विज्ञान-स्वरूप, रूपा-मूर्ति, राजाओं शिरोमणि, देवताओंको सुख देनेवाले तथा सर नामक दैत्यके दुष्ट हैं ॥१॥ हे मुरारे ! यह संसाररूपी घन यज्ञ ही भयानक और महार है इसमें कर्मरूपी घृक्ष यज्ञ ही सघनतासे लगे हैं, वासनारूपी लता लपट रही हैं और ध्याकुलतारूपी अनेक पैसे काँटि बिछ रहे हैं। इन प्रकार यह सघन घृक्ष-समूहोंका महाघोर घन है ॥२॥ इस वनके चित्तकी जो अनेक प्रकारकी घृत्तियाँ हैं, सो मांसाहारी बाज, उलूकाक, बगुले और गिद्ध आदि पक्षियोंका समूह है। ये सभी बड़े दुष्ट और छल करनेमें निपुण हैं। कोई छिद्र देखते ही यह जीवरूपी यात्रियोंके मनको सदा दुःख दिया करते हैं ॥३॥ इस संसार-घनमें क्रोधरूपी मतवाला हाथी, कामरूपी सिंह, मदरूपी भेड़िया और गर्वरूपी रीछ है। ये सभी बड़े निर्दय हैं। इनके सिवा यहाँ मत्सररूपी क्रूर भैंसा, लोभरूपी शूकर, छलरूपी गीदड़ और दम्भरूपी बिलाव भी हैं ॥४॥ यहाँ कपटरूपी विकट घनर और पाखण्डरूपी बाघ हैं, जो सन्तरूपी मृगोंको सदा दुःख दिया करते और उपद्रव मचाया करते हैं। हे विश्वम्भर ! हृदयमें यह शोक देखकर मैं आपकी शरण आया हूँ, हे नाथ ! आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥५॥ इस संसार-घनमें ( इन जीव-जन्तुओंसे बच जानेपर भी आगे और विपद् है ) अहंकाररूपी बड़ा विशाल पर्वत है, जो सहजमें लाँघा नहीं जा सकता। इस पर्वतमें महामोहरूपी गुफा है जिसके अन्दर घना अन्धकार है। यहाँ चित्तरूपी घेताल, मनरूपी राक्षस, रोगरूपी भूत-प्रेतगण और भोग-विलासरूपी जहर फैला हुआ है ॥६॥ यहाँ विषय-सुखकी लालतारूपी

मस्त्रियाँ और मच्छर हैं, दुष्ट मनुष्यरूपी शिहो है, और हे स्वामी ! रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श विषयरूपी सर्प हैं । हे नाथ ! आपकी कठिन मायाने मुझ मूर्खको यहाँ लाकर पटक दिया है । हे गरुड़गामी ! मैं तो बन्धा हूँ, अर्थात् ज्ञाननेत्र-विहीन हूँ ॥७॥ इस संसार-घतमें वहनेवाली वासनारूपी भव-नदी, घड़ी ही भयङ्कर और अधाह है, जिसमें पापरूपी जल मरा हुआ है, जिसकी ओर देखना सहज नहीं, इसका पार करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि यह अपार है । इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सररूपी छः मगर हैं, इन्द्रियरूपी घड़ियाल और भँवर भरे पड़े हैं । शुभ-अशुभ कर्मरूपी इसके दो तीर हैं, इसमें दुःखोंकी तीव्र धारा बह रही है ॥८॥ हे रघुवंशभूषण ! इन सब नीचोंके दलने मुझे पकड़ रक्वा है, यह आपका दास तुलसी सदा चिन्ताके यश रहता है । इस कराल कलिकालके भयसे डरे हुए मुझको आप रूपा करके बचाइये ॥९॥

[ ६० ]

देव—

नामि नारायणं, नरं करुणायनं, ध्यान-पारायणं, ज्ञान-भूलं ।  
 अखिल संसार-उपकार-कारण, सदयहृदय, तपनिरत, प्रणतानुकूलं ॥१॥  
 श्याम नव तामरस-दामधुति वपुष, छवि कोटि मदनार्क अगणित प्रकाशं  
 तरुण रमणीय राजीव-लोचन ललित, वदन राकेश, कर-निकर हासं ॥२॥  
 सकल सौंदर्य-निधि, विपुल गुणधाम, विधि-वेद-बुध-शंभु-सेवित, अमानं  
 अरुण पदकंज-भकरंद मंदाकिनी मधुप-मुनिषुंद कुर्वन्ति पानं ॥३॥  
 शक्र-प्रेरित धीर मदन मद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी ।  
 भारकंडेय मुनिवर्यहित कौतुकी बिनहि कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ॥४॥



पुण्य वन शैलसरि चद्रिकाश्रम सदासीन पद्मासनं, एक रूपं ।  
 सिद्ध-योगीन्द्र-शृंगारकानन्दप्रद, मद्रदायक दरस अति अनूरुपं ॥१५॥  
 मान मनभंग, चितभंग मद, क्रोध लोभादि पर्वतदुर्ग, भुवन-मर्त्ता ।  
 द्वेष-मत्सर-राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर कर्म कर्त्ता ॥१६॥  
 विकटतर वक्र धुरधार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्गघारा ।  
 धीर-गंभीर-मन-पीर-कारक, तत्र के वराका वयं विगतपारा ॥१७॥  
 परम दुर्घट पथं, खल-असंगत साथ, नाथ ! नहीं हाथ वर विरति-यती ।  
 दर्शनारत्त दास, त्रसित माया-पाश, त्राहि हरि, त्राहि हरि, दास कटी ॥१८॥  
 दासतुलसी दीन धर्म-संबलहीन, श्रमित अति खेद, मति मोह नाशी ।  
 देहि अवलंब न बिलंब अंभोज-कर, चक्रघर-तेजबल शर्मराशी ॥१९॥

भावार्थ—मैं उन श्रीनर-नारायणको नमस्कार करता हूँ, जो करुणा  
 स्थान, ध्यानके परायण और ज्ञानके कारण हैं । जो समस्त संसार  
 उपकार करनेवाले, दयापूर्ण हृदयवाले, तपस्यामें लगे हुए और शरणागत  
 भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं ॥१॥ जिनके शरीरकी कान्ति नवीन-नील  
 कमलोंकी मालाके समान है । जिनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेवोंके सौ  
 और प्रकाश अगणित सूर्योंके समान है । नव-विकसित सुन्दर कमलों  
 समान जिनके मनोहर नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है ।  
 चन्द्रमाकी किरणोंके समान जिनकी मन्द मुसकान है ॥२॥ जो समस्त  
 सुन्दरताके भण्डार, अनेक दिव्य गुणोंके स्थान और ग्राह्या, वेद, विद्वान्  
 सिद्धि होनेपर भी मानरहित हैं । जिनके लाल-लाल  
 हुए मन्दाकिनी (गंगाजी) रूपी मकरन्दका मुनि  
 पान करते हैं ॥३॥ जो इन्द्रसे भेजे गये भीषण कामदेवके

हा मर्दन करनेवाले, कोधरहित, शुद्ध बोधस्वरूप और प्रह्लाचारी हैं।  
 जिन्होंने अपने सामर्थ्यसे विना ही कल्पान्तके मार्कण्डेय मुनिको दिखाने-  
 के लिये प्रलयकालकी लीला की थी ॥४॥ जो पवित्र वन, पर्यंत और  
 नदियोंसे पूर्ण बदरिकाश्रममें सदा पद्मासन लगाये एकरूपसे ( अटल )  
 विराजमान रहते हैं। जिनका अत्यन्त अनुपम दर्शन सिद्ध, योगीन्द्र और  
 देवताओंको भी आनन्द और कल्याणका देनेवाला है ॥५॥ हे विश्वम्भर !  
 यहाँ आपके बदरिकाश्रमके मार्गमें 'मनभंग' नामक पर्वत है, (जिससे देव-  
 कर लोग भागे बड़नेसे हिचकते हैं ) और यहाँ मेरे हृदयमें अभिमानरूपी  
 मनभंग है, (जिससे साधनका उत्साह भंग हो जाता है ) यहाँ 'चित्त-  
 भंग' पर्वत है, तो यहाँ मद् ही चित्तभंगका काम करता है, यहाँ जैसे  
 कठिन-कठिन पर्वत हैं तो यहाँ काम-लोभादि कठिन पर्वत हैं। यहाँ (जैसे  
 टिसक पशु आदि बड़े विघ्न हैं) तो यहाँ राग-द्वेष-मत्सर आदि अनेक बड़े  
 मारी विघ्न हैं, जो सब बड़े ही निर्दय और दुष्ट हैं ॥६॥ यहाँ कामिनी-  
 की बड़ी टेढ़ी नजर ही सुरेकी भयङ्कर धार और कामका विष ही तलवार-  
 की तेज धार है, जो बड़े-बड़े धीर और गर्भीर पुरुषोंके मनको भी पीड़ा  
 पहुँचा रहा है, फिर हम-सरीखे निर्बलोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥७॥  
 हे नाथ ! प्रथम तो यह आपके दर्शनका मार्ग ही बड़ा कठिन है, फिर दुष्ट  
 और नीचोंका ( मेरा ) साथ हो गया है, सहारेके लिये हाथमें पैराग्यरूपी  
 सक्की नहीं है। यह दास आपके दर्शनके लिये घबरा रहा है, परन्तु  
 मायाके कान्धेमें फँसकर दुमी हो रहा है। हे नाथ ! दासके कष्टको दूरकर  
 इसकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥८॥ मुझ दीन मुलमीदासके पास  
 धर्मरूपी मार्ग-स्थव ( कलेवा ) भी नहीं है, मैं थककर बड़ा दुमी हो रहा

## धिनय-पत्रिका

११

हैं, मोहने मेरी बुद्धिका भी नाश कर दिया है; अतएव हे चक्रवर्ति  
आप तेज, बल और सुखकी राशि हैं, मुझे बिना विलम्ब :  
करकमलका सहारा दीजिये ॥९॥

[ ६१ ]

देव-

सकल सुखकंद, आनंदवन पुण्यकृत, बिन्दुमाधव द्वंद्व-विपतिहा  
यस्यांघ्रिपाथोजअज-शंभु-सनकादि, शुक-शेष, मुनिवृंद अलि निलय  
अमल मरकत श्याम, काम शतकोटि छवि, पीतपट तडित इव जलदर्नी  
अरुण शतपत्र लोचन, विलोकनि चारु, प्रणतजन-सुखद, करुणार्द्रशीत  
काल-गजराज-भृगराज, दनुजेश-वन-दहन पावक, मोह-निशि-दिनेत्रं  
चारिभुज चक्र-कौमोदकी-जलज-दर, सरसिजोपरि यथा राजहंसं ॥१॥  
शुकुट, कुंडल, तिलक, अलकअलित्रातह्व, भृकुटि, द्विज, अधरवर, चारुनाभ  
रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुखसीव, हरि, इंद्रकर-कुंदमिव मधुरहासा ॥२॥  
उरसि वनमाल सुविशाल नवमञ्जरी, भ्राज श्रीवत्स-लांछन उदारं ।  
परम ब्रह्मन्य, अतिधन्य, गतमन्यु, अज, अमितबल, विपुल महिमा अ  
हार-केपूर, कर कनक कंकन रतन-जटित मणि-मेखला कटि प्रदंशं  
युगल पद नूपुरामुखर कलहंसपत, सुमग सवांग सांदर्य वेशं ॥३॥  
सकल साभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य श्री दक्षि दिशि रुचिर वारीश-कन्या ॥  
बसत विषुधायगा निकट तट सदनवर, नयन निरखंति भर तेजति धन्य

१ वर्तमान बिन्दुमाधवजीकी वार्षी ओर लक्ष्मीजी विराजती हैं । परन्तु यह  
बादकी स्थापित की हुई है । तुलसीदासजीके समयमें लक्ष्मी  
ओर थी । वह मूर्ति पद्मोत्पले एक ब्राह्मणके यहाँ है । उसके पूर्वजने ब्रह्म देव

अखिल मंगल-भवन, निचिड़ संशय-शमन, दमन-शृजिनाटवी, कष्टहर्ता।  
विश्वघृत, विश्वहित, अजित, गोवीत, शिव, विश्वपालन-हरण, विश्वकर्ता  
ज्ञान-विज्ञान-चैराम्य-ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरिदानं।  
प्रसित-भव-व्याल अतिवास तुलसीदास, त्राहि श्रीराम उरगारि-यानं॥

भावार्थ—हे विन्दुमाधव! आप स्वयं सुखोंकी धर्या करनेवाले मेघ हैं, आनन्दवन काशीको पवित्र करनेवाले हैं, रागद्वेषादि द्वन्द्वजनित विपत्ति-को हरनेवाले हैं; आपके चरणकमलोंमें प्रह्ला, शिव और सनक-सनन्दनादि तथा शेष और मुनिरूपी भ्रमर सदा निवास किया करते हैं ॥१॥ आप निर्मल नीलमणिके समान श्यामरूप हैं, सी करोड़ कामदेवोंके समान आपकी सुन्दरता है, पीताम्बर धारण किये हैं। यह पीताम्बर नीले बादलमें विजलीके समान शोभित हो रहा है। आपके नेत्र लाल कमलके समान हैं, सुन्दर चितवन है, भक्तोंको सुख देनेवाले हैं और करुणा-रससे स्वामायिक ही भीगे रहते हैं ॥२॥ आप कालरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंह, राक्षसरूपी घनके जलानेके लिये अग्नि और मोहरूपी रात्रिके नाश करनेके लिये सूर्यरूप हैं। चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं। आपके हाथमें श्वेत शंख, कमलके ऊपर

कि गुप्तमान मन्दिर तोड़नेवाले हैं तो मूर्तियाँ अपने घरमें उठा ले गया। उस समय शैवकाशीके विभवापत्रीका और वैष्णवकाशीके विन्दुमाधवकीका मन्दिर तोड़ा गया और उसीकी जगह मत्तजिद बनायी गयी। एक पक्करा मन्दिरका ही है। वृत्त उसी मेलमें बनाया गया। तुलसीदासजी जहाँगीरके समयमें वैकुण्ठवासी हुए और मन्दिर और मत्तके राज्यबालमें तोड़े गये।

## विनय-पत्रिका

बैठे हुए राजहंसके समान शोभित हो रहा है ॥३॥ मन्मथर मुकु  
कानोंमें कुण्डल, भालपर गिलक, भ्रमरसमूहके समान काली भद्रके  
भ्रशुटी, सुन्दर दौल, होठ और नाभिका बड़ी ही सुन्दर हैं। सुन्दर  
और शंखके समान प्रीया मानों मधु मुग्धकी सीमा है। हे हरे!  
मधुर मुसकान चन्द्रकिरण और कुन्दकुमुमके समान है ॥४॥  
हृदयपर नयी मंजरियोंमहिन विद्याल धनमाला और सुन्दर  
चिह्न शोभायमान हो रहा है। आप ब्राह्मणोंका बहुत आदर करनेवाले  
क्रोधरहित, अजन्मा, अपरिमित पराक्रमी, महा महिमावाले  
अनन्त हैं। आपको धन्य है, धन्य है ॥५॥ आप हृदयपर हार  
सोनेके याजूयन्द, हाथोंमें रत्नजडित कंकण और कटिदेशन  
तागड़ी धारण किये हैं। दोनों चरणोंमें हंसके समान  
करनेवाले नूपुर पहिने हैं। आपके समस्त अंग सुन्दर और आ  
सारा ही वेश सुन्दरतामय है ॥६॥ समस्त सौभाग्यमयी तीनों लोकों  
शोभा समुद्र  
गंगाजीके समीप सुन्दर मन्दिरमें निवास करते हैं; जो मनुष्य  
आपका दर्शन करते हैं, वे अत्यन्त धन्य हैं ॥७॥ आप सब  
स्थान, कठिन-कठिन सन्देहोंके नाश करनेवाले, पापरूपी धनरा  
करनेवाले और कष्टोंके हरनेवाले हैं। आप विश्वको धारण करनेवाले  
विश्वके हितकारी, अजेय, मन-इन्द्रियोंसे परे, कल्याणरूप और विश्व  
सृजन, पालन तथा संहार करनेवाले हैं ॥८॥ आप ज्ञान, विज्ञान, वैद्य  
हैं, अणिमादि महान् सिद्धियोंके देनेवाले बड़े शक्त  
तुलसीदासको संसाररूपी सर्प निगले जा रहा है, इससे!

भक्त्यन्त मयर्भात है, भक्तपथ है स्वयंके माशक गच्छकी सपारी करनेपाले  
 वीरामजी ! एपा करके मुझे यथा लीजिये ॥९॥

राग आसावरी

[ ६२ ]

दे परम फलु, परम पदाई ।  
 नखगिरल रुचिर चिन्दुमाधव छवि निरखहि नयन अपाई ॥ १ ॥  
 बिगद किगोर पीन सुंदर षष्ठ, स्याम सुरुचि अधिकाई ।  
 नीलकंज, वारिद, तमाल, मनि, इन्ह तनुते दृति पाई ॥ २ ॥  
 मृदुल धरन सुम चिन्ह, पदज नख, अति अभूत उपमाई ।  
 अरन नील पाषोड प्रसव अनु, मनिशुव दल-मसुदाई ॥ ३ ॥  
 जातरूप मनि-अटित मनोहर, नृपुत्र जन-सुगदाई ।  
 अनु हर-उर हरि विविध रूप धरि, रहे बर मयन मनार् ॥ ४ ॥  
 कटिगत रटति चारु किंकिनि-रव, अनुपम, बरनि न जाई ।  
 हेम अलख बल वारित मध्य अनु, मधुकर सुगर सुदाई ॥ ५ ॥  
 उर विमाल मृगुधरन चारु अति, एषथ होमदताई ।  
 विचन चारु विविध भूषन विधि, रवि निज कर मन सार् ॥ ६ ॥  
 मयत्र-मनिमाल हीष धावत कदि जाति न पदक निवार् ।  
 अनु उदगन-संदल वारिदपर, नखदर रपी अपाई ॥ ७ ॥

## विनय-पत्रिका

भुजगभोग-भुजदंड कंज दर चक्र गदा वनि आई।  
 सोभासीव ग्रीव, चिबुकाघर, चदन अमित छवि छाई॥  
 कुलिस, कुंद-कुडमल, दामिनि-दुति, दसनन देखि लज्जाई।  
 नासा-नयन-कपोल, ललित श्रुति कुंडल भ्रू-मोहि भाई।  
 कुंचित कच सिर मुकुट, माल पर, तिलक कहीं समुझाई।  
 अल्प तड़ित जुग रेख इंदु महुँ, रहि तजि चंचलताई।  
 निरमल पीत दुकूल अनूपम, उपमा हिय न समझाई।  
 बहु मनिजुत गिरि नील सिखरपर, कनक-चसन रुचिराई।  
 दच्छ भाग अनुराग-सहित इंदिरा अधिक ललितारै।  
 हेमलता जनु तरु तमाल डिग, नील निचोल ओझारै।  
 सत सारदा सेप श्रुति मिलिकै, सोभा कहि न सिरारै।  
 तुलसिदाम मतिमंद इंदरत कहै कौन पिधि गारै।

भावार्थ—इस शरीरका यही थका भारी फल और इतनी ही मति  
 कि नेत्र तृप्त होकर धीविन्दुमाघयकी नयनसे शिखतक शोभा देते  
 जो निर्मल, शोलह वर्षके किशोर, पुष्ट हैं और जिनके सुन्दर  
 शरीरकी शोभा भसीम है। ऐसा जान पड़ता है मानों नील  
 (श्याम) मेष, तमाल और नीलगम मणिने इन्हींके शरीरसे शोभा  
 की है ॥२॥ जिनके कोमल शरणोंमें सुन्दर (घन अंकुशादि) शुभ  
 और मन्त्रोंकी ऐसी भक्ति अभूत उपमा है मानों सार  
 रत्नयुक्त शर्माका समूह निकला हो ॥३॥ सोनेके

प्रहित नूपुर मनको मोहनेवाले और भक्तोंको सुग देनेवाले हैं, मानों  
 त्र्यम्बकके हृदयमें अनेक रूप धारण करके भगवान् विष्णु सुन्दर मन्दिर  
 नाकर घास कर रहे हों ॥४॥ कमरमें जो तागड़ीका सुन्दर शब्द हो  
 हा है, यह अनुपम है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, (फिर भी ऐसा कहा  
 जा सकता है) मानों सोनेके कमलकी सुन्दर कलियोंमें भ्रमरोंका सुहायना  
 शब्द (सुझार) हो रहा हो ॥५॥ विशाल यक्षःस्थलमें भृगुमुनिके धरण-  
 ना चिह्न अंकित होकर आपके यक्षःस्थलकी कोमलता बतला रहा है ।  
 हंकार आदि नाना प्रकारके गहने ऐसे सुन्दर हैं, मानों प्रलयार्जुने मन  
 डगाकर स्वयं अपने हाथोंसे बनाये हैं ॥६॥ गजमुक्ताओंकी मालाके  
 बीचमें रत्नोंकी शौकी ऐसी शोभा पा रही है कि उसका वर्णन नहीं हो  
 सकता (पर समझानेके लिये कहा जाता है कि) मानों (नीले) मेघपर  
 तारागणोंके मण्डलके बीचमें नवग्रहोंने बैठनेका स्थान बनाया हो । (भाव  
 यह है कि नीले मेघके समान भगवान्का शरीर है, तारागणोंका मण्डल  
 गजमुक्ताओंकी माला है और उसके बीचमें स्थान-स्थानपर पिरोये हुए  
 तारा-विरंगे रत्न नवग्रहोंके बैठनेका स्थान है ) ॥७॥ सर्पके शरीर-सदृश  
 भुजङ्गोंमें कमल, शंख, चक्र और गदा शोभित हो रहे हैं; प्रीया सुन्दरता-  
 की सीमा है और ठोड़ी तथा होठोंसहित मुखकी असीम छवि छा रही है  
 ॥८॥ दाँतोंकी ओर देखकर हीरे, सुन्दरकलियाँ और बिजलीकी चमक  
 दिखती है । नासिका, नेत्र, कपोल, सुन्दर कानोंमें कुण्डल और भाँड़े  
 शत्रुसे बहुत प्यारी लगती हैं ॥९॥ सिरपर घुँघुरवाले बाल हैं, उनपर  
 शत्रुपट्ट पहने हैं, मालपर तिलककी घड़ी शोभा हो रही है, उसे समझाकर  
 कहता है, मानों बिजलीकी दो छोटी-छोटी रेखाएँ अपनी चञ्चलता



## दिनय-पत्रिका

भुजगभोग-भुजदंड कंज दर चक्र गदा घनि आई।  
सोभासीव ग्रीव, चिबुकाधर, घदन अमित छवि छाई।  
कुलिस, कुंद-कुडमल, दामिनि-दुति, दसनन देखि लजाई।  
नासा-नयन-कपोल, ललित श्रुति कुंडल भ्रू-मोहि भाई ॥  
कुंचित कच सिर मुकुट, माल पर, तिलक कहाँ समुझाई।  
अल्प तड़ित जुग रेख इंदु महेँ, रहि तजि चंचलताई ॥  
निरमल पीत दुकूल अनूपम, उपमा हिय न समाई।  
बहु मनिजुत गिरि नील सिखरपर, कनक-चसन रुचिराई ॥  
दच्छ भाग अनुराग-सहित इंदिरा अधिक ललितारै।  
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग, नील निचोल ओढ़ारै ॥  
सत सारदा सेप श्रुति मिलिकै, सोभा कहि न सिराई।  
तुलमिदास मतिमंद द्वंदरत कहै कौन विधि गाई ॥१॥

भावार्थ—इस शरीरका यही थड़ा भारी फल और इतनी ही मरिय  
कि मेघ रूप होकर धीरे-धीरे माधयकी नगसे शिलतक सोभा देते हैं।  
जो निर्मल, रोलहद बर्यके किशोर, पुष्ट हैं और जिनके सुन्दर ल  
शरीरकी सोभा भर्मास है। ऐसा जान पड़ता है मानों नील कम  
(श्याम) मेघ, तमाल और नीलम मणिने इन्हींके शरीरसे सोभा  
की है ॥२॥ जिनके कोमल चरणोंमें सुन्दर (घत्र अंकुशदि) सुन्दर  
नगोंकी ऐसी भति अभूत उपमा है मानों एत  
अंगे रत्नयुक्त चरणोंका समूह निकला हो ॥३॥ सोनेके ल

इत नूपुर मनको मोहनेवाले और भक्तोंको सुख देनेवाले हैं, मानों यज्ञीके हृदयमें अनेक रूप धारण करके भगवान् विष्णु सुन्दर मन्दिर गाकर वास कर रहे हों ॥४॥ कमरमें जो तागड़ीका सुन्दर शब्द हो है, वह अनुपम है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, (फिर भी ऐसा कहा सकता है) मानों सोनेके कमलकी सुन्दर कलियोंमें भ्रमरोंका सुहावना गद् (गुझार) हो रहा हो ॥५॥ विशाल यक्षःस्थलमें भृगुमुनिके चरण-चिह्न अंकित होकर आपके यक्षःस्थलकी कोमलता थतला रहा है । कण आदि नाना प्रकारके गहने ऐसे सुन्दर हैं, मानों ब्रह्माजीने मन गाकर स्वयं अपने हाथोंसे बनाये हैं ॥६॥ गजमुक्ताओंकी मालाके बीचमें रत्नोंकी चौकी ऐसी शोभा पा रही है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता ( पर समझानेके लिये कहा जाता है कि) मानों (नीले) मेघपर तारागणोंके मण्डलके बीचमें नवग्रहोंने बैठनेका स्थान बनाया हो । (भाव यह है कि नीले मेघके समान भगवान्का शरीर है, तारागणोंका मण्डल गजमुक्ताओंकी माला है और उसके बीचमें स्थान-स्थानपर पिरौये हुए रिंग-विरंगे रत्न नवग्रहोंके बैठनेका स्थान है ) ॥७॥ सर्पके शरीर-सदृश

दाताका आरंभ कर द्वार, कुन्दकालया आरंभ बिजलीकी चमक लजाती है । नासिका, नेत्र, कपोल, सुन्दर कानोंमें कुण्डल और भौंहें मुझे बहुत प्यारी लगती हैं ॥९॥ सिरपर सुँघुरवाले बाल हैं, उनपर कुंकुट पहने हैं, भालपर तिलककी बड़ी शोभा हो रही है, उसे समझाकर कहता हूँ, मानों बिजलीकी दो छोटी-छोटी रेखाएँ अपनी चञ्चलता

छोड़कर चन्द्रमाके मण्डलमें निवास कर रही हैं ॥१०॥  
 अनुपम पीताम्बर धारण किये हैं, जिसकी उपमा हृदयमें समताई  
 (फिर माँ करुणा की जाती है) मानों शिखरपर सोनेके समान बख्श शोभित हो रहा हो ॥११॥  
 प्रेमसहित लक्ष्मीजी विराजमान हैं । वह ऐसी शोभा पा रही है ।  
 तमालवृक्षके समीप नीला बख्श ओढ़े सोनेकी लता बँधी हो ॥१२॥  
 सरस्वती, शेषनाग और वेद सब मिलकर इस शोभाका वर्णन हो  
 भी पार नहीं पा सकते । फिर मला यह रागद्वेषादि द्वन्द्वमें फैला  
 मन्दबुद्धि तुलसीदास किस प्रकार गाकर इस शोभाका वर्णन  
 सकता है ॥१३॥

राग जैतश्री

[ ६३ ]

मन इतनाई या तनुको परम फलु ।

सब अंग सुभग चिन्दुमाधव-छवि, तजि सुभाव, अबलोकु एकपु  
 तरुन अरुन अंमोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय-तिमिर-हारी ।  
 कुलिम-केतु-जव-जलज रेख बर, अंकुम मन-गज-बसकारी ।  
 कनक-त्रटित मनि नूपुर, मेखल, कटि-तट रटति मधुर बानी ।  
 त्रिपली उदर, गौमीर नामि सर, जहँ उपजे विरंचि ग्यानी ।  
 उर बनमानु, पदिक अति शोभित, विप्र-श्वरन चित कहँ करी ।  
 ग्याम तामरस-दाम-वरन षणु, पीत बमन मोमा बरपे ।

• "नख अंग" और "नखजिब" दोनों पाठ मिलते हैं ।

[ कंकन केयूर मनोहर, देवि मोद मुद्रिक न्यारी ।  
 श कंज दर चारु चक्रधर, नाग-सुंद-सम भुज चारी ॥५॥  
 मुग्रीव, छविसीव चिबुक द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा ।  
 व राजीव नयन, ससि आनन, सेवक-सुखद विसद हासा ॥६॥  
 चिर कपोल, श्रवन कुंडल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल आजै ।  
 लित भृकुटि, सुंदर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥७॥  
 य-सील-गुन-खानि दच्छ दिसि, सिंधु-सुता रत-पद-सेवा ।  
 ताकी कृपा-कटाच्छ चहत सिव, विधि, मुनि, मनुज, दनुज, देवा ॥८॥  
 तुलसिदास भव-श्रास मिटै तप, जब मवि येहि सरूप अटकै ।  
 नाहित दीन मलीन हीनसुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥९॥

भाषार्थ—हे मन ! इस शरीरका परम फल केवल इतना ही है कि तल-  
 से शिखरक सुन्दर अंगोंवाले श्रीविन्दुमाधवजीकी छविका पलमरके लिये  
 अपने चञ्चल स्वभावको छोड़कर स्थिरताके साथ प्रेमसे दर्शन कर ॥१॥  
 जिनके कोमल धरण नये मिले हुए लाल कमलके समान हैं, नर्मोंकी  
 ज्योति हृदयके अज्ञानरूप अन्धकारको हरनेवाली है । जिन धरणोंमें  
 पद्म, ध्वजा, जी और कमल आदिशी सुन्दर रेखाएँ हैं और अंकुशका  
 विद्युत् मनरूपी हाथोंको घशमें करनेवाला है ॥२॥ पैरोंमें सोनेके  
 रत्नजड़ित मूपुर और कमरमें तागड़ी मधुरस्वरसे बज रही है । पैटपर  
 नील रेखाएँ पड़ी हैं, नाभि सरोवरके समान गहरी है, जहाँमें ब्रह्माजी-  
 सरोवि ब्रामी उत्पन्न हुए हैं ॥३॥ हृदयपर वनमाला और उसके बीचमें

## चिन्तन-पत्रिका

मणियोंकी शैली भग्यल शोभायमान है, मृगुतीके चरणों  
 तो चिन्तकी शैली में है। मीले कमलके फूलोंकी मालाके  
 जिनके शरीरका वर्ण है, उग्रपत्नीताम्र मानों शोभाकी वर्ण ही का  
 है ॥५॥ हाथोंमें मनोहर कंकण और बाजूबन्द हैं, मंगुटी निगल  
 मानन्द में रही है। हाथोंकी मूँड़गदश विशाल चारों मुद्राओंमें शंभ,  
 गदा और पद्म धारण किये हैं ॥५॥ शंभके समान प्रीया सुन्दर  
 सीमा है। सुन्दर टोड़ी, दौन, लाल होठ और नुकीली नासिका है,  
 कमलके सदृश नेत्र, चन्द्रमाके समान मुखमण्डल और मृदु मुसकान  
 को सुगन्ध देनेवाली है ॥६॥ सुन्दर कपोल, कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर  
 और मालपर सुन्दर तिलक शोभित हो रहा है। सुन्दर कटीली  
 और मनोहर चितवन हैं और जिनके काले केशोंको देखकर मौरोंकी  
 भी लज्जित हो रही है ॥७॥ रूप, शील और गुणोंकी शानि सिन्धु  
 श्रीलक्ष्मीजी दक्षिणभागमें विराजित होकर चरणसेवा कर रही हैं, वि  
 कृपादायि शिव, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता भी चाहते हैं  
 तुलसीदासका संसारजनित भय तभी मिट सकता है, जब उसकी  
 इस सुन्दर छविमें अटक जाय; नहीं तो वह दीन, मलीन और सुष  
 होकर फरोड़ों जन्मोंतक व्यर्थ ही भटकता फिरेगा ॥९॥

राग वसन्त

[ ६४ ]

बंदों रघुपति करुणा-निधान । जाते छूटै भव-मेद-न्यान ॥  
 रघुवंस-कुमुद-सुखप्रद निसेस । सेवत पद-पंकज अज-महेस ॥  
 निज भक्त-हृदय-पायोज-भृंग । लावन्य बपुष अगनित अनंग ॥

ते प्रबल मोह-तम-मारतंड । अग्यान-गहन-पावक प्रचंड ॥ ४ ॥  
 भेमान-सिंधु-कुंभज उदार । सुररंजन, भंजन भूमिभार ॥ ५ ॥  
 गादि-सर्पगन-पन्नगारि । कंदर्प-नाग-मृगपति, सुरारि ॥ ६ ॥  
 व-जलधि-पोत चरनारविंद । जानकी-रवन आनंद-कंद ॥ ७ ॥  
 तुमंत-प्रेम-चापी-मराल । निष्काम कामधुक गो दयाल ॥ ८ ॥  
 लोक-विलक, गुनगहन राम । कह तुलसिदास विश्राम-धाम ॥ ९ ॥

भावार्थ—मैं करुणानिधान श्रीरघुनाथजीकी चन्द्रमा करता हूँ, जिससे  
 मेरा सांसारिक भेद-ज्ञान छूट जाय ॥१॥ श्रीरामजी रघुवंशरूपी कुमुदकी  
 चन्द्रमाके समान प्रफुल्लित करनेवाले हैं । ब्रह्मा और शिव जिनके चरण-  
 कमलोंकी सेवा किया करते हैं ॥२॥ जो अपने भक्तोंके हृदय-कमलमें  
 धमरकी भाँति निवास करते हैं । जिनके शरीरका लाघव्य असंख्य  
 कामदेयोंके समान है ॥३॥ जो बड़े प्रबल मोहरूपी बन्धकारके नाश  
 करनेके लिये सूर्य और अज्ञानरूपी गहन घनके भस्म करनेके लिये अग्निरूप  
 हैं ॥४॥ जो अभिमानरूपी समुद्रके सोखनेके लिये उदार अगस्त्य हैं और  
 देवताओंकी सुख देनेवाले तथा (दैत्योंका दहनकर) पृथ्वीका भार  
 उतारनेवाले हैं ॥५॥ जो राग-द्वेषादि सपोंके भक्षण करनेके लिये गरुड़  
 और कामरूपी दायीका मारनेके लिये सिंह हैं तथा मुर नामक दैत्यके  
 मारनेवाले हैं ॥६॥ जिनके घरणकमल संसार-सागरसे पार उतारनेके  
 लिये जदाज हैं । ऐसे धीज्ञानकीरमण रामजी आनन्दकी वर्षा करनेवाले  
 हैं ॥७॥ जो हनुमान्जीके प्रेमरूपी पायड़में हंसके समान सदा विहार  
 करनेवाले और निष्काम भक्तोंके लिये कामधेनुके समान परम दयालु

## त्रिनय-पत्रिका

हैं ॥८॥ तुलसीदास यही कहता है कि तीनों लोकोंके शिरोमणि  
के वन श्रीरामचन्द्रजी ही केवल शान्तिके स्थान हैं ॥९॥

राग भैरव

[ ६५ ]

राम राम रघु, राम राम रडु, राम राम जपु जीहा ।  
रामनाम-नवनेह-भेहको, मन ! हठि होहि पपीहा ॥  
सब साधन-फल कूप-सरित-सर, सागर-सलिल-निरासा ।  
रामनाम-रति-स्वाति-सुधा-सुभ सीकर प्रेमपिपासा ॥  
गरजि, तरजि, पापान बरपि पवि, प्रीति परखि जिय जानि ।  
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानि ॥  
रामनाम-गति, रामनाम-मति, रामनाम-अनुरागी ।  
है गये हैं, जे होहिंगे, तेइ त्रिभुवन गनियत बड़मागी ॥  
एक अंग भग अगसु गवन फर, विलसु न छिन छिन छाहै ।  
तुलमी हित अपनो अपनी दिसि, निरुपधि नेम नियाहै ॥

भावार्थ—हे जीम ! तू सदा राम राममें रमा कर, राम राम रटा कर  
राम रामका जाप किया कर। हे मन ! तू भी रामनाममें प्रेमरूपी नित्य  
मेघके लिये हट करके पपीहा बन जा ॥९॥ जैसे पपीहा कुआँ, नदी, त  
और समुद्रके जलकी जरा-सी भी भाशा न कर केवल स्वामी  
के जलकी एक प्रेम-बूँदके लिये प्यासा रहता है, ऐसे ही तू भी भी  
साधनों तथा उमके कलोंकी भाशा न कर केवल श्रीरामनामके प्रे

अमृतकी बूँदमें ही प्रीति कर ॥२॥ परीहेपर उसका प्रेमी मेघ गरजता है, डाँट बतलाना है, ओले बरसाता है, धज्जपात करता है, इस प्रकार कठिन-से-कठिन परीक्षा करके परीहेके अनन्य प्रेमको पूर्णरूपसे परस्वकर जब वह इस घातको जान लेता है कि ज्यों-ज्यों परीक्षा लेता हूँ त्यों-त्यों इस परीहेका प्रेम अधिकाधिक बढ़ता है, तब उसे स्वामीकी बूँद मिलनी है ॥३॥ इसी प्रकार ( भगवान्की दयासे परीक्षाके लिये कैसे ही संकट आकर तुझे विचलित करनेकी चेष्टा क्यों न करें ) तू तो (अनन्य मनसे) श्रीरामनामकी ही शरण ग्रहण कर, राम-नाममें ही बुद्धि लगा, राम-नामका ही प्रेमी बन । ऐसे रामनामके आश्रित जितने भक्त हो गये हैं, अभी हैं और जो आगे होंगे, त्रिलोकीमें उन्हींको बड़ा भाग्यवान् समझना चाहिये ॥४॥ यह (रामनाममें अनन्य प्रेम करनेका) एकांगी मार्ग बड़ा ही कठिन है, यदि तू इस मार्गपर चला जाय तो क्षण-क्षणमें ( सांसारिक सुखोंकी ) छाया लेनेके लिये ठहरकर देर न करता । हे तुलसीदास ! तेरा भला तो अपनी ओरसे श्रीरामनाममें निरूपधि अर्थात् निष्कपट प्रेमके निवाहनेसे ही होगा ॥५॥

[ ६६ ]

राम जपु, राम जपु, राम जपु, धावरे ।

घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥ १ ॥

एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे ।

ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे ॥ २ ॥

भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे ।

राम-नाम ही सौ अंत सब ही को काम रे ॥ ३ ॥





राम सुमिरत सब विधि हीको राज रे ।

रामको विसारियो निषेध-सिरताज रे ॥ २ ॥

राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे ।

मनि लिये फनि जियै, व्याकुल बिहाल रे ॥ ३ ॥

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे ।

कहत पुरान, वेद, पंडित, पुरारि रे ॥ ४ ॥

राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे ।

राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे जीय ! सदा अनन्य प्रेमसे धीरामनाम जपा कर, इस कलिकालमें रामनामके सिवा घैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दानसे कुछ भी नहीं हो सकता ॥ १ ॥ शास्त्रोंमें विधिनिषेधरूपसे कर्म बतलाये हैं, मेरी सम्मतिमें धीराम-नामका स्मरण करना ही सारी विधियोंमें राज-विधि है और धीरामनामको भूल जाना ही सबसे बड़कर निषिद्ध कर्म है ॥२॥ राम-नाम महामणि है और यह जगत्का जाल साँप है । जैसे मणि ले लेनेसे साँप व्याकुल होकर मर-सा जाता है, इसी प्रकार रामनामरूपी मणि ले लेनेसे दुःखरूप जगत्-जाल आप ही नष्टप्राय हो जायगा ॥३॥ अरे ! यह राम-नाम करुणधृष्ट है, जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलोंका देनेवाला है। इस बातको वेद, पुराण, पण्डित और शिष्यजी महाराज भी कहते हैं ॥४॥ धीराम-नाम प्रेम और परमार्थ अर्थात् भक्ति-मुक्ति दोनोंका सार है और यह रामनाम इस तुलसीदासके तो जीपनका आधार ही है ॥५॥

राम राम राम जीह जौलों तू न जपिहै ।  
 तौलों, तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै ॥ १ ॥  
 सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै ।  
 सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै ॥ २ ॥  
 जागत, बागत, सपने न सुख सोइहै ।  
 जनम जनम, जुग जुग जग राइहै ॥ ३ ॥  
 छटिबेके जतन बिसेप बाँधो जायगो ।  
 ह्वैह बिप भोजन जो सुधा-सानि खायगो ॥ ४ ॥  
 तुलसी तिलोक, तिहूँ काल तोसे दीनको ।  
 रामनाम ही की गति जैसे जल मीनको ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे जीय ! जयतक तू जीभसे राम-नाम नहीं जपेगा, त  
 कहीं भी जा,—तीनों तापोंसे जलता ही रहेगा ॥१॥ गंगाजीके  
 जानेपर भी तू पानी बिना तरमकर दुखी होगा, कल्पवृक्षके न  
 तुझे द्रिद्रता मनायी रहेगी ॥२॥ जागते, सोते और सपनेमें तू  
 भी सुख नहीं मिलेगा, इस संसारमें जन्म-जन्म और युग-युगमें तू  
 ही पड़ेगा ॥३॥ जितने ही छटनेके (दूररे) उपाय करेगा (रा  
 विमुक्त होनेके कारण) उतना ही भीर कमकर बँधता जायगा। स  
 भीजन भी तरे लिये बिपके समान ही जायगा ॥४॥ हे तुलसी !  
 दोनको नाँवों लोको और तीनों कालोंमें एक हीरामनामचा  
 भरोगा है जैसे मछलीको जलका ॥५॥

[ ११ ]

सुमिह मनेहगो मृ नाम शय्यायको ।  
 गेहल निर्गहलको, गग्ना अगायको ॥ १ ॥  
 बाण ई अयागेहको, पुन पुनहीजको ।  
 गारह गगीहको, दयापु दानि हीनको ॥ २ ॥  
 पूत अह्वलीजको, गुग्गो ई वेद गागि ई ।  
 पोगुरेको हाथ पाप, ओषधेको ओगि ई ॥ ३ ॥  
 दाप दाप धुरेको, अया निरायाको ।  
 गेपु मर शायको, हेनु गुग्गयाको ॥ ४ ॥  
 पतिलपावन हाथ जाय जो म हगो ।  
 सुदिनि सुभूयि यको तुलसी को उगो ॥ ५ ॥

काही है जीवो मु हेअपूर्वक वाअगाअवक हीरगवे काअवक अगल  
 ३० कअवक काअ दागिदहीव दविबोव (अहे वागोअवक वगिवा) हे अगवक  
 कोई अगाव कोही है अगवक अगावक है ॥ १ ॥ अह अगलकाअ वाअदीअवक  
 काअव ओव सुकहीअवक गुग ई, ( वाअ काअ अअकेदागे अअदीअ ओव  
 सुकहीअ ही काअ अअददाव, ओव अअदीअ अअदद हो काअ है ) । अह  
 काअकेवा अगलकाअ काअकेदागा अगाव ओव हीअदि हीअे दयापु काअ ई  
 ३१ ॥ अह वाअ काअ पुअदीअेवक अह पुअ ( वाअकाअ अअकेदागे  
 अअदीअ ओव अअके हीअ काअके काअ है ) ओव हीअके अअदीअ हाअ हीअ  
 काअ अअकेओ ओवई है । वाअकाअ अअकेदागे वाअकाअ काअके ओव अअदीअ

## पिनप-पत्रिका

लौच जाने हैं ) इस सिद्धांतका येदु भाषी है ॥३॥ ४०  
 का मा-भाप और तिराभायका भाषा है । संसार-भाग्यमें  
 लिये यह पुत्र है और यह सुनोंके साथ भगवत्-प्राप्तिका प्रदान  
 है ॥४॥ राम-नामके समान पतिव-पावन मृगा कौन है, विमं  
 करनेसे तुलसीके समान ऊसर भी सुन्दर ( भक्ति-प्रेमरूपी प्रचुर धा  
 उपजाऊ भूमि धन गया ॥५॥

[ ७० ]

मलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै ।  
 मन राम-नामसों सुभाप अनुरागिहै ॥ १ ॥  
 राम-नामको प्रभाउ जानि जूड़ी आगिहै ।  
 सहित सहाय कलिकाल मीरु भागिहै ॥ २ ॥  
 राम-नामसों विराग, जोग, जप जागिहै ।  
 वाम विधि माल हू न करम दाग दागिहै ॥ ३ ॥  
 राम-नाम मोदक सनेह सुधा पागिहै ।  
 पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥ ४ ॥  
 राम-नाम काम-तरु जोइ जोइ माँगिहै ।  
 तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मन ! यदि मेरे कहेपर चलकर, स्वभाषसे ही  
 नामसे प्रेम करेगा तो तेरा सब प्रकारसे भला होगा ॥१॥ राम  
 कँपा देनेवाली सर्दीका नाश करनेके लिये अग्निके साथ

मनुष्यकी बुद्धिको विचलित कर देनेवाला कलिकाल अपने (काम-क्रोधादि) सहायकों समेत रामनामके डरसे तुरन्त भाग जायगा ॥२॥ राम-नामके प्रभावसे वैराग्य, योग, जप, तप आदि आप ही जागृत हो उठेंगे; फिर धाम विधाता भी तेरे मस्तकपर घुरे कर्म-फल अंकित नहीं कर सकेगा, अर्थात् तेरे सारे कर्म क्षीण हो जायेंगे ॥३॥ यदि तू राम-नामरूपी लड्डू-डूको प्रेमरूपी अमृतमें पागकर खायगा तो तुझे सदाके लिये परम सन्तोष प्राप्त हो जायगा, फिर सुखके लिये घर-घर भटकना नहीं पड़ेगा ॥४॥ राम-नाम कल्पवृक्ष है, इससे हो तुलसीदास ! तू उससे स्वार्थ-परमार्थ जो कुछ भी माँगेगा, सो सभी मिल जायगा, किसी घातकी कमी नहीं रहेगी ॥५॥

[ ७१ ]

ऐसेहू साहबकी सेवा सों होत चोरु रे ।

आपनी न बूझ, न कहै को राँडरोरु रे ॥ १ ॥

मुनि-मन-अगम, सुगम माइ-चापु सों ।

कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आपु सों ॥ २ ॥

लोक-बेद-विदित बड़ौ न रघुनाथ सों ।

सब दिन सब देस, सबहिके साथ सों ॥ ३ ॥

स्वामी सरवग्यसों चलै न चोरी चारकी ।

प्रीति पहिचानि यह रीति दरवारकी ॥ ४ ॥

काय न कलेस-लेस, लेत मान मनकी ।

सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत-जनकी ॥ ५ ॥

रीसे भग होत, सीसे देत निज धाम रे ।

फलत मकल फल कामतरु-नाम रे ॥६॥

बेचे खाटो दाम न मिले, न राखे काम रे ।

सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजाराम रे ॥७॥

भावार्थ—भर ! नृ ऐसे स्वामीकी सेवास भी अपना जी सुगत  
तुझमें न तो अपनी समझ है और न तुझे दूसरेके कहेका ही कुछ मया  
तू तो किर्मी भी कामका नहीं, पत्थरका रोड़ा है ॥१॥ जो भ  
श्रीराम मुनियोंके मनको भी अगम हैं, यही भक्तोंके लिये माना-पि  
समान सुगम हैं, वे कृपाके समुद्र हैं, स्वभावसे ही मित्र और अपने  
ही प्रेम करनेवाले हैं ॥२॥ यह यान लोक और वेदमें प्रसिद्ध है कि श्री  
नाथजीसे बड़ा कोई भी नहीं है, वे सर्वदा, सर्वत्र और सभीके  
रहते हैं ॥३॥ (सच्चे मनसे श्रीरामसे प्रेमकर, क्योंकि) वे स्वामी सर्व  
उनसे सेवककी चोरी छिपी नहीं रह सकती। वहाँ प्रेमकी ही पहचान  
है, यही उनके दरवारकी नीति है ॥४॥ उनकी सेवामें शरीरको जरा  
भी कष्ट नहीं पहुँचता, वे स्वामी मनके प्रेम और सेवाको ही मान  
हैं। प्रेमसे स्मरण करते ही वे संकोचमें पड़ जाते हैं और सेवा  
रुचि देखने लगते हैं, अर्थात् भक्तोंकी मनमानी वस्तु देकर भी।  
संकोचमें रहते हैं कि हमने कुछ भी नहीं दिया ॥५॥ यह जिसपर प्र  
उसके वशमें हो जाते हैं और जिसपर नाराज होते हैं :  
(खुड़ाकर) अपने परम धाममें भेज देते हैं। उनका  
है, जिसमें सब प्रकारके फल फलते हैं ॥६॥ जि

बेचनेपर एक खोटा पैसा नहीं मिलता और खग्नेसे कुछ काम नहीं निकलता, ऐसे तुलसीदासको भी जिन्होंने निहाल कर दिया, ऐसे राजाधिराज धीरामजीका क्या कहना है ? ॥७॥

[ ७२ ]

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।

हैं तो साईं-द्रोही पै सेवक-हित साईं ॥ १ ॥

रामसों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटी ।

रामसो खरो है कौन, मोसो कौन खोटो ॥ २ ॥

लोक कहै रामको गुलाम हों कहावाँ ।

एतो बड़ो अपराध माँ न मन बावों ॥ ३ ॥

पाथ माये चढ़े तन तुलसी ज्यों नीचो ।

बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो ॥ ४ ॥

भावार्थ—धीरामजीने अपने भलेपनसे ही मेरा भला कर दिया। (मेरे कर्त्तव्यसे भला होनेका क्या आशा थी ?) क्योंकि मैं तो स्वामीके साथ घुराई करनेवाला हूँ; परन्तु मेरे स्वामी धीराम सेवकके हितकारी हैं ॥१॥ धीरामजीसे तो बड़ा कौन है और मुझसे छोटा कौन है ? उनके समान खरा कौन है और मेरे समान खोटा कौन है ? ॥२॥ संसार कहता है कि मैं (तुलसीदास) रामजीका गुलाम हूँ, और मैं भी यह कहलवाता हूँ। (वास्तवमें रामका सेवक न होकर भी मैं इस पशुकी स्वीकार कर लेता हूँ) यह मेरा बड़ा भारी अपराध है, तो भी धीरामका मन मेरी तरफसे तनिक भी नहीं फिरा ॥३॥ हे तुलसी ! जैसे तिनका



बहुत नीच होनेपर भी जलके मस्तकपर चढ़ जाता है, (ऊपर उतराने लगता है) परन्तु जल उसे अपने द्वारा ही सोंचकर पालापोसा हुआ समझकर डुबाता नहीं। (इसी प्रकार भगवान् श्रीरामजी समझते हैं) ॥४॥

[ ७३ ]

जागु, जागु, जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी ।

देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥ १ ॥

सोवत सपनेहूँ सहै संसृति-संताप रे ।

बूढ़यो भृग-चारि खायो जेवरीको साँप रे ॥ २ ॥

कहै वेद-बुध, तू तो बूझि मनमाहिं रे ।

दोष-दुख सपनेके जागे ही पै जाहिं रे ॥ ३ ॥

तुलसी जागेते जाय ताप तिहूँ ताय रे ।

राम-नाम सुचि रुचि सहज सुमाय रे ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—अरे मूर्ख जीव ! जाग जाग ! इस संसाररूपी रात्रिकी देव ! शरीर और घर-कुटुम्बके श्रेमको ऐसा क्षणभंगुर समझ जैसे घादलोंके बीचकी बिजली, जो क्षणभर घमककर ही छिप जाती है ॥१॥ (जागतेके समय ही नहीं) तू सोते समय सपनेमें भी संसारके कष्ट ही सह रहा है, अरे ! तू धमसे भृग-वृष्णाके जलमें डूबा जा रहा है और तुझे रस्सीरा सर्प डस रहा है ॥२॥ वेद और विद्वान् पुकार-पुकारकर कह रहे हैं,

ज्ञानरूपी निद्रासे जागनेपर ही नष्ट होते हैं और तभी श्रीराम-नाममें  
 हेतुकी स्वाभाविक विशुद्ध प्रीति उत्पन्न होती है ॥४॥

राग विभास

[ ७४ ]

जानकीसकी कृपा जगावती सुजान जीव,  
 जागि त्यागि मूढ़ताऽनुरागु श्रीहरे ।  
 करि विचार, तजि विकार, मजु उदार रामचंद्र,  
 भद्रसिंधु, दीनबंधु, वेद बद्ध रे ॥ १ ॥  
 मोहमय कुहू-निसा विसाल काल विपुल सोयो,  
 खोयो सो अनूप रूप सुपन जू परे ।  
 अच प्रमात प्रगट ग्यान-मानुके प्रकास, घास-  
 ना, सराग मोह-द्वेष निविड तम टरे ॥ २ ॥  
 भागे मद-मान चोर भोर जानि जातुघान  
 काम-कोह-लोम-छोम-निकर अपदरे ।  
 देखत रघुवर-प्रताप, बंति संताप-पाप,  
 ताप त्रिविध प्रेम-आप दूर ही करे ॥ ३ ॥  
 अवन मुनि गिरा गँभीर, जागे अति धीर वीर,  
 पर विराग-तोष सकल संत आदरे ।  
 तुलसिदास प्रभु कृपालु, निरखि जीवजन बिहालु,  
 भंज्यो भव-बाल परम मंगलाचरे ॥ ४ ॥

भावार्थ—( श्रीरामनामके आश्रित ) चतुर जीवोंको श्रीरामजीकी  
 पा ही ( अज्ञानरूपी निद्रासे ) जगाती है, ( अतएव रामनामके प्रभावसे )  
 स्वर्गताको त्यागकर जाग और श्रीहरिके साथ प्रेम कर । नित्यानित्य  
 स्तुका विचार करके, काम-क्रोधादि समस्त विकारोंको छोड़कर  
 ध्याणके समुद्र, दीनबन्धु, उदार श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर, यही  
 दकी आज्ञा है ॥१॥ मोहमयी अमावस्याकी लम्बी रात्रिमें सोते हुए  
 से बहुत समय यौत गया और माया-स्वप्नमें पड़कर तू अपने अनुपम  
 मस्वरूपको भूल गया । देख ! अथ सवेरा हो गया है और ज्ञानरूपी  
 र्यका प्रकाश होते ही घासना, राग, मोह और द्वेषरूपी घोर अन्धकार  
 र हो गया है ॥२॥ प्रातःकाल हुआ समझकर गर्व और मानरूपी घोर  
 गने लगे तथा काम, क्रोध, लोभ और क्षोभरूपी राक्षसोंके समूह  
 ने आप डर गये । श्रीरघुनाथजीके प्रचण्ड प्रतापको देखते ही पाप-  
 ताप नष्ट हो गये और तीन प्रकारके ताप श्रीरामजीके प्रेमरूपी  
 देने शान्त कर दिये ॥३॥ इस गम्भीर घापीको कानोंगे सुनकर  
 र-श्रीर मग्न मोह-निद्रामें जाग उठे और उन्होंने सुन्दर वीरान्य,  
 नोष आदिको आदर्भमें अथना लिया । हे मुलसीदाग ! हृषामय  
 रामचन्द्रजीने मक-जीवोंको ध्यावृत्त देखकर गंगार-रूपी जाग तां  
 ला और उन्हें परमानन्द प्रदान करने लगे ॥४॥

राग ललित

[ ७१ ]

टो स्वगे गवगे हीं, राखी मीं, गवगेमों शूट कपों कहींगो,

म-वचन-हिये, कहां न कपट किये, ऐसी हठ जैसी गाँठ  
पानी परे सनकी ॥ १ ॥

रो, भरोसो नाहिं, चासना उपासनाकी, वासव, चिरंचि  
सुर-नर-मुनिगनकी ।

रयके साथी मेरे, हाथी खान लेवा देई, काहू तो न पीर  
रघुवीर ! दीन जनकी ॥ २ ॥

प-सभा सावर लवार भये, देव दिव्य, दुसह साँसति कीर्ज  
आगे ही या तनकी ।

चे पराँ, पाऊँ पान, पंचमें पन प्रमान, तुलसी चातक आस  
राम स्यामपनकी ॥ ३ ॥

भाषार्थ—सुरा-भला जो कुछ भी हूँ सो आपका हूँ । आपकी स्तौह, मैं आपसे झूठ क्यों कहूँगा ? आप तो सभीके मनकी धात जानते हैं । मैं कपटसे नहीं, परन्तु कर्म, वचन और हृदयसे कहता हूँ कि 'मैं आपका हूँ ।' यह भाव-नी गुलामीका हठ इतना पका है जैसे पानीसे भीगे हुए सनकी गाँठ ! ॥१॥ रामजी ! न तो मुझे दूस्रेका भरोसा है और न मुझे इन्द्र, ब्रह्मा अथवा अन्य देवता, मनुष्य और मुनियोंकी उपासना करनेकी ही इच्छा है आपके सेवा सभी स्वार्थके साथी है, जन्मभर हाथोंकी तरह सेवा करनेपर कहीं ऐसे-जैसा कुछ फल देते हैं । इनमेंसे किसीको भी शीनोंके दुःखमें ऐसी उदात्तभूति नहीं है, जैसी आपको है ॥२॥ हे दिव्यदेव, 'मैं आपका गुलाम हूँ' यह बात यदि मैं झूठ कहता हूँ तो मेरे इस शरीरको अपने ही भागे

असह्य कष्ट दीजिये जैसा मौपोंकी समामें (साँपको घरा करनेवा  
 प्र नहीं जाननेवाले) झूठे मँपरेको मिलता है अर्थात् उस पाखण्डीको  
 म फाट म्वाते हैं। और यदि मैं सच्चा (रामका गुलाम) सिद्ध हो जाऊँ तो  
 साथ ! मुझे पंचोंके बीचमें सचार्थका एक रथीड़ा मिल जाय। क्योंकि  
 तुलसीरूपी च्यातकको एक रामरूपी दयाम मेघकी ही आशा है ॥३॥

[ ७६ ]

रामको गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम,  
 काम यहै, नाम द्वै हौं कयहूँ कहत हौं ।  
 रोटी-लूगा नीके राखै, आगेहूकी बेद भाखै,  
 मलो हूँहै तेरो, ताते आनँद लहत हौं ॥ १ ॥  
 चाँध्याँ हौं करम जड़ गरम गूड़ निगड़,  
 सुनत दुसह हौं तौ साँसति सहत हौं ।  
 आरत-अनाथ-नाथ, कौसलपाल, कृपाल,  
 लीन्हों छीन दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥ २ ॥  
 बूझ्यौ ज्यौंही, कद्यो, में हूँ चरो हूँहौ रावरो जू  
 मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं ।  
 मीजो गुरु पीठ, अपनाइ गहि चाँह, बोलि  
 सेवक-सुखद, सदा विरद बहत हौं ॥ ३ ॥  
 लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे ।

तुलसी अकाज-काज राम ही के रक्षे-खीक्षे,  
 प्रीतिकी प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मैं श्रीरामजीका गुलाम हूँ। लोग मुझे 'रामबोला' कहने लगे हैं। काम यही करता हूँ कि कभी-कभी दो चार चार राम-नाम कहता हूँ। इसीसे राम मुझे रोटी-कपड़ोंसे अच्छी तरह रखते हैं। यह तो सब लोककी बात हुई, आगे परलोकके लिये तो वेद पुकार ही रहे हैं कि राम-नामके प्रतापसे तेरा कल्याण हो जायगा। वस, इसीसे मैं सदा सन्न रहता हूँ ॥१॥ पहले मुझे जड़ कर्मोंने अहंकाररूपी कटिन बेड़ियोंसे बँध लिया था। वह ऐसा भयानक कष्ट था, जो सुननेमें भी बड़ा असह्य था। मैंने दुखी हो पुकारकर कहा, 'हे आर्त्त और हे अनाथोंके नाथ ! हे कोसलेश ! हे कृपासिन्धु ! मैं बड़ा कष्ट सह रहा हूँ।' (यह सुनते ही) श्रीरामने मुझ दीनको पापोंसे जलता हुआ देखकर तुरन्त कर्म-बन्धनसे मुझको छुड़ा लिया ॥२॥ ज्यों ही उन्होंने मुझसे पूछा 'तू कौन है?' त्यों ही मैंने कहा, 'हे नाथ ! मैं आपका दास बनना चाहता हूँ। मेरे कहीं भी और कोई नहीं है, आपके चरणोंमें पड़ा हूँ।' इसपर भक्तसुम्बकारी परम गुरु श्रीरामजीने मेरी पीठ ठोंकी, घाँह पकड़कर मुझे अपनाया और आश्यासन दिया। तबसे मैं यह (कण्ठी, तिलक, माला, रामनाम-जप, अहिंसा, अमेद, सन्नता आदि) भगवान्‌का वैष्णवी घाना सदा धारण किये रहता हूँ ॥३॥ श्रीरामका गुलाम बना देखकर लोग मुझे नीच कहते हैं; परन्तु मुझे इसके लिये कुछ भी चिन्ता या सङ्कोच नहीं है, क्योंकि न तो मुझे किसीके साथ विवाद-सगाई करनी है और न मुझे जाति-पाँतिसे ही कुछ मतलब

है। तुलसीका यचना-विगड़ना तो श्रीरामजीके रीझने-जीझनेमें ही है। परन्तु मुझे आपके प्रेमपर विश्वास है, इमामे मैं मनमें सदा सान्द्र रहता हूँ ॥४॥

[ ७७ ]

जानकी-जीवन, जग-जीवन, जगत-हित,  
 जगदीश, रघुनाथ, राजीवलोचन राम ।  
 सरद-विधु-चदन, सुखसील, श्रीसदन,  
 सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम ॥ १ ॥  
 जग-सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, सुभीत,  
 सबको दाहिनो, दीनबन्धु, काहूको न वाम ।  
 आरतिहरन, सरनद, अतुलित दानि,  
 प्रनतपालु, कृपालु, पतित-पावन नाम ॥ २ ॥  
 संकल विश्व-चंदित, सकल सुर-सेवित,  
 आगम-निगम कहैं रावरेई गुनग्राम ।  
 इहै जानि तुलसी तिहारो जन भयो,  
 भ्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी, आप श्रीजानकीजीके जीवन, विश्वके प्राण, जगत्के हितकारी, जगत्के स्वामी, रघुकुलके नाथ और कमलके समान नेत्रवाले हैं। आपका मुखमण्डल शरद्-पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है, सुख प्रदान करना आपका स्वभाव है। लक्ष्मीजी सदा आपमें रमती हैं।

आपका शरीर स्वाभाविक ही परम सुन्दर है, जिसकी शोभा असंख्य कामदेवोंके समान है ॥१॥ आप जगत्के सुखकारी पिता, माता, गुरु, हितकारी, मित्र और सबके अनुकूल हैं। आप दीनोंके बन्धु हैं, परन्तु बुरा किसीका भी नहीं करते। आप विपत्तिके हरनेवाले, शरण देनेवाले, अतुलनीय दानी, शरणागत-रक्षक और कृपातु हैं। आपका राम-नाम पतितोंको पावन कर देता है ॥२॥ सारा विश्व आपकी वन्दना करता है, समस्त देवता आपकी सेवा करते हैं और सभी वेद-शास्त्र आपके ही गुण-समूहोंका गान करते हैं। यह सब जानकर तुलसीदास आपका गुलाम बना है, अब बतलाइये आप इसे अलग समझेंगे या गरीब गुलामोंकी नामावलीमें गिनेंगे ॥३॥

राग टोड़ी

[ ७८ ]

देव—

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोउ  
जाहि दीनता कहीं हैं देखौ दीन सोउ  
सुर, नर, मुनि, असुर, नाग साहिव तौ घनेरे  
(पै) तौ लौं जाँ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥  
त्रिभुवन, तिहुँ काल विदित, वेद बदति चारी ।  
आदि-अंत-मध्य राम ! साहसी तिहारी ॥ ३ ॥  
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।  
सुनि सुभाव-सील-सुजसु जाचन जन आयो ॥ ४ ॥



पाहन-पसु, चिटप-बिहँग अपने करि लीन्हें ।

महाराज दूसरथके ! रंक गय कीन्हें ॥ ५ ॥

तू गरीबको निवाज, हाँ गरीब तेरो ।

पारक कहिये कृपालु ! तुलसीदास मेरो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! दीनोंपर दया करनेवाला और उन्हें (परम सुख) देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। मैं जिसको अपनी दीनता सुनाता हूँ, उसीको दीन पाता हूँ। (जो स्वयं दीन है वह दूसरेको क्या दे सकता है?) ॥१॥ देवता, मनुष्य, मुनि, राक्षस, नाग आदि मालिक तो बहुरे हैं, पर यहाँतक हैं जयतक आपकी नजर तनिक भी टेढ़ी नहीं होती। आपकी नजर फिरते ही घे सब भी छोड़ देते हैं ॥२॥ तीनों लोकों तीनों काल सर्वत्र यही प्रसिद्ध है और यही चारों घेद कह रहे हैं कि आदि, मध्य और अन्तमें, हे रामजी, सदा आपकी ही एक-सी प्रभुता है ॥३॥ जिस भिखमंवेने आपसे माँग लिया, वह फिर कमी भिसारी नहीं कहलाया। (वह तो परम नित्य सुखको प्राप्तकर सदाके लिये तृप्त और अकाम हो गया) आपके इसी स्वभाव-शीलका सुन्दर यश सुनकर यह दास आपसे भीख माँगने आया है ॥४॥ आपने पापाण (अहल्या), पशु (बन्दर भालू), घृक्ष (यमलार्जुन) और पक्षी (जटापु, काकभुगुण्ड) तकको अपना लिया है। हे महाराज दशरथके पुत्र ! आपने नीच रंकोंको राजा बना दिया है ॥५॥ आप गरीबोंको निहाल करनेवाले हैं और मैं आपका गरीब गुलाम हूँ। हे कृपालु ! (इसी नाते) एक बार यही कह दीजिये कि 'तुलसीदास मेरा है' ॥६॥

[ ७९ ]

देव—

तू दयालु, दीन हों, तू दानि, हों भिखारी ।  
 हों प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥ १ ॥  
 नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ?  
 मो समान आरव नहि आरतिहर तोसो ॥ २ ॥  
 ब्रह्म तू, हों जीव, तू है ठाकुर, हों चेतो ।  
 तात-मात, गुरु-सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥ ३ ॥  
 तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जाँ भावै ।  
 ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! तू दीनोंपर दया करनेवाला है, तो मैं दीन हूँ । तू तुलु दानी है, तो मैं भिखमंगा हूँ । मैं प्रसिद्ध पापी हूँ तो तू पाप-पुञ्जों-का नाश करनेवाला है ॥१॥ तू अनार्थोंका नाथ है, तो मुझ-जैसा अनाथ भी और कौन है ? मेरे समान कोई दुग्नी नहीं है और तेरे समान कोई दुःखोंको हरनेवाला नहीं है ॥२॥ तू ब्रह्म है, मैं जीव हूँ । तू स्वामी है, मैं सेवक हूँ । अधिक क्या, मेरा तो माता, पिता, गुरु, मित्र और सब प्रकारसे हितकारी तू ही है ॥३॥ मेरे तेरे अनेक नाते हैं, नाता तुझे जो अच्छा लगे, वही मान ले । परन्तु बात यह है कि हे कृपालु ! किसी भी तरह यह तुलसीदास तेरे चरणोंकी शरण पा जावे ॥४॥

[ ८० ]

देव—

और काहि माँगिये, को माँगियो निवारै ।  
 अभिमतदातार कौन, दुख-दरिद्र दारै ॥ १ ॥

धरमधाम राम काम-कोटि-रूप हूँ ।  
 साहय मय विधि सुजान, दान-खडग-सूरो ॥ २ ॥  
 सुसमय दिन द्वे निसान सबके द्वार बाजै ।  
 कुसमय दसरथके ! दानि तें गरीब निवाजै ॥ ३ ॥  
 सेवा चिनु गुनविहीन दीनता सुनाये ।  
 जे जे तें निहाल किये फूले फिरत पाये ॥ ४ ॥  
 तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।  
 रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! अब और किसके आगे हाथ फैलाऊँ ? दूसरा कौन है जो सदाके लिये मेरा माँगना मिटा दे ? दूसरा कौन मनोवाञ्छित फलोंका देनेवाला है जो मेरे दुःख-दाहिपका नाश कर दे ? ॥१॥ हे श्रीराम ! तू धर्मका स्थान और करोड़ों कामदेवों से सौन्दर्यसे भी सुन्दर है । सब प्रकारसे मेरा स्वामी है, मनकी अन्तर्दृष्टि तरह जानता है और दानरूपी तलवारके चलानेमें बड़ा शूर है ॥२॥ अच्छे समयमें तो दो दिन सभीके दरवाजेपर नगारे बजते हैं, परन्तु दशरथ-नन्दन ! तू ऐसा दानी है कि बुरे समयमें भी तू गरीबोंके निहाल कर देता है ॥३॥ कुछ भी सेवा न करनेवाले, अच्छे गुणोंसे सर्वपापी जिन मनुष्योंने तेरे सामने अपना दुःखड़ा सुनाया, उन सबको तू निहाल कर दिया, इसीसे वे आनन्दसे फूले फिरते हैं ॥४॥ अब तुलसीदास भिखारीके मनकी जासकर ( अर्थात् धृष्ट और कुछ भी नहीं चाहता,

केवल तेरा प्रेम चाहता है ऐसा जानकर ) दान दे और वह यही कि  
दे श्रीरामचन्द्र ! तू चन्द्रमा है ही, मुझे बस, चकोर बना ले ॥५॥

[ ८१ ]

दीनबंधु, सुखसिंधु, कृपाकर, कारुणीक रघुराई । ~~जगज्जननी~~

सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिविध जुर, करत फिरत वीराई ॥ १ ॥

कबहुँ जोगरत, भोग-निरत सठ हठ वियोग-बस होई ।

कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥ २ ॥

कबहुँ दीन, मतिहीन, रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी ।

कबहुँ मूढ, पंडित विडंबरत, कबहुँ धर्मरत ग्यानी ॥ ३ ॥

कबहुँ देव ! जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै । ~~कलकल~~

संसृति-संनिपात दारुन दुख बिनु हरि-कृपा न नासै ॥ ४ ॥

संजम, जप, तप, नेम, धरम, व्रत, बहु भेज-समुदाई ।

तुलसिदास भव-रोग रामपद-प्रेम-हीन नहिं जाई ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे परम दयालु धीरघुनाथजी ! आप दीनोंके बन्धु, सुखके समुद्र और कृपाकी धानि हैं। हे नाथ ! मुनिये, मेरा मन संसारके त्रिविध तापोंसे जल रहा है अथवा उसे ( काम-क्रोध-लोभरूपी ) त्रिदोष ज्वर हो गया है और इसीसे वह पागलकी तरह बकता फिरता है ॥१॥ कभी वह योगाभ्यास करता है तो कभी वह हुए भोगोंमें फँस जाता है। कभी दृढपूर्वक वियोगके वश हो जाता है तो कभी मोहके वश होकर नाना प्रकारके द्रोह करता है और कभी बड़ा दयालु बन जाता है ॥२॥

कमी श्रान, युक्तिहीन, यद्वा ही कंगाल बन जाता है, तो कमी धनहीन राजा बन जाता है। कमी मूर्ख बनता है, तो कमी पण्डित बन जाता है। कमी पापवण्डी बनता है और कमी धर्मपरायण भ्रात्री बन जाता है। दे देव ! कमी उसे मारा जगन् धनमय दीपता है, कमी शत्रुमय और कमी स्त्रीमय दीपता है अर्थात् यह कमी लोभमें, कमी क्रोधमें और कमी काममें फँसा रहता है। यह संसाररूपी सन्निरात-ज्वरका दारुण दुःख विना भगवन्-रूपाके कमी नष्ट नहीं हो सकता ॥४॥ यद्यपि संयम, जप, व्रत नियम, धर्म, व्रत आदि अनेक ओषधियाँ हैं; परन्तु तुलसीदासका संसाररूपी रोग धीरामजीके चरणोंके प्रेम विना दूर नहीं हो सकता ॥५॥

[ ८२ ]

मोहजनित मल लाग विविध विधि कोटिहु जतन न जाई ।  
 जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥१॥  
 नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे ।  
 हृदय मलिन बासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥२॥  
 परनिंदा सुनि श्रवण मलिन भे, वचन दोष पर गाये ।  
 सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरण विसराये ॥३॥  
 तुलसीदास व्रत-दान, ग्यान-तप, सुद्धिहेतु श्रुति गावै ।  
 राम-चरण-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥४॥

भावार्थ—मोहसे उत्पन्न जो अनेक प्रकारका (पापरूपी) मल लपकता हुआ है, वह करोड़ों उपायोंसे भी नहीं छूटता। अनेक जन्मोंसे यह प्र

पापमें लगे रहनेका अभ्यासी हो रहा है, इसलिये यह मल अधिकाधिक लिपटता ही चला जाता है ॥१॥ पर-खियोंकी ओर देखनेसे नेत्र मलिन हो गये हैं, विषयोंका संग करनेसे मन मलिन हो गया है और वासना, अहंकार तथा गर्वसे हृदय मलिन हो गया है तथा सुखरूप स्वस्वरूपके त्यागसे जीव मलिन हो गया है ॥२॥ परनिन्दा सुनते-सुनते कान और दूसरोंका श्लोष कहते-कहते वचन मलिन हो गये हैं। अपने नाथ श्रीराम-जीके चरणोंको भूल जानेसे ही यह मलका भार सब प्रकारसे मेरे पीछे लगा फिरता है ॥३॥ इस पापके धुलनेके लिये वेद तो व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि अनेक उपाय बतलाता है; परन्तु हे तुलसीदास ! श्रीरामके चरणोंके प्रेमरूपी जल बिना इस पापरूपी मलका समूल नाश नहीं हो सकता ॥४॥

राग जैतश्री

[ ८३ ]

कलु हैं न आई गयो जनम जाय ।

अति दुरलभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन-वचन-काय ॥ १ ॥

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुने चाय ।

जोपन-शुर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन वाय ॥ २ ॥

मध्य भयस धन हेतु गँवाई, कृपी धनिज नाना उपाय ।

राम-विमुख सुख लघो न सपनेहुँ, निसिबासर तयो तिहूँ ताय ॥ ३ ॥

सेपे नहिं सीतापति-सेवक, साधु सुमति मलि भगति भाय ।

सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किये जे चरित रघुवंसराय ॥ ४ ॥

अब सोचत मनि वितु भुअंग ज्यों, विकल अंग दले जरा घाय ।  
 सिर धुनि-धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय ॥५॥  
 जिन्ह लागि निज परलोक बिगारथौ, ते लजात होत ठाढ़े ठाय ।  
 तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं, तरथौ गयँद जाके एक नाय ॥६॥

भावार्थ—हाय ! मुझसे कुछ भी नहीं घन पड़ा और जन्म यों ही बीत जा रहा है । यड़े दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर निष्कपट-भावसे तन मन-चचनसे कमी श्रीरामका भजन नहीं किया ॥१॥ लड़कपन तो ब्रजमें था, उस समय चित्तमें चौगुनी चञ्चलता और ( खेलने-सानेकी ) प्रमदता थी । जयानीरूपी ज्वर चढ़नेपर स्त्रीरूपी कुपथ्य कर तिरजिमसे सारे शरीरमें कामरूपी घायु भरकर सन्निपात हो गया ॥२॥ ( जयानी ढलनेपर ) यीचकी अवस्था होती, व्यापार और बनेक उपायों से धन कमानेमें श्योयी; परन्तु श्रीरामसे विमुख होनेके कारण कमी स्थ में भी मुग्ध नहीं मिला, दिन-रात संसारके तीनों तापोंसे जलता ही रहा ॥३॥ न तो कमी श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंकी और नुख बुद्धियाले स्वतंत्रकी ही भक्तिभावसे मलीमौलि सेवा की, न श्रीरघुनाथजीकी सुन्दर सीलकथाओंकी रोमांच होकर कमी मुना और न कमी प्रमद मनमें बसा ॥४॥ भय जबकि बुढ़ापेने आकर गाने अंगोंको व्याकुल कर ताड़ दिया है, तब मनिहीन माँपके समान चिन्ता करता हूँ, मिर धुन-धुनकर और हाथ मल-मलकर पड़नाता हूँ, पर हम समय हम दुःगद हाथामलकी वृत्तियोंके लिये कोई भी हिनकारी मित्र दृष्टि नहीं पड़ता ॥५॥ तिनके लिये ( बनेक उपाय समाकर ) लोक-दरलोक विगाड़ दिया था, ये भाज पास अंगे हों-

में भी शर्माने हैं। हे तुलसी ! तू अब भी उन धीरधुनायजीका स्मरण कर, जिनका एक धार नाम लेनेसे ही गजराज ( संभारनागर्यं ) तर गया था ॥६॥

[ ८४ ]

ता तू पछितैहै मन भीजि हाथ ।

भयो है सुगम तोको अमर-अगम तन, ममुझिर्धांकत खोवत अकाथ ॥१॥

सुग-साधन हरि-विमुख पृथा जैसे मम फल पृतहित मधे पाय ।

यह बिचारि, तजि कृपय-कृमंगति, बलि सुपंथ मिलि भले साथ ॥२॥

देखु राम-सेवक, मुनि कीरति, रटहि नाम करि गान गाय ।

हृदय आनु धनुषान-पानि प्रभु, लसे मुनिपट, फाटि कसे भाय ॥३॥

तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब, नाउ रामपद-कमल माय ।

जनि हरपाहि तंगे अनेक बल, अपनाये जानकीनाथ ॥४॥

भाषार्थ—हे मन ! तूने हाथ मल-मलकर पाउनाना पहुँचा, क्योंकि जो मनुष्य-शरीर देवताओंको भुगतै है, यही तुलसी कहते हैं मिल गया है, पर उसे तू स्वर्ग तो रटा है। नाजिक विचार तो कर ॥१॥ हरिसे विमुख होने-पर सुगहा साधन जैसे ही स्वर्ग होगा है जैसे ही विचारनेके लिये पानीके मण्डपके परिधम स्वर्ग जाता है। ( सुग हरिसे है, उसको भुलकर सुग-पहित विषयोंकी सेवासे सुग बर्मा नहीं मिल सकता ) यह विचारकर बुद्धिमानों की बुद्धि संगति छोड़ दे तथा सम्मार्गपर चलना हुआ राजमार्ग संग कर ॥२॥ धीरधुनायजीके स्मरण कर, उससे हरि-कृपा सुग-



## धिनय-पत्रिका

रामनामकी रट और रामकी गुण-भाषाओंका गान कर और हाथ  
पाण लिये, मुनियोंके धरु पहने और कमरमें तरकस कसे  
श्रीरामजीका हृदयमें ध्यान कर ॥३॥ हे तुलसीदास ! मंमा  
प्रपञ्चोंको छोड़कर श्रीरामजीके चरण-कमलोंमें मस्तक नवा ।  
तेरे-जैसे अनेक नीचोंको श्रीज्ञानकीनाथ रामजीने अपना लिय

राग धनाश्री

[ ८१ ]

मन ! माधवको नेकु निहारहि ।

सुनु सठ, सदा रंकेके धन ज्यों, छिन छिन प्रभुहिँ सँभार  
सोभा-सील-भ्यान-गुन-मंदिर, सुंदर परम उदार  
रंजन संत, अखिल अघ-गंजन, भंजन विषय-विकार  
जो विनु जोग-जग्य-व्रत-संजम गयो चहै भव-पार  
तौ जनि तुलसिदास निसि-वासर हरि-पद-कमल विसार

भावार्थ—हे मन ! माधवकी ओर तनिक तो देख ! अरे दुष्ट  
जैसे कंगाल क्षण-क्षणमें अपना धन सँभालता है, वैसे ही तू अप  
श्रीरामजीका स्मरण किया कर ॥१॥ वे श्रीराम सोभा, शील, व  
सद्गुणोंके स्थान हैं । वे सुन्दर और यड़े दानी हैं । सत्तोंको  
करनेवाले, समस्त पापोंके नाश करनेवाले और विषयोंके वि  
मिटानेवाले हैं ॥२॥ यदि तू बिना ही योग, यज्ञ, व्रत और ।  
संसार-सागरसे पार जाना चाहता है तो हे तुलसीदास ! रा  
श्रीहरिके चरणकमलोंको कभी मत भूल ॥३॥

[ ८६ ]

इहँ कह्यो सुत ! वेद चहँ ।

धीरघुपीर-चरन-चितन तजि नाहिन ठार कहँ ॥१॥

जाके चरन चिरंचि सेइ सिधि पाई संकरहँ ।

सुक-सनकादि मुकुव पिचरत तेउ भजन करत अजहँ ॥२॥

जद्यपि परम बचल श्री संतत, धिर न रहति कतहँ ।

हरि-पद-पंकज पाइ अचल भइ, करम-बचन-मनहँ ॥३॥

करुनासिंधु, भगत-चिंतामनि, सोमा सेवतहँ ।

और सकल सुर, असुर-ईस सब खाये उरग छहँ ॥४॥

सुरुचि कस्यो सोइ सत्य तात अति परप बचन जपहँ ।

तुलसिदास रघुनाथ-विमुख नहि मिटइ बिपति कपहँ ॥५॥

भावार्थ—मत्तः ध्रुपजीकी भाभा सुगीतिने पुत्रसे कहा था—हे पुत्र !  
 कारों पेरने पदी कहा है कि धीरघुनाथजीके चरणोंके विग्नमही छोड़-  
 कर जीयको भीर कहों भी टिकाना नहीं है ॥१॥ जिनके चरणोंका  
 विग्नन करके प्रजा और शिवजीने भी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, ( जिनकी  
 सेवास ) अरु सुक-भक्त्यादि जीयमुक्त हुए दिखत रहे और अब भी  
 जिनका चरण बर रहे हैं ॥२॥ यद्यपि इस्मीजी बड़ी ही वज्रता है, वही भी  
 निरन्तर गिरत नहीं रहती, परन्तु वे भी प्रगणनके चरण-बमलोंके  
 दावर मन, बचन, कर्मसे अचल हो गयी हैं अर्थात् निरन्तर मन, वाणी,  
 कार्यसे सेवास ही रणी रहती हैं ॥३॥ वे चरणोंके समुद्र भीर बन्धों-

## विनय-परिचय

ये. लिये चिन्तामणिमरुप हैं, उनहीं सेवा करनेमें ही सारी शोभा है और जितने प्रेयसा, प्रियोंके स्वामी हैं, सो सभी काम, क्रोध, लोभ, मद, लोभ और मात्सर्य—इन छः गणोंसे हमें दूर हैं ॥५॥ हे पुत्र ! (तरी विमत मुरचिने जो कुछ कहा है सो मुननेमें अन्याय कठोर होनेपर भी सह है । हे तुलसीदास ! धीरधुनायजीमें विमुख रहनेसे विपतिगण नाश कभी नहीं होता ॥५॥

[ ८७ ]

सुनु मन मूढ़ मिखावन मेरो ।

हरि-पद-विमुख लहो न काहु सुख, सठ ! यह समुद्र सवेरो ॥१॥  
 बिछुरे ससि-रवि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो ।  
 अमत अमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बढेरो ॥२॥  
 जद्यपि अति पुनीत मुरसरिता, तिहुँ पुर मुजस घनेरो ।  
 तजे चरन अजहँ न मिटत नित, बहिचो ताहू केरो ॥३॥  
 छुटै न विपति भजे विनु रघुपति, श्रुति संदेहु निवेरो ।  
 तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु रामको चेरो ॥४॥

भावार्थ—हे मूर्ख मन ! मेरी सीख सुन, हरिके चरणोंसे विमुख होकर किसीने भी सुख नहीं पाया । हे दुष्ट ! इस यातको खूब समझ ले, सभी तो सवेरा ही है (अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, शरण जानेसे काम बन सकता है) ॥१॥ देख ! यह सूर्य और चन्द्रमा जयसे भगवान्के नेत्र और मनसे अलग हुए तभीसे यज्ञ दुःख भोग रहे हैं । रात-दिन आकाशमें चल

लगाते बिताने पड़ते हैं, वहाँ भी बलवान् शत्रु राहु पीछा किये रहता है ॥२॥ यद्यपि गंगाजी देवनदी कहाती हैं और यही पवित्र हैं, तीनों लोकोंमें उनका बड़ा यश भी फैल रहा है, परन्तु भगवच्चरणोंसे अलग होनेपर तबसे आजतक उनका भी नित्य बहना कभी बन्द नहीं होता ॥३॥ श्रीरघुनाथजीके भजन बिना विपत्तियोंका नाश नहीं होता। इस सिद्धान्तका सम्बन्ध वेदोंने नाश कर दिया है। इसलिये हे तुलसीदास ! सब प्रकारकी आशा छोड़कर श्रीरामका दास बन जा ॥५॥

[ &lt;&lt; ]

कबहूँ मन विभ्राम न मान्यो ।

निसिदिन भ्रमत विसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ॥ १ ॥

जदपि विषय-सँग सखी दुसह दुख, विषम जाल अरुझान्यो ।

तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिँ जान्यो ॥ २ ॥

जनम अनेक किये नाना विधि करम-कीच चित सान्यो ।

होइ न विमल विवेक-नीर-बिनु, वेद पुरान बखान्यो ॥ ३ ॥

निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरपि हूँ नहिँ आन्यो ।

तुलसिदास कब तृपा जाय सर खनतहिँ जनम सिरान्यो ॥ ४ ॥

भावार्थ—अरे मन ! तूने कभी विभ्राम नहीं लिया। अपना सहज सुख-स्वरूप भूलकर दिन-रात इन्द्रियोंका खँचा हुआ जहाँ-तहाँ विषयोंमें भटक रहा है ॥१॥ यद्यपि विषयोंके संगसे तूने असह्य संकट सहे हैं और तू कठिन जालमें फँस गया है तो भी हे मूर्ख ! तू उन्हें छोड़ता नहीं ।

ममतायश सब कुछ समझकर भी बेसमझ हो रहा है ॥२॥ अनेक उन्मत्त  
नाना प्रकारके कर्म करके नू उन्हींके कीचड़में सन गया है, हे वित्त !  
बिबेकरूपी जल प्राप्त किये बिना यह कीचड़ कभी साफ नहीं हो  
सकता । ऐसा वेद-पुराण कहते हैं ॥३॥ अपना कल्याण तो परम प्रभु-  
परम पिता और परम गुरुरूप हरिसे है, पर नूने उनको हुलसकर इदमें  
कभी धारण नहीं किया, ( दिन-रात विषयोंके घटोरनेमें ही लगा रहा ) है  
तुलसीदास ! ऐसे तालाबसे क्य प्यास मिट सकती है, जिसके मोरनें  
ही सारा जीवन धीन गया ॥४॥

[ ८६ ]

मेरो मन हरिजू ! हठ न तर्ज ।

निसिदिन नाथ देऊँ सिख बहु विधि, करत सुभाउ निज ॥ १ ॥

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपज ।

हूँ अनुकूल बिसारि छल सठ पुनि खल पतिहि भज ॥ २ ॥

लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदग्रानु बज ।

तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूँद लज ॥ ३ ॥

हां हारया करि जतन विविध विधि अतिस प्रचल अज ।

तुलसिदाम पस होइ तथहि जब प्रेरक प्रभु बरज ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे धीहरि ! मेरा मन हट नहीं छोड़ता । हे नाथ ! मैं दिन  
रात इन्ने अनेक प्रकारसे ममज्ञाता हूँ, पर यह भगने ही मनही बगना  
है ॥१॥ जैसे युवती स्त्री सन्तान जननेके समय भायगत भायत करवा

अनुभव करती है ( उस समय सोचती है कि अय पतिके पास नहीं जाऊँगी ) परन्तु यह मूर्खी सारी घेदनाको भूलकर पुनः उसी दुःख देने-वाले पतिका सेवन करती है ॥२॥ जैसे लालची फुत्ता जहाँ जाता है वहाँ उसके भिर जूते पड़ते हैं तो भी यह नीच फिर उसी रास्ते भटकता है, मूर्खको जरा भी लज्जा नहीं आती ॥३॥ (ऐसी ही दशा मेरे इस मनकी है, विषयोंमें कष्ट पानेपर भी यह उन्हींकी ओर दौड़ा जाता है ) मैं नाना प्रकार उपाय करते-करते थक गया । परन्तु यह मन अत्यन्त चलथान् और भजेय है । हे तुलसीदास ! यह तो तभी दश हो सकता है, जब कि प्रेरणा करनेवाले भगवान् स्वयं ही इसे रोके ॥४॥

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।

[ ९० ]  
Hants.

परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकनकी ॥ १ ॥

धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृपित जानि मति धनकी ।

नहिं तहँ सीतलता न चारि, पुनि हानि होति लोचनकी ॥ २ ॥

ज्यों गूच-काँच विलोकि सेन जइ छाँह आपने तनकी ।

दूटत अति आतुर अहार बस, छुति बिसारि आननकी ॥ ३ ॥

कहँ लों कहों कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति जनकी ।

तुलमिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मनकी ऐसी मूर्खता है कि यह श्रीराम-भक्तिरूपी गंगा-जीको छोड़कर ओसकी धूँदोंमें तृप्त होनेकी आशा करता है ॥१॥ जैसे

प्यामा पपीहा धुर्रैका गोट देगकर उमें मेघ समझ लंता है, पन्नु ब  
 (जानेपर) न तो उसे शीतलता मिलती है, और न जल मिलता है  
 धुर्रैसे आँवें और फूट जाती हैं। (यही दशा हम मनकी है) ॥१॥  
 जैसे मूर्य याज फौचकी फर्शमें अपने ही शरीरकी परछाई देख  
 उसपर चोंच मारनेसे वह टूट जायगी हम यातको भूखके मारे मूल  
 जल्दीसे उसपर टूट पड़ता है (वैसे ही यह मेरा मन भी विपयों  
 टूटा पड़ता है) ॥३॥ हे कृपाके भण्डार ! इस कुचालका मैं कहाँ  
 वर्णन करूँ ? आप तो दासोंकी दशा जानते ही हैं। हे स्वामिन् ! तुलसी  
 दासका दारुण दुःख हर लीजिये और अपने (शरणागत-चत्सलताक्षी,  
 प्रणकी रक्षा कीजिये ॥४॥

[ ११ ]

नाचत ही निसि-दिवस मरयो ।

तब ही ते न भयो हरि थिर जबतें जिव नाम धरयो ॥ १ ॥

बहु वासना विविध कंचुकि भूपन लोभादि मरयो ।

चर अरु अचर गगन-जल थलमें, कौन न स्वाँग करयो ॥ २ ॥

देव-दनुज, मुनि, नाग, मनुज नहिं जाँचत कोउ उबरयो ।

मेरो दुसह दरिद्र, दोष, दुख काहूँ तौ न हरयो ॥ ३ ॥

थके नयन, पद, पानि, सुमति, बल, संग सकल बिलुरयो ।

अब रघुनाथ सरन आयो जन, भय-भय विकल ढरयो ॥ ४ ॥

जेहि गुनतें बस होहु रीक्षि करि, सो मोहि सब विसरयो ।  
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीज रहन परयो ॥५॥

भावार्थ—रात-दिन नाचते-नाचते ही मरा ! हे हरे ! अबसे आपने 'जीव' नाम रफखा, तबसे यह कभी स्थिर नहीं हुआ ॥१॥ ( इस मायारूपी नाचमें) नाना प्रकारकी वासनारूपी चोंलियाँ तथा लोभ(मोह)आदि अनेक गहने पहनकर, जड़-चेतन और जल-स्थल-आकाशमें ऐसा कानसा स्वाँग है जो मैंने धारण नहीं किया ! ॥२॥ देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य आदि ऐसा कोई भी नहीं बचा जिसके आगे मैंने हाथ न फैलाया हो ? परन्तु इनमेंसे किसने मेरे दारुण दारिद्र्य, दोष और दुःखोंको दूर नहीं किया ॥३॥ मेरे नेत्र, पैर, हाथ, सुन्दर बुद्धि और षल सभी थक गये हैं । सारा संग मुझसे चिड़ुड़ गया है । अब तो हे रघुनाथजी ! यह संसारके भयसे क्याकुल और भीत दास आपकी शरण आया है ॥४॥ हे नाथ ! जिन गुणोंपर रीक्षकर आर प्रसन्न होते हैं, यह सब तो मैं भूल चुका हूँ । अब हे प्रभो ! इस तुलसीदासको धरने दरवाजेपर पड़ा रहने दीजिये ॥५॥

[ ९९ ]

माषवजू, मोसम मंद न फोऊ ।

जपपि मीन-वतंग हीनमति, मोहि नहि पूजें ओऊ ॥१॥

रुचिर रूप-आहार-बस्य उन्ह, पावक लोह न जान्यो ।

देसठ बिपति बिपय न तजत हौं, ताते अधिक अजान्यो ॥२॥



महामोह-सरिता अपार महुँ, संतत फिरत बसो ।  
 श्रीहरि-चरन-कमल-नाँका तजि, फिरि फिरि फेन गयो ॥१॥  
 अस्थि पुरातन लुधित खान अति ज्यों भरि मुख पकरै ।  
 निज तालूगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरै ॥२॥  
 परम कठिन भव-ब्याल-असित हैं असित भयो अति भारी ।  
 चाहत अमय भेक सरनागत, खगपति-नाथ बिसारी ॥३॥  
 जलचर-चंद्र जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा ।  
 एकहि एक खात लालच-बस, नहि देखत निज नासा ॥४॥  
 मेरे अथ सारद अनेक जुग, गनत पार नहि पावै ।  
 तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै ॥५॥

भावार्थ—हे माधव ! मेरे समान मूर्ख कोई भी नहीं है । यद्यपि मछली  
 भीरु पतंग हीनबुद्धि है, परन्तु ये भी मेरी घराबरी नहीं कर  
 सकते ॥१॥ पतंगने सुन्दर रूपके यदा दो दीपकको भग्न नहीं समझा और  
 मछलीने आहारके यदा दो लोहेको कौटा नहीं जाना, परन्तु मैं तो  
 विषयोंको प्रत्यक्ष विषयितरूप देखकर भी नहीं छोड़ता हूँ, भगवत्  
 उन्मे अधिक मूर्ख हूँ ॥२॥ महामोहरूपी अगार नदीमें निरन्तर बहना  
 फिरता हूँ । ( इससे पार होनेके लिये ) श्रीहरिके चरण-कमलकी  
 नाँकाको लज्जकर बार-बार फेनोंको ( धर्यांन् धारणगुर मांगोको )  
 पकड़ता हूँ ॥३॥ जैसे बहून भूमा कृपा पुरानी गनी इतिहासो मुँहमें  
 बार-बार पकड़ता हूँ और अपने तालूमें बगड़ लगनेमें जो लून निकलता

है, उसे घाटकर बड़ा मन्तुष्ट होता है ( यह नहीं समझता कि यह रक्त तो मेरे ही शरीरका है । यही हाल मेरा है ) ॥४॥ मैं संसाररूपी परम बटिन सर्पके उसनेमे अत्यन्त ही भयभीत हो रहा हूँ, परन्तु (मूर्खता यह है कि उससे बचनेके लिये) गरुड़गामी भगवान्की शरणागत न होकर (त्रिपररूपी) मँढककी शरणमे अमय चाहता हूँ ॥५॥ जैसे जलमें रहनेवाले जीवोंके समूह मिमट-सिमटकर जालमें एकट्टे हो जाते हैं और लोभवश एक दूसरेको खाते हैं, अपना भायी नाश नहीं देखते ( घैमी ही दशा मेरी है ) ॥६॥ यदि सरस्वतीजी अनेक युगोंतक मेरे पावोंको गिनती रूँ, तब भी उनका अन्त नहीं पा सकतीं । मेरे मनमें तो यही भरोसा है कि मेरे नाथ पतिन-पावन हैं ( मुझ पतितको भी अघदय अपनायेंगे ) ॥७॥

[ ९३ ]

कृपा सो घों कहाँ विसारी राम ।  
 वेदि कलना मुनि श्रवन दीन-दुख, धावत ही तजि घाम ॥१॥  
 नागराज निज बल विचारि हिय, हारि चरन चित दीन्हों ।  
 आरत गिरा मुनत खगपति तजि, चलत विलंब न कीन्हों ॥२॥  
 दितिसुत-त्रास-त्रासित निसिदिन प्रह्लाद-प्रतिग्या राखी ।  
 अतुलित बल मृगराज-भनुज-तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥३॥  
 भूप-मदसि सब नृप विलोकि प्रभु, रासु कखो नर-नारी ।  
 बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि, भूरि कृपा दनुजारी ॥४॥

एक एक रिपुते ग्रामित जन, तुम राखें रघुवीर ।  
 अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भव-वीर ॥१॥  
 लोभ-ग्राह, दनुज-क्रोध कुरुराज-बंधु खल मार ।  
 तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख मंजहु राम उदार ॥२॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आपने उस कृपाको कहीं मुला दिया, जिसके कारण दीनोंके दुःखकी कारण-ध्वनि कानोंमें पड़ते ही आप अपना धम छोड़कर दौड़ा करते हैं? ॥१॥ जब गजेन्द्रने अपने बलकी ओर देखकर और हृदयमें हार मानकर आपके चरणोंमें चित्त लगाया, तब आप उसकी आर्त्त-पुकार सुनते ही गरुड़को छोड़कर तुरन्त वहाँ पहुँचे, तबकी-सी भी देर नहीं की ॥२॥ हिरण्यकशिपुसे रात-दिन भयमात रहनेवाले प्रह्लादकी प्रतिज्ञा आपने रफखी, महान् बलवान् सिंह और मनुष्यका-सा (नृसिंह) शरीर धारणकर उस दैत्यको मार डाला, वेद इस बातका साक्षी है ॥३॥ 'नर' के अवतार अर्जुनकी पत्नी द्रौपदीने जब राजसभामें (अपनी लज्जा जाते देखकर) सब राजाओंके सामने पुकारकर कहा कि 'हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये' तब हे दैत्यशत्रु! आपने वहाँ (द्रौपदीकी लाज बचानेको) धरुणके ढेर लगाकर तथा शत्रुओंका सारा घमण्ड चूर्ण कर यही कृपा की ॥४॥ हे रघुनाथजी! आपने इन सब मर्कोंको एक एक शत्रुके द्वारा सताये जानेपर ही बचा लिया था। पर वहाँ मुझे तो बहुत-से शत्रु असह्य कष्ट दे रहे हैं। मेरी यह भय-पीड़ा आप क्यों नहीं दूर करते? ॥५॥ लोभरूपी मगर, क्रोधरूपी दैत्यराज हिरण्यकशिपु, दुष्ट कामदेयरूपी दुर्षोध्यतका भाई दुःशामन, ये सभी मुझ तुलसी-

शास्त्री शास्त्र बुद्ध के होते हैं। वे उदार सामन्तप्रणी ! मैं इस  
 शत्रुघोषा नामा श्रीश्रिये ॥६॥

[ १४ ]

काहे में इति मोहि विगारो ।

ज्ञानत निज महिमा मेरे अथ, तदपि न नाथ मीमारो ॥१॥

एतिस-गुनीत, दीनदित, अमान-मान कदम अति शारो ।

॥२॥ ही महि अथम, सुयुक्त, दीन । शिष्यां वेदन मृदा पुकारो ।

गग-गानिका-गज-भ्यास-शक्ति अरे, तरे हीं हेतारो ।

अथ वेदि सात्र कृपांनिधान ! परगत पनशारो चररो ॥३॥

श्री कलिचरत प्रवत अति शारो, तुष निदेशु मे भ्यारो ।

॥४॥ ही इति शेष मरोम शेष पुन मेहि मजमे कश्चि गारो ॥४॥

ममक शिरंषि, विरंषि ममक मम, कान्तु कान्तु तुमारो ।

॥५॥ कद नामाथ अलत मोहि म्हात्तु, भाव शरो कस्तु शारो ॥५॥

कादिज मरक शरत मोचरे इत, अथपि ही अवि शारो ।

॥६॥ कद कश्चि शारत शान्तुमयी कस्तु, मास्तु शार न आरो ॥६॥

कान्तु-ही इत ! कान्तुमे मुझे कभी कृपा दिवत ! हे भाव ! भाव कभी  
 कदिता शीत मेरे शार. इत वी।कोपी ही आलमे है. जो ही मुझे कभी कदी  
 वी।कान्तु है। अथ कश्चि।को कश्चि अथमे।कान्तु, ही।को दिवत।को शीत  
 कान्तु।को शारत हे।कान्तु है. कान्तु कस्तु शारत है। जो कथा है। जो।  
 कान्तु।को शार कदी है। कान्तु कथा केशी।को कद जो।कान्तु ही कदी

हे ? ॥२॥ (पहले तो) मुझे आपने पक्षी (जटायु गृध्र), गणिका (जीवन्ती),  
 हाथी और व्याध (वाल्मीकि) की पंक्तिमें बैठा लिया। यानी पत्नी  
 स्वीकार कर लिया। अब हे रूपानिधान ! आप किसकी शर्म करके मेरे  
 परस्त्री हुई पत्तल फाड़ रहे हैं ॥३॥ यदि कलिकाल आपसे अधिक  
 बलवान् होता और आपकी आज्ञा न मानता होता, तो हे हरे ! इस  
 आपका भरोसा और गुणगान छोड़कर तथा उसपर क्रोध करने और  
 दोष लगानेका झंझट त्यागकर उसीका भजन करते ॥४॥ (परन्तु)  
 आप तो मामूली मच्छरको प्रह्ला और प्रह्लाको मच्छरके समान बना  
 सकते हैं, ऐसा आपका प्रताप है। यह सामर्थ्य होतं हुए भी आप मुझे  
 त्याग रहे हैं, तब हे नाथ ! मेरा फिर यश ही क्या है ? ॥५॥ यद्यपि मैं  
 सब प्रकारसे हार चुका हूँ और मुझे नरकमें गिरनेका भी भय नहीं है,  
 परन्तु मुझ तुलसीदासको यही सबसे बड़ा दुःख है कि प्रभुके नामसे  
 भी मेरे पापोंको भस्म नहीं किया ॥६॥

[ १५ ]

तऊ न मेरे अघ-अवगुन गनिहैं ।

जौ जमराज काज सब परिहरि, इहै ग्याल उर अनिहैं ॥१॥

बलिहैं छटि पुंज पापिनके, असमंजस जिय जनिहैं ।

अधिकार प्रभुओं (मेरी) भूरि भलाई भनिहैं ॥२॥

परनीति भगतकी, भगत-गिरोमनि भनिहैं ।

इसमिदाम कामलपत्रि अपनायेदि पर बनिहैं ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! यदि यमराज सब कामकाज छोड़कर केवल मेरे ही पापों और दोषोंके हिसाब-किताबका खयाल करने लगेंगे, तब भी उनको गिन नहीं सकेंगे (क्योंकि मेरे पापोंकी कोई सीमा नहीं है) ॥१॥ (और जब यह मेरे हिसाबमें ही लग जायँगे, तब उन्हें इधर उलझे हुए समझकर) पापियोंके दल-के-दल छूटकर भाग जायँगे इससे उनके मनमें बड़ी विन्ता होगी। (मेरे कारणसे) अपने अधिकारमें बाधा पहुँचते देखकर (भगवान्‌के दरबारमें अपनेको निर्दोष साबित करनेके लिये) यह आपके सामने मेरी बहुत बड़ाई कर देंगे (कहेंगे कि तुलसीदास आपका भक्त है, इसने कोई पाप नहीं किया, आपके भजनके प्रतापसे इसने दूसरे पापियोंको भी पापके यन्धनसे छुड़ा दिया) ॥२॥ तब आप हँसकर मुझ भक्तपर विश्वास कर लेंगे और मुझे भक्तोंमें शिरोमणि मान लेंगे। बात यह है कि हे कोसलेश ! जैसे-तैसे आपको मुझे अपनाता ही पड़ेगा ॥३॥

[ ९६ ]

जो पै जिय धरिहो अवगुन जनके ।

तो क्यों कटत सकुत-नखते मो पै, विपुल बृंद अघ-बनके ॥१॥

कहिहै कौन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मनके ।

हारहिं अमित सेष सारद भ्रति, गिनत एक-एक छनके ॥२॥

जो चित चढ़ै नाम-भहिमा निज, गुनगन पावन पनके ।

तो तुलसिहिं तारिहो चिप्र ज्यो दसन तोरि जमगनके ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि आप इस दासके दोषोंपर ध्यान देंगे, तब तो पुण्यरूपी नखसे पापरूपी बड़े-बड़े धनोंके समूह मुझसे कैसे कटेंगे ?

## धिनय-पत्रिका

(मंरे जरा-से पुण्यमें भारी-भारी पाप कैमें दूर होंग!) ॥१॥  
यचन और शरीरमें किये हुए मंरे पापोंका घर्जन भी कौन कर  
है? एक-एक क्षणके पापोंका हिसाब जोड़नेमें अनेक शेष, स  
और वेद द्वार जायेंगे ॥२॥ (मंरे पुण्योंके मरोंसे तो पापमें  
उडार होना असम्भव है) यदि आपके मनमें अपने नामकी महिम  
पतितोंको पावन करनेवाले अपने गुणोंका स्मरण आ जाय तो आ  
तुलसीदासको यमदूतोंके दौन तोड़कर संसार-सागरमें अवश्य वै  
तार देंगे, जैसे अजामिल ब्राह्मणको तार दिया था ॥३॥

[ ९७ ]

जौ पै हरि जनके आंगुन महते ।

तौ सुरपति कुरुराज बालिसों, कत हठि चर विसहते ॥

जौ जप जाग जोग व्रत बरजित, केवल प्रेम न चहते ।

तौ कत सुर मुनिवर विहाय ब्रज, गोप-गेह बसि रहते ॥

जौ जहँ-तहँ प्रन राखि भगतको, भजन-प्रभाउ न कहते ।

तौ कलि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ॥

• जौ सुवहित लिये नाम अजामिलके अध अमित न दहते ।

तौ जमभट साँसति-हर हमसे चूपभ खोजि खोजि नहते ॥

जौ जगविदित पतितपावन, अति बाँकुर बिरद न बहते ।

तौ बहुकल्प कुटिल तुलसीसे, सपनेहुँ सुगति न लहते ॥

भावार्थ—(आप दासोंके दोषोंपर ध्यान नहीं देते) हे रामजी ।  
आप दासोंका श्रेय मनमें लाते तो इन्द्र, दुर्योधन और बालिसे दूट कर





जाको नाम लिये छूटत मव-जनम-मरन दुख-मार ।  
 अंबरीष-हित लागि कृपानिधि, सोइ जनमे दस बार ॥५॥  
 जोग-विराग, ध्यान-जप-तप करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी ।  
 बानर-भालु चपल पमु पामर, नाथ तहाँ रति मानी ॥६॥  
 लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आग्याकारी ।  
 तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके द्वार बेंत कर घारी ॥७॥

भावार्थ—श्रीहरि अपने दासपर इतना प्रेम करते हैं कि अपनी स  
 प्रभुता भूलकर उस भक्तके ही अधीन हो जाते हैं । उनकी यह री  
 सनातन है ॥१॥ जिस परमात्माने देवता, दैत्य, नाग और मनुष्यों  
 कर्मोंकी वड़ी मजबूत डोरीमें बाँध रक्खा है, उसी अखण्ड परब्रह्म  
 यशोदाजीने प्रेमवश जबरदस्ती ( ऊखलसे ) ऐसा बाँध दिया कि त  
 आप खोल भी नहीं सके ॥२॥ जिसकी मायाके वश होकर ब्रह्मा भ  
 शिवजीने नाचते-नाचते उसका पार नहीं पाया, उसीको गोप-रमणियों  
 ताल धजा-धजाकर ( आँगनमें ) नचाया ॥३॥ वेदका यह सिद्धा  
 प्रसिद्ध है कि भगवान् सारे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले, लक्ष्मीजी  
 स्वामी और तीनों लोकोंके अधीश्वर हैं, ऐसे प्रभुकी भी भक्त रा  
 बलिके आगे कुछ भी प्रभुता नहीं चल सकी, वरन् प्रेमवश ब्राह्मण ब  
 कर उससे भीग्व माँगनी पड़ी ॥४॥ जिसके नाम-स्मरणमात्रसे संसा  
 के जन्म-मरणरूपी दुःखोंके भारसे जीव छूट जाते हैं, उसी कृपानिधि  
 भक्त अम्बरीषके लिये स्वयं दस बार अवतार धारण किया ॥५॥ जि

को संयमी मुनिगण योग, वैराग्य, ध्यान, जप और तप करके खोजते रहते हैं, उसी नाथने चन्द्र, रीछ आदि नीच चञ्चल यशुओंसे प्रीति की ॥६॥  
लोकपाल, यमराज, काल, वायु, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब जिसके आज्ञाकारी हैं, वही प्रभु प्रेमवश उग्रसेनके द्वारपर हाथमें लकड़ी लिये दरवानकी तरह खड़ा रहता है ॥७॥

[ ९९ ]

विरद गरीबनिवाज रामको ✓

गावत वेद-पुरान, संभु-मुक, प्रगट प्रभाउ नामको ॥१॥

ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, कपिपति, जड़, पतंग, पांडव, सुदामको ।

लोक सुजस, परलोक सुगति, इन्हमें को है राम कामको ॥२॥

गनिका, कौल, किरात, आदिकवि, इन्हते अधिक चाम को ।

वाजिमेघ कब कियो अजामिल, गज गायो कब सामको ॥३॥

छली, मलीन, हीन सब ही अंग, तुलसी सो छीन छामको ।

नाम-नरस-प्रताप प्रबल जग, जुग-जुग चालत चामको ॥४॥

भावार्थ—श्रीरामजीका घाना ही गरीबोंको निहाल कर देना है । वेद-पुराण, शिवजी, शुकदेवजी आदि यही गाते हैं । उनके श्रीरामनामक प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही है ॥१॥ ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, जड़ ( भद्रव्या ), पत्नी ( जटायु, काकभुशुण्ड ), पाँवों पाण्डव और सुदामा-इन सबको भगवानने इस लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सुदगति दी । इनमेंसे रामके कामका भला कौन था ? ॥२॥ गनिका ( जीपन्ती )

कांल-किंगत ( गुह, निषाद आदि ) तथा आदिकवि वाल्मीकि, इनने  
 घुरा कौन था ? अजामिलने कय अभ्येच-यज्ञ किया था, गत्रात्रने इ  
 सामवेदका गान किया था ? ॥३॥ तुलसीके समान कपटी, मलिन, स  
 साधनोंसे हीन, दुयला-पतला और कौन है ? पर श्रीरामके नानर  
 राजाके राज्यमें उसके प्रयल प्रतापसे युग-युगसे चमड़ेका सिंहा में  
 चलता आ रहा है अर्घान् नामके प्रतापसे अत्यन्त नीच में परमात्माको  
 प्राप्त करते रहे हैं, ऐसे ही मैं भी प्राप्त करूँगा ॥५॥

[ १०० ]

सुनि सीतापति-सील-सुमाउ ।

मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ ॥१॥

सिसुपनते पितु, मातु, बन्धु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ ।

कहत राम-विधु-बदन रिसोहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥२॥

खेलत संग अनुज बालक नित, जोगवत अनट-अपाउ ।

जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥३॥

सिला साप-संताप-बिगत भइ, परसत पावन पाउ ।

दई सुगति सो न हेरि हरप हिय, चरन छुएको पछिताउ ॥४॥

भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।

छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ ॥५॥

कह्यो राज, बन दियो नारिवस, गरि गलानि गयो राउ ।

ता कुमातुको मन जोगवत ज्याँ निज तनु मरम कुपाउ ॥६॥



का पश्चात्ताप अवश्य हुआ कि ऋषिपत्नीके मेरे चरण क्यों लग गये ? ॥४॥ शिवजीका धनुष तोड़कर राजाओंका मान हर लिग इससे जय परशुरामजीने आकर क्रोध किया, तब उनका अपराध हन करके उल्टे श्रीलक्ष्मणजीसे माफी माँगवायी और स्वयं उनके घरणपर गिर पड़े, इतनी सहिष्णुता और कहीं नहीं है ! ॥५॥ राजा दशरथने राज्य देनेका कहकर, कैकेयीके यशमें होनेके कारण घनयास दे दिया और इसी ग्लानिके मारे वे मर भी गये, ऐसी घुरी माता कैकेयीका मन भी आप ऐसे सँभाले रहे, जैसे कोई अपने शरीरके मर्मस्थानके घायल देगता रहता है, अर्थात् आप सदा उसके मनके अनुसार ही चलते रहे ॥६॥ जय आप हनुमान्जीकी सेवाके यश होकर उनके उपहत हो गये, तब उनसे कहा कि 'हे पवनसुत ! यहाँ आ, तुझे देनेका तो मेरे पास कुछ भी नहीं है । मैं तेरा श्रणी हूँ, तू मेरा महाजन है, तू चाहे तो मुझसे लिप्या-पढ़ी करवा ले' ॥७॥ सुग्रीव और विभीषणने भगता कपट-भाय नहीं छोड़ा, परन्तु आपने तो उन्हें भगता ही लिया । भगताजीका तो यश भरी यशमें आप सम्मान करते रहते हैं, उनकी प्रशंसा करते-करते तो आपके हृदयमें तृप्ति ही नहीं होती ॥८॥ यनोंपर आपने जो-जो दया और उपकार किये हैं, उनकी तो यहाँ चलते ही आप लज्जामें मानो गड़ जाते हैं ( भगता प्रशंसा भागती मुहानी ही नहीं ); पर जो एक बार भी भायका प्रणाम करता है और शरणमें आ जाता है, भाय रादा उगका यश यर्णन करते हैं, गुनते हैं और कह-कहकर दुगारोंमें गान करवाते हैं ॥९॥ ऐसे कोमलहृदय श्रीरामजीके गुणमन्द्नोंको समस्त-समस्तकर मेरे हृदयमें प्रेमकी बाहु भा गयी है.

दं तुलसीदास ! इस प्रेमानन्दके कारण तु अनायास ही धीरामके चरण-  
मलोंको प्राप्त करेगा ॥१०॥

[ १०१ ] /

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।

काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥

काने देव बराइ चिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे ।

सग, मृग, <sup>सुन-सुनकर</sup> व्याध, पपान, चिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥ २ ॥

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सष, माया-बिबस बिचारे ।

तिनके हाथ दामतुलमी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे माग ! आपके चरणोंको छोड़कर और कहीं जाऊँ ?  
हरसारमें 'पतित-पावन' नाम और किसका है ? ( आपकी मौजि ) दीन-  
दुलियारे किसे बहुत प्यारे हैं ? ॥१॥ आजतक किस देवमाने अपने  
घनेको अपनेके लिये हठपूर्वक सुन-सुनकर मीनोंका उच्चार किया है ?  
किस देवमाने पक्षी (जटायु), पशु (कश-वानर आदि), व्याध (वाग्मीक),  
पाप (भद्रव्या), जड़ वृक्ष (वमलाजुन) और वपनोंका उच्चार किया  
है ? ॥२॥ देवता, क्षय, मुनि, नाग, मनुष्य आदि सभी देवारे मायाके  
बन हैं । (जबसे बीधा हुआ वृक्षोंके बंधनको बँसे गीत रहता है  
इतारिये) हे प्रभो ! यह तुलसीदास अपनेको उन लोगोंके हाथमें गीप-  
कर क्या करे ? ॥३॥

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।  
 साधन-धाम विबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हें  
 कोदिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके, एक एक उपकार  
 तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार  
 विषय-चारि मन-मीन भिन्न नहिँ होत कबहुँ पल एक  
 ताते सहैं विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक  
 कृपा-डोरि घनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो  
 एहि विधि वेधि हरहु भेरो दुख, कौतुक राम तिहारो  
 हैं छुति-विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहारो  
 तुलसिदाम येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँष्यो सोइ छारो

भावार्थ—हे हरे ! आपने बड़ी दया की, जो मुझे देवताम  
 मी दुर्लभ, साधनोंके स्थान मनुष्य-शरीरको कृपापूर्वक दे दि  
 यद्यपि आपका एक-एक उपकार करीहों मुझसे नहीं कहा जा  
 तथापि हे नाथ ! मैं कुछ और माँगता हूँ, आर बड़े उदार हैं, !  
 करके दीजिये ॥२॥ मेरा मनरूपी मरुत विषयरूपी जलमें प  
 लिये मी अलग नहीं होता, हमने मैं अव्यक्त दादण दुःख सह  
 धार-धार अनेक योनियोंमें मुझे जन्म देना पड़ता है ॥३॥ ( हम  
 मरुतको पकड़नेके लिये ) हे रामजी ! आप अपनी कृपाकी डोरी  
 और अपने चरणके विश्व भंडु शको पंतीका काँटा बनाइये, उत

मरुपी कोमल चारा विपका दीजिये । इस प्रकार मेरे मनरूपी मच्छको  
 घकर अर्थात् विषयरूपी जलसे बाहर निकालकर मेरा दुःख दूर कर  
 जिये । आपके लिये तो यह एक खेल ही होगा ॥५॥ यों तो घेदमें  
 नेक उपाय भरे पड़े हैं, देवता भी बहुत-से हैं, पर यह दान किस-किस-  
 का निहोरा करता फिरे ? हे तुलसीदास ! जिसने इस जीयको मोदकी  
 रीमें बाँधा है, यही इसे छुड़ावेगा ॥५॥

[ १०३ ]

यह विनती रघुवीर गुसाईं ।

और आस-विश्वास-भरोसा, हरा जीव-जड़ताई ॥ १ ॥

चहाँ न सुगति, सुमति, संपति कलु, रिधि-सिधि, विपुल बड़ाई ।

हेतु-रहित अनुराग राम-पद बँद अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥

कुटिल करम ल जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी परिआई ।

तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाई ॥ ३ ॥

या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई ।

ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाई ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे धीरघुनाथजी ! हे नाथ ! मेरी यही विनती है कि इस  
 जीवको दूसरे साधन, देवता या कर्मोंपर जो आशा, विश्वास और भरोसा  
 है, उस भ्रमताको आप हर लीजिये ॥१॥ हे राम ! मैं मुक्ति, सद्बुद्धि,  
 धन-सम्पत्ति, कृति-सिद्धि और बड़ी भारी बड़ाई भादि कुछ भी नहीं  
 चाहता । बस, मेरा तो आपके चरणकमलोंमें दिनों दिन अधिक-से-अधिक



अनन्य और विशुद्ध प्रेम बढ़ता रहे, यही चाहता हूँ ॥२॥ मुझे बत  
 वुरे कर्म जबरदस्ती जिस-जिस योनिमें ले जायँ, उस-उस योनिमें  
 हे नाथ ! जैसे कछुआ अपने अण्डोंको नहीं छोड़ता, वैसे ही भार  
 भरके लिये भी अपनी कृपा न छोड़ना ॥३॥ हे नाथ ! इस संसारमें  
 तक इस शरीरका ( स्त्री-पुत्र-परिवारादिसे ) प्रेम, विश्वास और सन  
 है, सो सब एक ही स्थानपर सिमटकर केवल आपसे ही हो जाय ! ॥४॥

[ १०४ ]

जानकी-जीवनकी चलि जैहों ।

चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहों ॥ १ ॥

उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-विमुक्त न पैहों ।

मन समेत या तनके बासिन्ह, इहै सिखावन दैहों ॥ २ ॥

छयननि और कथा नहिं सुनिहों, रसना और न गैहों ।

रोकिहों नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहों ॥ ३ ॥

नातो-नेह नाथमों करि मय नातो-नेह बदैहों ।

यह छर भार ताहि तुलमी जग जाको दाम कहैहों ॥ ४ ॥

भावार्थ—मैं तो धीजानकी-जीवन रघुनाथजीपर भजनेमें व्योक्त  
 कर दूँगा । मेरा मन यही कहता है कि भय मैं धीगीता-रामजीके साथ  
 को छोड़कर दूसरी जगह कहीं भी नहीं जाऊँगा ॥१॥ मेरे हृदय  
 केमा विश्वास उत्पन्न हो गया है कि भजने स्वामी धीरामजीके  
 विमुक्त होकर मैं स्वयं भी कहीं तुल्य नहीं पा सकूँगा । इतने मैं प्रक

इस शरीरमें रहनेवाले ( इन्द्रियादि ) सभीको यही उपदेश  
 ॥२॥ कानोंसे दूसरी बात नहीं सुनूँगा, जीभसे दूसरेकी चर्चा नहीं  
 दूँगा, नेत्रोंको दूसरी ओर ताकनेसे रोक लूँगा और यह मस्तक  
 ल आपके ( चरणोंमें ही ) झुकाऊँगा ॥३॥ आपके साथ नाता और  
 करके दूसरे सबसे नाता और प्रेम तोड़ दूँगा । इस संसारमें मैं  
 सीदास जिसका दास कहाऊँगा फिर अपने सारे कर्मोंका बोझ  
 उसी स्वामीपर रहेगा ॥४॥

[ १०५ ]

मथलों नसानी, अब न नसैहैं ।

राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहैं ॥ १ ॥

गायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहैं ।

रामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहैं ॥ २ ॥

रबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस हूँ न हँसैहैं ।

न मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—अवतक ( की आयु तो व्यर्थ ही ) नष्ट हो गयी, परन्तु अब  
 ( व्यर्थ ) नष्ट नहीं होने दूँगा । श्रीरामकी कृपासे संसाररूपी रात्रि धीत गयी  
 ( मैं संसारकी माया-रात्रिसे जग गया हूँ ) अब जागनेपर फिर ( माया-  
 ) विछौना नहीं विछाऊँगा ( अब फिर मायाके फन्देमें नहीं फँसूँगा ) ॥१॥  
 मे रामनामरूपी सुन्दर चिन्तामणि मिल गयी है । उसे हृदयरूपी हाथ-  
 कभी नहीं गिरने दूँगा । अथवा हृदयसे रामनामका स्मरण करता

## विनय-पत्रिका

रहूँगा और हाथमें रामनामकी माला जपूँगा । श्रीरघुनाथ जो पवित्र श्यामसुन्दर रूप है उसकी कसीटी बनाकर अपने कि मोनेको कर्मूँगा । अर्थात् यह देखूँगा कि श्रीरामके ध्यानमें मेर सदा-सर्वदा लगता है कि नहीं ॥२॥ जयतक मैं इन्द्रियोंके कर्तव्यतक उन्हेंने ( मुझे मनमाना नाच नचाकर ) मेरी बड़ी हँसी परन्तु अथ स्वतन्त्र होनेपर यानी मन-इन्द्रियोंको जीत लेनेपर अपनी हँसी नहीं कराऊँगा । अथ तो अपने मनरूपी भ्रमरके करके श्रीरामजीके चरणकमलोंमें लगा दूँगा । अर्थात् श्रीराम चरणोंको छोड़कर दूसरी जगह मनको जाने ही नहीं दूँगा ॥३॥

राग रामकली

[ १०६ ]

महाराज रामादरयो धन्य सोई ।

गरुड, गुनरासि, सरवग्ग, सुकृती, सूर, सील-निधि, साधु तेहि सम न  
उपल-केवट-कीस-भालु-निसिचर-सबरि-गीघ सम-दम-दया-दान-  
नाम लिये राम किये परम पावन सकल, नर तरत तिनके गुनगान  
व्याध अपराधकी साध राखी कहा, किंगल कौन मति भंगति मे  
कौन धौं सोमजाजी अजामिल अघम, कौन गजराज धौं बाजपेयी ॥  
पांडु-सुत, गोपिका, चिदुर, कुबरी, सबरि, सुद्ध किये सुद्धता लेस कैम  
प्रेम लखि कृष्ण किये आपने तिनहुँको, सुजस संसार हरिहरको जेमो



## विनय-पत्रिका

करनेपर नीच होकर भी ऊँचे-से-ऊँचा पद न पाया हो ? दीनोंके कुछ नाश करनेवाले, लक्ष्मीजीके पति, करुणाके मन्दिर, पतिनोंको न करनेवाले श्रीरामजीका यश घेदोंने गाया है ॥५॥ ( औरोंकी बात दीजिये ) तीनों लोकों और तीनों कालोंमें तुलसी-सरिता मन्वु कुटिल और दुष्ट-शिरोमणि कोई नहीं हुआ; परन्तु अपने नामकी प्रशंसा करनेके लिये अपने (पतितपावन) प्रणको स्मरण करके हम कलिकावत सर्पसे उसे हुएको भी श्रीरामने अपनी शरणमें ले लिया ॥६॥

राग विहाग  
त्रिलायल

[ १०७ ]

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम ।

सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुंदर स्वाम ॥ १ ॥

सिय-समेत सोहत सदा छवि अमित अनंग ।

भुज विसाल सर धनु धरे, कटि चारु निरंग ॥ २ ॥

बलि-पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति ।

सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति ॥ ३ ॥

देहि सकल सुख, दुख दहै, आरत-जन-बंधु ।

गुन गहि, अघ-औंगुन हरै, अस करुनासिंधु ॥ ४ ॥

म-काल-पूरन सदा बंद वेद पुरान ।

सबको प्रभु, सबमें बसै, सबकी गति जान ॥ ५ ॥

को करि कोटिक कामना, पूजें बहु देव ।

तुलसीदास तेहि सेइये, संकर जेहि सेव ॥ ६ ॥

भावार्थ—कोसलपति श्रीरामचन्द्रजी मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, उनके जलके समान सुन्दर नेत्र हैं और उनका शरीर परम सुन्दर इयामवर्ण : ॥१॥ श्रीसीतार्जुनके साथ सदा शोभायमान रहते हैं, असंख्य कामदेवोंके ज्ञान उनका सौन्दर्य है। विशाल भुजाओंमें धनुष-बाण और कमरमें सुन्दर रक्तस धारण किये हुए हैं ॥२॥ ये बलि या पूजा कुछ भी नहीं चाहते, ज्यल एक 'प्रेम' चाहते हैं। स्मरण करते ही प्रसन्न हो जाते हैं, और अब तरहसे पवित्र कर देते हैं ॥३॥ सब सुख दे देते हैं और दुःखोंको रस कर डालते हैं। ये दुर्गीजनोंके घन्धु हैं, गुणोंको ग्रहण करते और पयगुणोंको हर लेते हैं, ऐमे करुणा-सागर हैं ॥४॥ सब देश और सब समय सदा पूर्ण रहते हैं, ऐमा घेद-पुराण कहते हैं। ये सबके स्वामी हैं, सबमें रहते हैं और सबके मनकी बात जानते हैं ॥५॥ (ऐमे स्वामीको ठाङ्कर) करोड़ों प्रकारकी कामना करके दूसरे भक्तोंके देवताओंको कौन पूजे ! हे तुलसीदास, (अपने लों) उत्सीही संथा करनी चाहिये, जिनकी सेवा देवदेव महादेवजी करते हैं ॥६॥

[ १०८ ]

बीर महा अवरधिपे, माधे सिधि होय ।

सकल काम पूरन कर, जानै मय कोय ॥ १ ॥

बंगि, बिलंब न कीजिये लीजै उपदेम ।

बीज  
महा मंत्र जपिये मोई, जो जपत महेम ॥ २ ॥

प्रेम-चारि-त्तरपन भलो, घृत सहज सनेहु ।

संसय-समिध, अग्नि छमा, ममता-बलि देहु ॥ ३ ॥

अघ-उचाटि, मन बस करै, मरै मद-मार ।

आकरप सुख-संपदा-संतोष-विचार ॥ ४ ॥

जिन्ह यहि भाँति मजन कियो, मिले रघुपति ताहि ।

तुलसिदास प्रभुपथ चढ्यौ, जौ लेहु निवाहि ॥ ५ ॥

भावार्थ—महान् वीर श्रीरघुनाथजीकी आराधना करनी चाहते जिन्हें साधनेसे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। ये सब इच्छायें पूर्ण कर दें, इस बातको सब जानते हैं ॥१॥ इस कामको जल्दी ही करना चाहते देर करना उचित नहीं है। (सद्गुरुसे) उपदेश लेकर उसी शीघ्र (राम) का जप करना चाहिये, जिसे श्रीशिवजी जप करते हैं ॥२॥ (जप जपके बाद हृदयनादिकी विधि इस प्रकार है) प्रेमरूपी जलमें तर्पण करना चाहिये, मद्यज स्वाभाविक स्नेहका घी बनाना चाहिये और संपूर्ण समिधका क्षमारूपी भाँतिमें हृदय करना चाहिये तथा ममताका शक्ति करना चाहिये ॥३॥ पापोंका उखाटना, मनका पसीकरण, भइंकार के कामका प्राण तथा मन्त्रों और ज्ञानरूपी सुख-साधनिका आरंभ चाहिये ॥४॥ जिनमें इस प्रकारके मन्त्रन किया, उसे श्रीरघुनाथ मिलते हैं। मुझसेदास जी इसी मार्गपर चढ़ा है, जिसे प्रभु निरुद्ध सेते हैं ॥

[ १०९ ]

कस न करहु करुना हरे ! दुखहरन मुरारि !  
 त्रिविधताप-संदेह-सोक-संसय-भय-हारि ॥१॥  
 इक कलिकाल-जनित मल, मतिमंद, मलिन-मन ।  
 तेहिपर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जियँ जन ॥२॥  
 सब प्रकार समरथ प्रभो, मैं सब विधि दीन ।  
 यह जिय जानि द्रवौ नहीं, मैं करम-बिहीन ॥३॥  
 भ्रमत अनेक जाँनि, रघुपति, पति आन न मोरें ।  
 दुख-सुख सहौं, रहौं सदा सरनागत तोरें ॥४॥  
 तो सम देव न कोउ कृपालु, समुझौं मनमाँहीं ।  
 तुलसिदास हरि तोपिये, सो साधन नाहीं ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! हे मुरारे ! आप दुःखोंके हरण करनेवाले हैं,  
 तर मुझपर दया क्यों नहीं करते ? आप दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों  
 कारके तापोंके और सन्देह, शोक, अज्ञान तथा भयके नाश करने-  
 वाले हैं । ( मेरे भी दुःख, ताप और अज्ञान आदिका नाश कीजिये ) ॥१॥  
 क. तो कलिकालसे उत्पन्न होनेवाले पापोंसे मेरी बुद्धि मन्द पड़ गयी है  
 और मन मलिन हो गया है, तिसपर फिर हे स्वामी ! आप भी मेरी सँभाल  
 हीं करते ? तब इस दासका जीवन कैसे निभेगा ? ॥२॥ हे प्रभो ! आप  
 तो सब प्रकारसे समर्थ हैं और मैं सब प्रकारसे दीन हूँ । यह जानकर  
 भी आप मुझपर कृपा नहीं करते, इससे मालूम होता है कि मैं भाग्यहीन हूँ  
 ॥३॥ हे रघुनाथजी ! मैं अनेक योनियोंमें मटक आया हूँ ; परन्तु आपके



### धिनय-पत्रिका

सिया मेरे दूमरा कोई स्वामी नहीं है। दुःख-सुख सदा  
सदा आपकी ही शरण हैं ॥३॥ मैं अपने मनमें तो इस  
समझना हूँ कि आपके समान दूमरा कोई भी दयालु  
परन्तु हे हरे ! आपको प्रसन्न करनेवाले साधन इस तुलसे  
नहीं हैं। ( बिना ही साधन केवल शरणागतिते ही ब  
होना पड़ेगा ) ॥२॥

[ ११० ]

कहु कंहि कहिय कृपानिधे ! भव-जनित विपति  
इंद्रिय सकल विकल सदा, निज निज सुमाउ  
जे सुख-संपति, सरग-नरक संतत संग ल  
हरि ! परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अमा  
में अति दीन, दयालु देव सुनि मन अजुर  
जो न द्रवहु रघुवीर धीर, दुख काहे न ल  
जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुख-समन सुर  
तुलसिदास कहँ आस यहँ यहु पतित उघा

भावार्थ—हे कृपानिधान ! इस संसार-जनित भारी  
दुखड़ा आपको छोड़कर और किसके सामने रोऊँ ? इंद्रियों तो  
अपने विषयोंमें आसक्त होकर उनके लिये व्याकुल हो रा  
ये तो सदा सुख-सम्पत्ति और स्वर्ग-नरककी उलझनमें  
ही हैं; पर हे हरे ! मेरा यह अभागा मूढ़ भी आपको छो

भापका दयालु नाम सुनकर मैंने आपमें मन लगाया है। इतनेपर भी हे रघुवीर ! हे धीर ! यदि आप मुझपर दया नहीं करते तो मुझे कैसे दुःख नहीं होगा ? ॥३॥ अचर्य ही मैं अपराधोंका घर हूँ; परन्तु हे मुरारे ! आप तो ( अपराधका विचार न करके ) दुःखोंका नाश ही करनेवाले हैं । मुझ तुलसीदासको आपसे सदा यही आशा है, क्योंकि आप अयनक अनेक पतितों ( अपराधियों ) का उद्धार कर चुके हैं ( इसलिये अय मेरा भी अवश्य करेंगे ) ॥४॥

[ १११ ]

केशव ! कहि न जाइ का कहिये ।  
 देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥  
 शून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु विनु लिखा चितेरे ।  
 योये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥  
 रचिकार-नीरु घसे अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।  
 बदन-हीन सो घसे चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥  
 कौउ कह सत्य, शूठ कह कौऊ, जुगल प्रबल कौउ मानै ।  
 तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥४॥

भावार्थ—हे केशव ! क्या कहूँ ? कुछ कहा नहीं जाता ! हे हरे ! आपकी यह विचित्र रचना देखकर मन-ही-मन (आपकी लीला) समझकर रह जाता हूँ ॥१॥ कौसी अद्भुत लीला है कि, इस (संसाररूपी) चित्रको निराकार (अव्यक्त) चित्रकार (सृष्टिकर्ता परमात्मा) ने शून्य (मायाकाँ)

## धिनय-पत्रिका

दीवारपर बिना ही रंगके ( संकल्पसे ही ) बना दिया । ( साधारण स्थूल चित्र तो धोनेसे मिट जाते हैं, परन्तु यह ( महा-मायावी-रूपी माया-चित्र ) किसी प्रकार धोनेसे नहीं मिटता । ( साधारण चित्र मिटता है, उसे मृत्युका डर नहीं लगता परन्तु ) इसको मरणका मय बना हुआ है । ( साधारण चित्र देखनेसे सुख मिलता है परन्तु ) इस संसारके भयानक चित्रकी ओर देखनेसे दुःख होता है ॥२॥ सूर्यकी किरणों ( भ्रमसे ) जो जल दिखायी देता है उस जलमें एक भयानक मगर रहता है; उस मगरके मुँह नहीं है, तो भी वहाँ जो भी जल पीने जाता है, वह घट जड़ हो या चेतन, यह मगर उसे घस लेता है । भाव यह कि संसार सूर्यकी किरणोंमें जलके समान भ्रमजनित है । जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल समझकर उनके पीछे दौड़नेवाला मृग जल न पाकर प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार इस भ्रमात्मक संसारमें सुख समझकर उसके पीछे दौड़नेवालोंको भी बिना सुखका मगर यानी निराशा का काल म्ना जाता है ॥३॥ इस संसारको कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या पतलाता है और कोई सत्य-मिथ्यासे मिला हुआ मानता है, तुलसीदासजी मन्स तो ( ये तीनों ही भ्रम हैं ) जो इन तीनों भ्रमोंसे निवृत्त हो जाय है ( अर्थात् मन्व कुछ परमात्माकी लीला ही समझता है ) वही भ्रमोंसे असत्यी स्वरूपको पहचान सकता है ॥४॥

[ ११२ ]

कमव ! काग्न कौन गुगाई ।

जैहि अपगव अमाध जानि मोहिं तत्रेउ अग्यकी नाई ॥१॥



करूँ, परन्तु रात-दिन भापकी निष्ठुरता देखकर यह तुलसीदास ब  
हुर्गी हो रहा है, (इसीसे बाध्य होकर) ऐसा कहना पड़ा ॥२॥

[ ११३ ]

माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे ।

प्रनतपाल पन तोर, मोर पन जिअहुँ कमलपद देखे ॥१॥

जब लगि मैं न दीन, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।

तब लगि जो दुख सहेउं कहेउं नहिं, जद्यपि अंतरजामी ॥२॥

तैं उदार, मैं कृपन, पवित मैं, तैं पुनीत, श्रुति गावै ।

बहुत नात रघुनाथ ! तोहि मोहि, अब न तजे बनि आवै ॥३॥

जनक-जननि, गुरु-बंधु, सुहृद-पति, सब प्रकार हितकारी ।

द्वैतरूप तम-कूप परौं नहिं, अस कछु जतन विचारी ॥४॥

सुनु अदभ्र करुना वारिजलोचन मोचन मय मारी ।

तुलसिदास प्रभु ! तब प्रकास बिनु, संसय टरै न टारी ॥५॥

भावार्थ—हे माधव ! अब तुम किस कारण कृपा नहीं करते ? तुम्हारे

प्रण तो शरणागतका पालन करना है और मेरा प्रण तुम्हारे चरणारविन्दों

को देख-देखकर ही जीना है । भाव यह कि जब मैं तुम्हारे चरण देने

बिना जीवन धारण ही नहीं कर सकता तब तुम प्रणतपाल होकर भी

सुझपर कृपा क्यों नहीं करते ॥१॥ जवनक मैं दीन और तुम दयालु

सेवक और तुम स्वामी नहीं बने थे, तबतक तो मैंने जो दुःख सहे थे

मैंने तुमसे नहीं कहे, यद्यपि तुम अन्तर्यामीरूपसे सब जानते थे ॥२॥

किन्तु अब तो मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध हों गया है । तुम दानी हो और

कंगाल हूँ, तुम पतितपावन हो और मैं पतित हूँ, वेद इस बातको गा रहे हैं। हे रघुनाथजी ! इस प्रकार मेरे-तुम्हारे अनेक सम्यन्ध हैं; फिर भला, तुम मुझे कैसे त्याग सकते हो ? ॥३॥ मेरे पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र, स्वामी और हर तरहसे हितू तुम्हीं हो। अतएव कुछ ऐसा उपाय सोचो, जिससे मैं द्वैतरूपी अँधेरे कुपँमें न गिरूँ, अर्थात् सर्वत्र केवल एक तुम्हें ही देखकर परमानन्दमें मग्न रहूँ ॥४॥ हे कमलनयन ! सुनो, तुम्हारी अपार करुणा भवसागरके भारी भयसे ( आवागमनसे ) छुड़ा देनेवाली है। हे नाथ ! तुलसीदासका अज्ञान ( रूपी अन्धकार ) बिना तुम्हारे ज्ञानरूप प्रकाशके, बिना तुम्हारे दर्शनके, किसी प्रकार भी नहीं टल सकता ( अतएव इसको तुम ही दूर करो ) ॥५॥

[ ११४ ] ।

माधव ! मो समान जग माहीं ।

सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-विषय कोउ नाहीं ॥१॥

तुम सम हेतुरहित कृपालु आरत-हित ईस न त्यागी ।

मैं दुख-सोक-विकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी ॥२॥

नाहिन कलु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।

ग्यान-भवन तनु दियेहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥३॥

पेनु करील, श्रीखंड वसंतहि दूपन मृपा लगावै ।

सार-रहित हत-भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै ॥४॥

सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ विचार जिय मोरे ।

तुलसिदास प्रभु मोह-सुंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥५॥

भावार्थ—हे माधव ! संसारमें मेरे समान, मद्य प्रकारसे साधनात्मक  
 पी, अति दीन और विषय-भोगोंमें डूबा हुआ दूसरा कोई नहीं है ॥  
 तुम्हारे समान, बिना ही कारण कृपा करनेवाला, दीन-दुखियों  
 तार्थ सब कुछ त्याग करनेवाला स्वामी कोई दूसरा नहीं है। मारवा  
 के दीनोंके दुःख दूर करनेके लिये ही तुम वैकुण्ठ या सच्चिदानन्दन  
 डकर धराधाममें मानवरूपमें अवतीर्ण होते हो, इससे भक्ति  
 ग और क्या होगा ? इतनेपर भी मैं दुःख और शोकसे व्याकुल हो  
 हूँ। हे कृपालो ! किस कारण तुमको मुझपर दया नहीं माली ॥२॥  
 मानता हूँ कि इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, सब मेरा ही  
 दोष है। क्योंकि तुमने मुझे जो ज्ञानका भण्डार यह मनुष्य-शरीर  
 का, उसे पाकर भी मैंने तुम-सरीखे प्रभुको आज तक नहीं पहचाना ॥३॥  
 चन्दनको और करील घसन्तको घृष्या ही दोष देते हैं। भगवत्  
 तो हतभाग्य हैं। यौसमें सार ही नहीं है, तब येचारा चन्दन उम्मे  
 कहांसे भर दे ? इसी प्रकार करीलमें पत्ते नहीं होते फिर घसल  
 कैसे हरा-भरा कर देगा ? (वैसे ही मैं विषेकहीन और भक्तिरहित होने  
 पर दोष लगा सकता हूँ ?) ॥४॥ हे हरे ! मैं सब प्रकार कठोर हूँ, तब  
 तो कोमल स्वभावावाले हो, मैंने अपने मनमें यह निश्चयक उसे प्रिय  
 किया है कि हे प्रभो ! इस तुलसीदासकी मोहरूपी बेटी तुम्हारे ही  
 जानेसे छूट सकेगी, अन्यथा नहीं ॥५॥

[ ११५ ]

माधव ! मोह-कॉम क्यों टूटें ।

साधिर कोटि टपाय करिय, अन्वंतर प्रणिय न छूटें ॥१॥





हकी दयाके बिना संशयशून्य विवेक नहीं होता और विवेक हुए बिना घोर संसारसागरसे कोई पार नहीं जा सकता ॥५॥

[ ११६ ]

माधव ! असि तुम्हारि यह माया ।

करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥१॥

सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै ।

जेहि अनुभव विनु मोहजनित भव दारुन विपति सतावै ॥२॥

ब्रह्म-पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै ।

तौ कत भृगजल-रूप विषय कारन निसि-बासर धारै ॥३॥

जेहिके भवन विमल चिंतामनि, सो कत काँच बटोरै ।

सपने परबस परं, जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥४॥

ग्यान-भगति साधन अनेक, सब सत्य, झूठ कछु नाहीं ।

तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मनमाहीं ॥५॥

भावार्थ—हे माधव ! तुम्हारी यह माया ऐसी (दुस्तर) है कि बिना उपाय करके पच मरो, पर जयन्तक तुम दया नहीं करते तब तक मैं मर पा जाता भवन्मय ही है ॥१॥ गुनता है, विचारता है, समझता है, सबको समझता है, पर तुम्हारी इस मायाका यथार्थ रहस्य सब नहीं जानता और जयन्तक इसके याम्नायिक रहस्यका अनुभव नहीं होने तक मोहजनित संसारकी महान् विपत्तियों दुःख देती ही रहती है ॥

ज्ञानमूल बड़ा ही मधुर और शान्तिकर है, यदि मनको यह भ्रम

वहीं खखनेको मिल जाय, तो फिर यह विषयरूपी झूठे मृगजलके लिये क्यों त-दिन मटकता फिरे ॥१॥ जिसके घरमें ही निर्मल चिन्तामणि विद्यमान ; वह काँच क्यों बटोरेगा ? भाव यह कि जिसे ब्रह्मानन्द प्राप्त हो गया, वह (अधिक विषयानन्दकी ओर क्यों ताकने लगा ? जैसे कोई सपनेमें किसीके साथीन हो जाय और (छूटनेके लिये उससे) विनय करे, पर जब जाग जाय तब वह किससे क्यों निहोरा करेगा ? ॥४॥ ज्ञान, भक्ति आदि अनेक साधन ; और सभी सच्चे हैं, इनमें भूठ एक भी नहीं । परन्तु तुलसीदासके मन- । तो इसी घातका भरोसा है कि अज्ञानका नाश केवल श्रीहरि-रूपासे ही हो सकता है । अर्थात् भगवत्कृपा ही परम साधन है और यह सब जीवों- । त है ही, केवल उसपर भरोसा या परम विश्वास करना चाहिये ॥५॥

[ ११७ ]

हे हरि ! कवन दोष तोहिं दीजै ।

जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति, मोह निमि-चासर कीजै ॥१॥

जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परष यहि लागे ।

तदपि न तजत खान अज खर ज्यों, फिरत विषय अनुरागे ॥२॥

भूत-द्रोह कृत मोह-वस्य हित आपन में न विचारो ।

मद-मत्सर-अभिमान ग्यान-रिपु, इन महुँ रहनि अपारो ॥३॥

बंद-पुरान सुनत समुहत रघुनाथ सकल जगन्यारी ।

बेषत नहिं थीखंड बंनु इव, सारहीन मन पापी ॥४॥

मैं अपराध-सिंधु करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।

तुलसिदास भव-न्याल-ग्रसित तब सरन उरग-रिपु-गामी ॥५॥

## पिणग-पत्रिका

भाषार्थ—हे हरे ! तुम्हें क्या शोष हूँ ? ( क्योंकि शोष तो सब में ही है ) जिन उपायोंमें स्वप्नमें भी मोक्ष मिलना दुर्लभ है, मैं दिन-रात क्या करता हूँ ॥१॥ मैं जानता हूँ कि इन्द्रियोंके भोग सर्वथा बन्द हैं, इनमें फँसकर अज्ञानरूपी भँधरे कुपमें गिरना होगा, फिर भी मैं विरा आसक्त होकर कुत्ते, पकरे और गधेकी भाँति इन्हींके पीछे भटक हूँ ॥२॥ अज्ञान-यश जीयोंके साथ द्रोह करना हूँ और अपना दिन ब मोचता । मद, ईर्ष्या, अहंकार आदि जो धानके शत्रु हैं, उन्हींमें मैं सं रचा-पचा रहता हूँ । (यनाश्ये मुद्ग-सरीखा नीच और कौन होगा!) ॥ येदों और पुराणोंमें सुनता हूँ तथा समझता हूँ कि धीरामजी ही सं संसारमें रम रहे हैं, परन्तु मेरे विवेकहीन पारी मनमें यह बात बने नहीं समाती, जैसे चन्दनकी सुगन्ध बिना गूदेके साररहित बाँसमें न जाती ॥४॥ हे करुणाकी खानि ! मैं तो अपार अपराधोंका समुद्र हूँ— अन्तर्यामी सब कुछ जानते हो । अतपय हे गरुड़गामी ! संसाररूपी सं डसा हुआ यह तुलसीदास तुम्हारी शरणमें पड़ा है । ( इसे बचाओ, सं संसाररूपी साँप तुम्हारे बाहन गरुड़को देखते ही भयसे भाग जाय तुम एक बार इधर आओ तो सही ) ॥५॥

[ ११८ ]

हे हरि ! कबन जतन सुख मानहु ।

ज्यों गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम जानहु ॥१॥  
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बच्छपद जैसे !  
रहनि आन बिधि, कहिय आन, हरिपद-सुख पाइय कैसे ॥२॥

देखत चारु मयूर बयन सुम बोलि सुधा इव सानी ।  
 सविष उरग-आहार, निठुर अस, यह करनी यह बानी ॥३॥  
 अखिल-जीव-बत्सल, निरमत्सर, चरन-कमल-अनुरागी ।  
 ते तव प्रिय रघुवीर धीरमति, अतिसय निज-पर-त्यागी ॥४॥  
 जद्यपि मम औगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया ।  
 तुलसिदास निज गुन विचारि करुनानिधान करु दाया ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! मैं किस उपायसे अपनेको सुखी समझूँ ? मेरी करनी हाथीके दिखावटी दाँतोंके समान है, यह सब तो तुम भलीभाँति जानते हो। भाव यह कि जैसे हाथीके दाँत दिखानेके और तथा खानेके और होते हैं, उसी प्रकार मैं भी दिखाता कुछ और हूँ, और करता कुछ और ही हूँ ॥१॥ मैं, दूसरोंसे जो कुछ कहता हूँ वैसा ही स्वयं करने भी लगूँ, तो भय-सागरसे बछड़ेके पैरभर जलको लौंच जानेकी भाँति अनायास ही तर जाऊँ। परन्तु करूँ क्या ? मेरा आचरण तो कुछ और है और कहता हूँ कुछ और ही। फिर भला तुम्हारे चरणोंका या परमपदका आनन्द कैसे मिले ? ॥२॥ मॉर देखनेमें तो सुन्दर लगता है और मीठी वाणीसे अमृतसं सने हुए-से बचन बोलता है; किन्तु उसका आहार ज़हरीला साँर है ! कैसा निष्ठुर है ! करनी यह और कथनी यह ! (यही मेरा हाल है) ॥३॥ हे रघुवीर ! तुमको तो वे ही सन्त प्यारे हैं, जो समस्त जीवोंसे प्रेम करते हैं, किसीको भी देखकर तनिक भी नहीं जलते, जो तुम्हारे चरणारविन्दोंके प्रेमी हैं, जो धीर-बुद्धि हैं, जो अपने-परायेका भेद बिन्दुल ही छोड़ चुके हैं, अर्थात् सबमें एक तुमको ही देखते हैं (फिर मैं इन गुणोंसे हीन तुम्हें कैसे

प्रिय लगूँ ?) ॥४॥ हे रघुनाथजी ! यद्यपि मुझमें अनन्त भवगुण हैं और संसारमें ही रहने योग्य हूँ, परन्तु तुम करुणानिधान हो, तनिक भी गुणोंपर विचार करके ही तुलसीदासपर दया करो ! ॥५॥

[ ११९ ]

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ।

देखत, सुनत, विचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥१॥

भगति-ग्यान-वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।

कोउ भल कहउ, देउ कछु, असि वासना न उरते जाई ॥२॥

जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।

निज करनी विपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै ॥३॥

जद्यपि भग्न-मनोरथ विधिवस, सुख इच्छत दुख पावै ।

चित्रकार करहीन जथा स्वारथ विनु चित्र बनावै ॥४॥

दृषीकैम सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।

तुलसिदाम इंद्रिय-संभव दुख, हरे वनिहिं प्रभु तोरे ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! मेरा यह ( संसारको सम्पत्, निज, पवित्र और सुखरूप माननेका ) भ्रम किसे उपायसे दूर होगा ? देवता है, गुलाम है, सोचता है, फिर भी मेरा यह मन अपने स्वभावको नहीं छोड़ता । ( और संसारको मत्स्य सुखरूप मानकर बार-बार विषयोंमें पँसता है ) ॥१॥ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी साधन हम मनको शांत करनेके उपाय हैं, परन्तु मेरे हृदयमें तो यही धामना कामी नहीं जाती कि 'हाँरें दुःख भ्रष्टा करें' अथवा 'मुझे कुछ दे ।' ( ज्ञान, भक्ति, वैराग्यके साधकोंके

नमें भी प्रायः बढ़ाई और धन-मान पानेकी वासना बनी ही रहती ) ॥२॥ जिस ( संसार-रूपी ) रातमें सध जीव सोते हैं, उसमें केवल आपका कृपापात्र जन जागता है। किन्तु मुझे तो अपनी करनीको बिल्कुल विपरीत देखकर बड़ा भारी भय लग रहा है ॥३॥ यद्यपि दैव-वश—  
 आरभ्यवश मनुष्यके सारे मनोरथ नष्ट हो जाते हैं, सांसारिक सुख उसके आयमें (पूर्यं सुरुतके अभावसे) लिखे ही नहीं गये। तथापि वह सुखोंकी चछामात्र कर वैसे ही दुःख पाता है जैसे कोई बिना हाथका चित्रकार केवल मनोकल्पित) चित्रोंसे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है और मनमनोरथ होकर दुःख पाता है ( उसी प्रकार मैं भी भजनसाधनरूप उरुत किये बिना ही यों ही सुख चाहता हूँ ) ॥४॥ आपका हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी) नाम सुनकर मैं आपकी धरलया लेता हूँ। मेरे मनमें आपका अत्यन्त भरोसा है। तुलसीदासका इन्द्रिय-जन्य दुःख आपको अवश्य नाश करना ही पडेगा ॥५॥

[ १२० ] ✓

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ।

वद्यपि मृषा सत्य भासै जबलगि नहि कृपा तुम्हारी ॥१॥

अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाइ गोसाइं । असत है

बिन धौधे निज हठ सठ परबस परचो कीरकी नाइ ॥२॥

सपने व्याधि विविध पाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई ।

बंद अनेक उपाय कर जागे बिनु पीर न जाई ॥३॥

प्रति-गुरु-साधु-समृति-संमत यह दृश्य असत दुखकारी ।

तौहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, विपति मक को टारी ॥४॥

## विनय-पत्रिका

बहु उपाय संसार-तरन कहें, विमल-गिरा-शक्ति-गाँ ।  
तुलसिदाम मं-भोर गये त्रिनु त्रिउ सुख कबहुँ न पावै ॥

भावार्थ—हे दरे ! मेरे इस ( संसारको सत्य और सुखपर माननेके ) भारी भ्रमको क्यों दूर नहीं करते ? यद्यपि यह संसार है, असत् है, तथापि जबतक आपकी छुपा नहीं होती, तबतक वे सत्य-सा ही भासता है ॥१॥ मैं यह जानता हूँ कि (शरीर-धन-पुत्रादि) यथार्थमें नहीं है, किन्तु हे स्वामी ! इतनेपर भी इस संसारसे छुटकारा पाता । मैं किसी दूसरेद्वारा बँधे बिना ही अपने ही हठ ( मोह ) से ही तरह परवश बँधा पड़ा हूँ (स्वयं अपने ही अज्ञानसे बँध-सा गया हूँ) जैसे किसीको स्वप्नमें अनेक प्रकारके रोग हो जायें जिनसे मानों उसकी ही आ जाय और बाहरसे बँध अनेक उपाय करते रहें, परन्तु जब वह जागता नहीं तबतक उसकी पीड़ा नहीं मिटती (इसी प्रकार मान-भ्रममें पड़कर लोग बिना ही हुए संसारकी अनेक पीड़ा भोग रहे हैं, उन्हें दूर करनेके लिये मिथ्या उपाय कर रहे हैं, पर तत्त्वज्ञानके बिना इन पीड़ाओंसे छुटकारा नहीं मिल सकता ) ॥२॥ वेद, गुरु, सत्त्व स्मृतियाँ सभी एक स्वरसे कहते हैं कि यह दृश्यमान जगत् असत् ( और काल्पनिक सत्ता मान लेनेपर) दुःख-रूप है । जबतक इसे त्याग और धुनायजीका भजन नहीं किया जाता तबतक ऐसी किसकी शक्ति है जो इस विपत्तिका नाश कर सके ? ॥३॥ वेद निर्मल घाणोंसे संतर सागरसे पार होनेके अनेक उपाय बतला रहे हैं, किन्तु हे तुलसीदास ! जबतक 'मैं' और 'मेरा' दूर नहीं हो जाता—अहंता-ममता नहीं नि जाती, तबतक जीव कभी सुख नहीं पा सकता ॥५॥

[ १२१ ]

हे हरि ! यह भ्रमकी अधिकाई ।

देखत, सुनत, कहत, समझत संसय-संदेह न जाई ॥ १ ॥

जो जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।

कहि न जाय मृगयारि सत्य, भ्रम ते दुख होइ पिसेखे ॥ २ ॥

सुमग सेज सोवत सपने, वारिधि थूढ़त भय लागै ।

कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लागि आपु न जागै ॥ ३ ॥

अनविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी ।

सम-संतोष-दया-बिबेक तें, न्यवहारी सुखकारी ॥ ४ ॥

तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग, जदपि श्रुत श्रुति गावै ।

रघुपति-भगति, संत-संगति विनु, को भव-त्रास नसावै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! यह भ्रमकी ही अधिकता है कि देखने, सुनने, कहने और समझनेपर भी न तो संशय ( असत्य जगत्को सत्य मानना ) ही जाना है और न संदेह ( एक परमात्माकी ही अखण्ड सत्ता है या कुछ और) ही दूर होता है ॥१॥ (कोई कहे कि) यदि संसार असत्य है, तो फिर तीनों तापोंका अनुभव किस कारणसे होता है ? ( संसार असत्य है तो संसारके ताप भी असत्य हैं, परन्तु तापोंका अनुभव तो सत्य प्रतीत होता है ) ( इसका उत्तर यह है कि ) मृगतृष्णाका जल सत्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु जयतक भ्रम है, तयतक वह सत्य ही दीखता है, और इसी भ्रमके कारण विशेष दुःख होता है । इसी प्रकार जगत्में भी भ्रम-वश दुःखोंका अनुभव होता है ॥२॥ जैसे कोई सुन्दर सेजपर सोया हुआ मनुष्य सपनेमें समुद्रमें डूबनेसे भयभीत हो रहा हो पर जयतक वह स्वयं जाग नहीं जाता,



## यिनय-पत्रिका

तयनक करोड़ों नाँकाओंद्वारा भी यह पार नहीं जा सकता । यह जीव अज्ञाननिद्रामें अचेत हुआ संसार-सागरमें डूब रहा है, के तरयज्ञानमें जागे बिना सहस्रों साधनोंद्वारा भी यह दुःखमें हो सकता ॥३॥ यह अत्यन्त भयानक संसार अज्ञानके कारण है, दिसार्या देता है । अघश्य ही उनके लिये यह संसार मुम्कारी है जो मम, सन्तोष, दया और वियेकसे युक्त व्यवहार करते । तुलसीदास ! वेद कह रहे हैं कि यद्यपि सांसारिक प्रपञ्च सा असत्य है, किन्तु रघुनाथजीकी भक्ति और सन्तोंकी संगति किसमें सामर्थ्य है जो इस संसारके भीषण भयका नाश कर भ्रमसे छुड़ा सके ? ॥५॥

[ १२२ ]

मैं हरि, साधन करह न जानी ।

जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी  
सपने नृप कहँ घटै विप्र-वध, विकल फिरँ अघ लागे  
वाजिभेष सत कोटि करँ नहीं सुद्ध होइ बिनु जागे  
स्रग भहँ सर्प विपुल भयदायक, प्रगट होइ अबिचारे  
बहु आयुष धरि, बल अनेक करि हारहिं, मरइ न मारे  
निज भ्रम ते रबिकर-संभव सागर अति भय उपजावै  
अवगाहत पोहित नाँका चढ़ि कबहूँ पार न पावै  
तुलसिदास जग आपु सहित जब लागि निरमूल न जाई ।  
तब लागि कोटि कल्प उपाय करि मरिय, तरिय नहीं माई ।

भावार्थ—हे हरे ! मैंने ( अज्ञानके नाशके लिये ) साधन करना नहीं  
 ाना । जैसा रोग था, वैसी दवा नहीं की । इसमें इलाजका क्या दोष  
 ? ॥१॥ जैसे सपनेमें किसी राजाको ब्रह्महत्याका दोष लग जाय और  
 वह उस महापापके कारण व्याकुल हुआ जहाँ-तहाँ भटकता फिरे, परन्तु  
 तब तक वह जागेगा नहीं तब तक सौ करोड़ अश्वमेध-यज्ञ करनेपर भी वह  
 ब्रह्म नहीं होगा, जैसे ही तत्त्वज्ञानके बिना अज्ञानजनित पापोंसे छुटकारा  
 नहीं मिलता ॥२॥ जैसे अज्ञानके कारण मालामें महान् भयावने सर्पका  
 भ्रम हो जाता है और वह ( मिथ्या सर्पका भ्रम न मिटनेतक ) अनेक  
 धियारोंके द्वारा चलसे मारते-मारते थक जानेपर भी नहीं मरता, साँप  
 होता तो हथियारोंसे मरता; इसी प्रकार यह अज्ञानसे भासनेवाला संसार  
 भी ज्ञान हुए बिना याहरी साधनोंसे नष्ट नहीं होता ॥३॥ जैसे अपने ही  
 भ्रमसे सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न हुआ ( मृगतृष्णाका ) समुद्र बड़ा ही  
 भयावना लगता है, और उस ( मिथ्यासागर ) में डूबा हुआ मनुष्य याहरी  
 अज्ञान या नावपर चढ़नेसे पार नहीं पा सकता ( यही हाल इस  
 अज्ञानसे उत्पन्न संसार-सागरका है । ) ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं, जय-  
 तः 'मै'-पनसहित संसारका निर्मूल नाश नहीं होगा, तब तक, हे  
 मादपो, करोड़ों यज्ञ कर-करके मर भले ही जाओ, पर इस संसार-सागरसे  
 पार नहीं पा सकोगे ॥५॥

[ १२३ ]

अस कछु समुझि परत रघुराया !

बिनु तव कृपा दयालु ! दास-हित ! मोह न छूटै माया ॥ १ ॥

वाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुण भव-पार न पावै कोई।  
 निसि गृहमध्य दीपकी यातन्ह, तम निवृत्त नहिं होई ॥१॥  
 जैसे कोई इक दीन दुखित अति असन-हीन दुस्त पावै।  
 चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै ॥२॥  
 पटरस बहुप्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बरानै।  
 धिनु चोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जावै।  
 जबलगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय-आस मनमाहीं।  
 तुलसिदास तबलगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! मुझे कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि  
 दयालु ! हे सेवक-हितकारी ! तुम्हारी कृपाके बिना मैं तो मोंद हो  
 हो सकता है और न माया ही छूटती है ॥१॥ जैसे रातके समय  
 केवल दीपकी यातें करनेसे अंधेरा दूर नहीं होता, वैसे ही  
 याघनिक ज्ञानमें कितना ही निपुण क्यों न हो पर यह संसार-संसार  
 पार नहीं कर सकता ॥२॥ जैसे कोई एक दीन, दुखिया, भोजनके मन  
 भूखके मारे दुःख पा रहा हो और कोई उसके घरमें बरगुण  
 कामधेनुके चित्र लिख-लिखकर उसकी विपत्ति दूर करना चाहे तो  
 दूर नहीं हो सकती। वैसे ही केवल शास्त्रोंकी यातोंसे ही मोंद नहीं सि  
 ॥३॥ रात-दिन पटरस भोजनोंपर ध्यान्यान देते रहनेमें कुछ भी  
 होता। मोंदन करनेपर भूखकी निवृत्ति होनेमें जो मग्नुष्टि होती है  
 सुनने में नहीं जानता है जिनमें बिना ही कुछ योगे सामर्थ्यमें मोंद  
 लिया है। इसी प्रकार कोई ध्यान्यान-वाजीमें कुछ नहीं होना, वरं

कार्य-सिद्धि होती है ॥४॥ जयतक अपने हृदयमें तत्त्व-ज्ञानका प्रकाश नह  
हुआ और मनमें विषयोंकी भाशा बनी हुई है, तयतक, हे तुलसीदास  
इन जगत्की योनियोंमें भटकना ही पड़ेगा, सुख सपनेमें भी नहीं मिलेगा ॥

जो निज मन परिहरै विकारा ।  
 तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥ १ ॥  
 शत्रु, मित्र, <sup>दोष</sup> मध्यस्थ, तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई ॥ ४ ॥  
 त्यागन, गहन, <sup>उपेक्षा</sup> उपेच्छनीय, अहि, हाटक, तनकी नाई ॥ २ ॥  
 असन, पसन, पशु, वस्तु विविधाविध, सब मनि मह रह जैसे ।  
 सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तस ॥ ३ ॥  
 विटप-मध्य-पुतरिका, छत मह कंचुकि विनाई बनाये ।  
 मन मह तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ॥ ४ ॥  
 रघुपति-भगति-चारि-छालित चित, विनु प्रयास ही छहै ।  
 तुलसिदास कह चिद-विलास जग यूझत यूझत यूझै ॥ ५ ॥

अज्ञान-ज्ञानों । समिते-समय

भावार्थ—यदि हमारा मन विकारोंको छोड़ दे, तो फिर द्वैतभावों  
 रघु संसारी दुःख, भ्रम और अपार शोक क्यों हों ! यह सब मनके  
 विकारोंके कारण ही तो होते हैं ॥१॥ शत्रु, मित्र और उदासीन इन  
 तीनोंको मनने ही दृष्टसे कहरना कर रखनी है । शत्रुको साँसके समान  
 याग देना चाहिये, मित्रको सुघर्षणकी तरह प्रहण करना चाहिये और  
 उदासीनकी तृणकी तरह उपेक्षा कर देनी चाहिये । ये सब मनकी ही  
 करपनाएँ हैं ॥२॥ जैसे ( बहुमूल्य ) मणिमें भोजन, घृत, पशु और अनेक

## विनय-पत्रिका

प्रकारकी चीजें रहती हैं जैसे ही स्वर्ग, नरक, चर, मचर और बा  
लोक इस मनमें रहते हैं। भाव यह कि छोटी-सी मणिके मोलमें जो  
सो खाने, पीने, पहननेकी चीजें खरीदी जा सकती हैं, वैसे ही इस  
प्रतापसे जीव स्वर्ग-नरकादिमें जा सकता है ॥३॥ जैसे पेड़के  
कठपुतली और मृतमें धरम, विना बनाये ही, सदा रहते हैं, उसी  
इस मनमें भी अनेक प्रकारके शरीर लीन रहते हैं, जो समय पाकर  
हो जाते हैं ॥४॥ इस मनके विकार कथ दूटेंगे, जब श्रीरघुनाथ  
भक्तिरूपी जलसे धुलकर चित्त निर्मल हो जायगा, तब बनाया  
सत्यरूप परमात्मा दिखलायी देंगे। किन्तु तुलसीदास कहते हैं,  
चैतन्यके विलासरूप जगत्का सत्य तत्त्व परमात्मा समझते-समझ  
समझमें आवेगा ॥५॥

[ १२५ ]

मैं केहि कहीं विपति अति मारी। श्री रघुवीर धीर हितकारी ॥  
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहैं वसे आइ बहु चोरा ॥  
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं विनयनिहोरा ॥  
तम, मोह, लोभ, अहंकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा ॥  
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥  
मैं एक, अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥  
भागेहु नहिं नाथ ! उबारा। रघुनाथक, करहु सँमारा ॥  
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा ॥  
चिंता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥

मावार्थ—हे रघुनाथजी ! हे धैर्यवान् ! ( विना ही उकताये ) हित करनेवाले मैं तुम्हें छोड़कर, अपनी दारुण विपत्ति और किसे मुनाऊँ ? ॥१॥ हे नाथ ! मेरा हृदय है तो तुम्हारा निवास-स्थान, परन्तु आजकल उसमें बस गये हैं आकर बहुत-से चोर । तुम्हारे मन्दिरमें चोरोंने घर कर लिया है ॥२॥ ( मैं उन्हें निकालना चाहता हूँ, परन्तु वे लोग बड़े ही कठोर हृदय हैं ) सदा जयरदस्ती ही करते रहते हैं । मेरी विनती-निहोरा कुछ भी नहीं मानते ॥३॥ इन चोरोंमें प्रधान सात हैं—अज्ञान, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और हानका शत्रु काम ॥४॥ हे नाथ ! ये सब बड़ा ही उपद्रव कर रहे हैं, मुझे अनाथ जानकर कुचले डालते हैं ॥५॥ मैं अकेला हूँ और ये उपद्रवी चोर अपार हैं । कोई मेरी पुकारतक नहीं सुनता ॥६॥ हे नाथ ! भाग जाऊँ तो भी इनसे पिंड छूटना कठिन है, क्योंकि ये पीछे लगे ही रहते हैं । अब हे रघुनाथजी ! आप ही मेरी रक्षा कीजिये ॥७॥ तुलसीदास कहता है कि हे राम ! इसमें मेरा क्या जाता है, चोर तुम्हारे ही घरको लूट रहे हैं ॥८॥ मुझे तो इसी बातकी बड़ी चिन्ता लग रही है कि कहीं तुम्हारी बदनामी न हो जाय ( आपका भक्त कहलानेपर भी मेरे हृदयके सात्त्विक रत्नोंको यदि काम, क्रोध आदि डाकू लूट ले जायेंगे तो इसमें आपकी ही बदनामी होगी । अतएव इस अपने घरकी आप ही सम्हाल कीजिये ) ॥९॥

[ १२६ ]

मन मेरे, मानहि सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी ॥१॥  
 उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते । सेवाहि ते जे अपनपौं चेतें ॥२॥

दुख-सुख अरु अपमान-बढ़ाई । सब सम लेखहि विपति विहाई ॥३॥  
 सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि विदूषहि केही ॥४॥  
 तुलसिदास विनु असि मति आये । मिलहि न राम कपट-लाये ॥५॥

भावार्थ—हे मेरे मन ! यदि तू अपने हृदयमें भगवान्की मक्ति चाहता है, तो मेरी सीख मान ॥१॥ भगवान्ने ( गर्भवाससे लेकर अबतक ) तेरे ऊपर जो (अपार) उपकार किये हैं उनको याद कर, और अहंकार छोड़कर बड़ी सावधानीसे तत्पर होकर उनकी सेवा कर ॥२॥ सुख-दुःख, मान-अपमान, सबको समान समझ; तभी तेरी विपत्ति दूर होगी ॥३॥ अरे दुष्ट! इस शरीरको तो कालने ग्रस ही रक्खा है, इसके लिये किसीको दोष मत दे ॥४॥ तुलसीदास कहता है कि ऐसी बुद्धि हुए बिना, केवल कपट-समाधि लगानेसे श्रीरामजी कभी नहीं मिलते, वे तो सच्चे प्रेमसे ही मिलते हैं ॥५॥

[ १२७ ]

मैं जानी, हरिपद-रति नहीं । सपनेहुँ नहिं विराग मन माहीं ॥१॥  
 जे रघुवीर-चरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोगसम त्यागे ॥२॥  
 काम-भुजंग डसत जब जाही । विषय-नीच कटु लगत न ताही ॥३॥  
 असमंजस अस हृदय विचारी । बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥४॥  
 जब कब राम-कृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥५॥

भावार्थ—मैंने जान लिया है कि श्रीहरिके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है; क्योंकि सपनेमें भी मेरे मनमें वैराग्य नहीं होता (संसारके भोगोंमें वैराग्य होना ही तो भगवच्चरणोंमें प्रेम होनेकी कसौटी है) ॥१॥ जिनका श्रीरामके

घरणाँमें प्रेम है, उन्होंने सारे विषय-भोगोंको रोगकी तरह छोड़ दिया है॥२॥  
 जब जिसे कामरूपी साँप डस लेता है, तभी उसे विषयरूपी नीम कड़वी  
 नहीं लगती॥३॥ ऐसा विचारकर हृदयमें बड़ा अस्मंजस हो रहा है कि  
 क्या करूँ? इसी विचारसे मेरे मनमें नित नया सोच बढ़ता जा रहा है॥४॥  
 हे तुलसीदास ! और कोई उपाय नहीं है; जब कभी यह दुःख दूर  
 होगा, तो उस श्रीराम-कृपासे ही होगा !॥५॥

[ १२८ ]

सुमिरु सनेह-सहित शीतापति । रामचरन तजि नहिंन आनि गति ॥१॥  
 जप, तप, तीर्थ, योग, समाधि । कलिमति-विकल, न कछु निरुपाधी॥२॥  
 करवहुँ सुकृत न पाप सिराहीं । रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥३॥  
 इति एक अथ-असुर-जालिका । तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका॥४॥

भावार्थ—रे मन ! प्रेमके साथ धीजानकी-बल्लभ रामजीका स्मरण  
 कर । क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके घरणाँको छोड़कर तुझे और कहीं गति नहीं  
 है॥१॥ जप, तप, तीर्थ, योगाभ्यास, समाधि आदि साधन हैं; परन्तु कलियुगमें  
 जीयोंकी बुद्धि स्थिर नहीं है इससे इन सभी साधनोंमें विघ्न हैं ॥२॥ आज  
 पुण्य करते भी ( बुद्धि ठिकाने न होनेसे ) पापोंका नाश नहीं होता ।  
 रक्तबीज राक्षसकी भाँति ये पाप तो बढ़ते ही जा रहे हैं, भाव यह है कि  
 बुद्धिकी विकलतासे पापमें पुण्य-बुद्धि और पुण्यमें पाप-बुद्धि हो रही है,  
 इससे पुण्य करते भी पाप ही बढ़ रहे हैं ॥३॥ हे तुलसीदास ! इस पाप-रूपी  
 राक्षसोंके समूहकी नाश करनेवाली तो केवल प्रभुकी कृपारूपी कालिकाजी



ही हैं। भगवत्कृपाकी शरण लेनेके सिवा भव अन्य किसी साधन काम नहीं निकलेगा ॥४॥

[ १२२ ]

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत ।  
 सुमिरत सुख-सुकृत बढ़त, अध-अमंगल घटत ॥ १ ॥  
 विनु श्रम कलि-कल्प-जाल कटु कराल कटत ।  
 दिनकरके उदय जैसे तिमिर-तोम फटत ॥ २ ॥  
 जोग, जाग, जप, विराग, तप, सुतीरथ-अटत ।  
 बाँधिवेको भव-गण्ड रेनुकी रजु बटत ॥ ३ ॥  
 परिहरि सुर-मनि सुनाम, गुंजा लखि लटत ।  
 लालच लघु तेरो लखि, तुलसि तोहि हटत ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सुन्दर जीम ! तू राम-राम क्यों नहीं रटती ! जिस ए-

नामके स्मरणसे सुख और पुण्य बढ़ते हैं तथा पाप और अशुभ घटते हैं ॥१॥ रामनाम-स्मरणसे विना ही परिश्रमके, कलियुगके कटु और भयानक पापोंका जाल जैसे ही कट जाता है, जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकारका समूह फट जाता है ॥२॥ रामनामको छोड़कर योग, यज्ञ, जप, तप, वैराग्य और तीर्थाटन करना वैसा ही है जैसे संसार-रूप गजराजके बाँधनेके लिये धूलके कणोंकी रस्सी घटना; अर्थात् जैसे धूलकी रस्सीसे हाथीका बाँधना असम्भव है, वैसे ही रामनाम-ही साधनोंसे मनका परमात्मामें लगाना असम्भव है ॥३॥ सुन्दर रामनामरूप चिन्तामणि छोड़, तू विषयरूपी घुँघरियोंको देखकर उनपर ललचा रहै है, तेरा यह तुच्छ लोम देखकर ही तुलसी तुझे फटकार रहा है ॥४॥

[ १३० ]

राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।

मंगल-मृद उदित होठ, फलि-मल-छल छपत ॥ १ ॥

फट्टु के लहं फल रमाल, षपुर षीञ्ज षपत ।

हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत ॥ २ ॥

फाल, फरम, गुन, गुमाउ सबके मीम तपत ।

राम-नाम-महिमा षी चम्पा चने चपत ॥ ३ ॥

साधन चिनु सिद्धि मफल बिकल लोग लपत ।

फलिगुग धर षनिञ्ज बिपुल नाम-नगर षपत ॥ ४ ॥

नाम सौ प्रतीति-प्रीति हृदय गुपिर षपत ।

पावन किये रावन-रिपु तुलमिदु-ने अपत ॥ ५ ॥

भावार्थ—राम नामके जपने बन्द्याण धीर आनन्दका उदय होता है  
धीर बलिगुगके पाप तथा मल-छिन्न तिर जाने हैं ॥ १ ॥ बट्टुका  
बीज बोकर आजन्म बिरने आमके फल पाये हैं अनपय मृ उपर्ये नप्ये  
आपकर अपने ( दुर्गंध मनुष्य ) जन्मको नष्ट मन कर ( न-रीका फल  
सो दुर्गंध ही होगा, इसलिये राम-नाम जप, इसीसे बन्द्याण है ) ॥ २ ॥  
बाल, बर्ष, गुण ( मल, रज धीर मम ) धीर बन्द्याण के मलीके मिली-  
पर मप करे हैं, अर्थात् हमके बन्द्याणके मलीको दूर्य होनाका धीर बर्ष  
बनना पड़ता है, फलतु धीराम-नामकी महिमामयी बर्षों आनन्द होने ही  
के लक्ष्य कर जाने हैं, इसका बोध बन्द्याण करी कर जाता ( इसलिये  
राम-नामका जप कर ) ॥ ३ ॥ लोग दिना ही मल-छिन्नके मली निर्दिष्टी



[ १३० ]

राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।

मंगल-मुद उदित होत, कलि-मल-छल छपत ॥ १ ॥

कटु के लहे फल रसाल, बपुर बीज बपत ।

हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत ॥ २ ॥

काल, करम, गुन, सुभाउ मबकं भीम नपत ।

राम-नाम-भहिमा की परचा बने बपत ॥ ३ ॥

साधन बिनु मिट्टि मकल बिकल लोग लपत ।

कलिजुग पर बनिज बिपुल नाम-नगर खपत ॥ ४ ॥

नाम सौं प्रतीति-प्रीति हृदय मुधिर बपत ।

पावन किये रावन-रिपु तुलमिदु-ने अचत ॥ ५ ॥

साक्षर्य—राम-नामके जरमे बन्पाए और भावगुणा उद्व होना है  
 १० बलियुगके पाप तथा छल-छिद्र रिपु जाने है ॥१॥ बहून्पा  
 ११ बीबर भाऊनक बिरमे आमके फल पावे । अणपव नु ह्यर्ष काये  
 १२ कर भपने ( दुर्लभ अनुपाय ) जगमकी नद मन बर ( कालीका बज  
 १३ दुर्गति ही होगा, इतरगिये राम-नाम जप, इरामे बन्पाए है ) ॥३॥  
 १४, करम, गुन ( करण, बज और तम ) और स्वभाव से कालीके गिरने  
 पर लप रहे हैं, अर्थात् इनके अभावसे कालीकी दुःख योगना और करम  
 बरना पड़ता है; परन्तु धीराम-नामकी महिमानी कर्षां करणम होने ही  
 है सब सब जाने हैं, इनका कोई अभाव नहीं रह जाता ( १  
 राम-नामका ३३ कर ) ॥३॥ लोग बिना ही अणवर्षके

पानेके लिये व्याकुल हैं; पर यह कब सम्भव है? हाँ, कलियु  
 ढेर-का-ढेर बनिज-व्यापार, माल-मत्ता नाम-नगरमें सप जाता है, म  
 कलियुगका पाप-समूह राम-नामके प्रतापसे नष्ट हो जाता है  
 नाममें विद्वान्स और प्रेम करनेसे हृदय मलीभाँति स्थिर—शान्त  
 जाता है। रामजीके नामने रावण-सरीखे शत्रु और तुलसी-स  
 पतितको भी पावन कर दिया है ॥५॥

[ १३१ ]

पावन प्रेम राम-चरन-कमल जनम लाहु परम ।  
 रामनाम लेत होत, सुलभ सकल धरम ॥ १ ॥  
 जोग, मख, विवेक, चिरति, वेद-पिदित करम ।  
 करिवे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर, नरम ॥ २ ॥  
 तुलसी मुनि, जानि-श्रुति, भूलहि जनि भरम ।  
 तेहि प्रभुको होहि, जाहि सच ही फी सरम ॥ ३ ॥

भावार्थ—धीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें विनुद्ध (निरुक्त) प्रेम  
 होना ही जीवनका परम फल है। राम-नाम लेने ही सारे धर्म सुलभ हो  
 हैं ॥१॥ जैसे तो योग, यज्ञ, विवेक, धैर्य आदि अनेक कर्म धर्मोंमें बन  
 गये हैं, जो सुननेमें तो बड़े ही मधुर और कोमल जान पड़ते हैं, पर  
 करनेमें बड़े ही कटु और कठोर हैं ॥२॥ इसलिये, हे तुलसीराम !  
 और जान-बूझकर इस धर्ममें मन मूट, तू तो उस प्रभुका ही (राम)  
 जा, जिसे सबकी लाज है ! ॥३॥

गम-से प्रीतमयी प्रीति-रहित जीव जाय विषय ।  
 जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो ममुस कियत ॥ १ ॥  
 जहँ-जहँ जेहि जेनि जनम मदि, पतान्त, विषय ।  
 तहँ-तहँ नू विषय-सुखदि, चहत लहत निषय ॥ २ ॥  
 कत विमोह लठ्यो, फट्यो गगन मगन सिषय ।  
 तुलसी प्रह्ल-सुखम गाह, बयो न सुषा विषय ॥ ३ ॥

भावार्थ—धीराम-नरोंग प्रोत्सवों प्रेम न करके. यह जीव व्यर्थ ही  
 जीता है. अरे! जिनको (विषय-सुखको) नू सुख मान रहा है. तनिक विषय  
 सो कर. यह सुख किसका-सा है ? ॥१॥ जहाँ जहाँ, जिन जिन योनिमें—  
 पृथ्वी, पाताल और स्वर्गमें—तूने जन्म लिया, लहो-लहो तूने जिन विषय  
 सुखकी कामना की, वही प्राप्त करके. अनुसार तुझे मिलत (परन्तु वही सो  
 नू परम सुखी सो नहीं हुआ।) ॥२॥ क्यों मोहमें पै. गबर पड़े आकाशके  
 नीचेमें गलीस हो रहा है ? भाय यह है कि जीव आकाशका नीला अण्डक है.  
 कैसी ही सर्गात्मिक विषय-धोगोंमें आनन्द मिलता अण्डक है । हस्तिये  
 हे सुखी ! यदि तुझे आनन्दहीकी इच्छा है. तो प्रभु धीरामपदोंका  
 सुख सुख-नाम कर अमृत क्यों नहीं पीना (जिनमें अमृत होकर  
 आनन्दका ही रूप जाय ।) ॥३॥

सोको ही विरि विरि हित, विष दुर्नाथ नाथ बचन करत ।  
 दुखे कर, सुखि, महानि, बयो न सुखम सुखम करत ॥१॥

छोटा बड़ा, खोटा सारा, जग जो जहँ रहत ।  
 अपना अपने को मला कहहु, को न चहत ॥२॥  
 विधि लगि लघु कीट अविधि सुख मुखी, दुख दहत ।  
 पशु लॉ पशुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥३॥  
 विषय मुद निहार मार मिर काँधे ज्यों बहत ।  
 योंही जिय जानि, मानि सठ ! तू साँसति सहत ॥४॥  
 पायो केहि घृत विचारु, हरिन-चारि महत ।  
 तुलसी तकु ताहि सरन, जाते सब लहत ॥५॥

भावार्थ—अरे जीव ! मैं तुझसे बार-बार हिनकारी, प्रिय, पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ, इन्हें सुनकर, मनमें विचारकर और समझकर मैं नू. सुगम और सुन्दर रास्ता क्यों नहीं पकड़ता ? अर्थात् ध्यानमयी शरण क्यों नहीं हो जाता ? ॥१॥ छोटा-बड़ा, खोटा-सारा, जो जहाँ संसारमें रहता है, उनमें यता, पेसा कौन है, जो अपना भला न चाहता हो ? ॥२॥ ब्रह्मासे लेकर छोटे-छोटे कीड़ेतक सुखसे सुखी होते हैं और दुःखसे जलते हैं, पशुपालक ग्वालेकी तरह परमात्मा जीवरूपी पशुओंको (अज्ञानसे) बाँधता (ज्ञानसे) खोलता और उन्हें (कर्मोंमें) जोतता है ॥३॥ विषयोंके सुखोंको देख। वे तो सिरके बोझेको कन्धेपर रखनेके समान हैं। अर्थात् विषय-सुखमें सुख है ही नहीं, इस तरह मनमें समझकर मान जा। अरे मूर्ख ! क्यों कष्ट सह रहा है ? ॥४॥ तनिक विचार तो कर, मृग-शृष्णाके जलको मथकर किसने घी पाया है ? अर्थात् असत् संसारके कार्पनिक पदार्थोंमें सच्चा सुख कैसे मिल सकता है ? हे तुलसी ! तू तो उसी प्रभुकी शरणमें जा, जिससे सब कुछ प्राप्त होता है ॥५॥

[ १३४ ]

ताते हीं बार बार देव ! द्वार परि पुकार करत ।  
 आरति, नति, दीनता कहें प्रभु संकट हरत ॥१॥  
 लोकपाल सोक-पिकल रावन-डर डरत ।  
 का मुनि सकुचे कृपालु नर-भरीर धरत ॥२॥  
 फौसिक, मुनि-तीय, जनक सोच-अनल जरत ।  
 साधन केहि सीतल भये, सो न समुक्ति परत ॥३॥  
 केवट, खग, सवारी महज धरनकमल न रत ।  
 सनमुख तोहिं होत नाथ ! कुठरु गुफरु परत ॥४॥  
 बंधु-धर कपि-विभीषन गुरु गलानि गरत ।  
 सेवा केहि रीति राम, किये सरिस भरत ॥५॥  
 सेवक भयो पवनपूत मादिस अनुहरत ।  
 ताको लिये नाम राम सब को सुदर दरत ॥६॥  
 जाने बिनु गम-रीति पचि पचि जग भरत ।  
 परिहरि छल मरन गये तुलामिहु-सें तरत ॥७॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं तुम्हारे इसी स्वभावको जानकर द्वारपर पड़ा  
 हुआ बार-बार पुकार रहा हूँ कि तुम दुःख, मशक्ता और दीनता मुझमें  
 ही, हे प्रभो ! माते संकट हर लेते हो ॥१॥ जब रावणके अटकें माते इन्द्र,  
 बुधेर भादि लोकपाल इत्कार सोचने व्याकुल हो गये थे, तब हे कृपालु !  
 तुमने क्या तुमकर संबोधने सरशरीर धारण बिद्या था ! ॥२॥ यह समाजमें  
 बड़ी आता, कि जो विभ्यामिष, अदन्दा और जनक विद्वानों अग्निदे अने



जा रहे थे, वे किस साधनसे शीतल हो गये ? ॥३॥ गुह निपाद, प  
 (जटायु), शबरी आदि स्वभावसे ही तुम्हारे धरण-कमलोंमें रत नहीं  
 किन्तु हे नाथ ! तुम्हारे सामने आते ही (इन) धुरे-धुरे वृक्षोंमें भी अ  
 अच्छे फल फल गये ! भाव यह कि निपाद, शबरी आदि पार्ष्णी  
 तुम्हारी शरणागतिसे तर गये ॥४॥ अपने-अपने भाईके साथ शपु  
 करनेसे सुग्रीव और विभीषण बड़े भारी दुःखसे गले जाते थे। हे रामजी  
 तुमने किस सेवासे रीझकर उन्हें भरतजीके समान मान लिया ?  
 हनुमान्जी तुम्हारी सेवा करते-करते तुम्हारे ही समान हो गये।  
 रामजी ! उनका ( हनुमान्जीका ) नाम लेते ही तुम सचपर भर्त्सना  
 प्रसन्न हो जाते हो ॥६॥ ( यह सच क्यों हुआ ? दुःख, नम्रता और  
 दीनताके कारण ही तुमने ऐसा किया ) इसलिये हे नाथ ! तुम्हारे  
 (रीझनेकी) रीति न जाननेके कारण ही जगत् अन्यान्य साधकोंमें प  
 पचकर मर रहा है। तुम दुष्टियों, नम्रों और दीनोंपर प्रसन्न होते हो  
 जानकर जो तुम्हारी शरण हो जाय वह तो तर ही जाता है, क्योंकि  
 कपट छोड़कर तुम्हारी शरणमें जानेसे तुलसी-जैसे जीव भी तो सांम  
 सागरसे तर गये ॥७॥

राग मूहो त्रिशावक

[ १३५ ]

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो ।

अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहि दियो ॥

दियो मुकुल जनम, मरीर मुंदर, हेतु जो फल चारिको ।

जो पाइ पंडित परमपद, पायत पुरारि-धुगरिको ॥

एत आत्मवर्त, गर्भीय गुणवति, अन्त मन्त्रो, मंगलति मन्त्री ।  
 मेरी हृदयति वाच्यः । अन्त वादी अहति है विष वाच्य वली ॥१॥

अहर्तुं मनुष्यि विन दे पुनु वामाद्य ।

है विनु गो जगर्तुं आदिने असाध ॥

असाधति विष, असाध गो वा मे धीन देव वासाध ।

हेतु अन्त, अति-अन्त अतिवति, गो अहति अतिवाच्य ॥

विष वाच्य, गुण, असादी, अचमयो, विष, अन्त, मंगल, मन्त्री ।

विष अन्त आदि असाधो, विनु हेतु विन मे अति असा ॥२॥

दुति म गो विनु हेति विषे ही है ।

अहति अहति अहति हेतु विषे ही है ॥

विषे हेतु असा असा असा असा असा असा असा असा ॥

असादी, असादी असादी, गो असा असा असा असा ॥

अहति अहति, अहति अहति, अहति अहति अहति अहति ॥

असा असादी असा असा असा असा असा असा असा ॥३॥

असा असादी असा, असा, असा, असा ॥

असा असा असा असा, असा असा असा असा ॥

असा असा असा असा असा असा असा असा ॥

असा असा असा असा असा असा असा असा ॥

खग, सचरि, निसिचर, मालु, कपि किये आपु ते बंदित बड़े।  
तापर तिन्ह कि सेवा मुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े॥४॥

\* \* \* \*

स्वामीको मुभाव कयो सो जब उर आनिहैं।  
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मन मानिहैं॥  
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ मायो नाइहैं।  
ततकाल तुलसीदास जीवन-जनमको फल पाइहैं॥  
जपि नाम करहि प्रनाम, कहि गुन-ग्राम, रामहिं धरि हिये।  
विचरहि अवनि अवनीस-चरनसरोज मन-मधुकर किये॥५॥

भावार्थ—अरे ! जिन्होंने तुझे देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीर दिया, उ

परम प्रेमी श्रीरामजीके साथ तूने प्रेम नहीं किया। उन्होंने ऐसे अच्छे कुल  
जन्म और सुन्दर शरीर दिया है, जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष  
कारणहैं। जिसे पाकर ज्ञानी लोग भगवान् शिव अथवा कृष्णके परमपद  
प्राप्त करते हैं। फिर यह भारतवर्ष देश, पास ही देव-नदी गंगाजी, कैस  
सुन्दर स्थान है ! साथ ही सत्संग भी उत्तम है। इतनेपर भी अरे कायर  
तेरी कुबुद्धिके कारण इन सब साधनोंकी कल्पलता भी (जन्ममरणरूपी)  
विषैले फल फला चाहती है ! अर्थात् इतने सुन्दर साधनोंको पाकर  
भी तू अपने बुद्धिदोषसे इनका दुरुपयोग ही कर रहा है ॥१॥  
अब भी समझ ले। मन लगाकर परमार्थकी बात सुन। यह बात  
कल्याण करनेवाली है और इस संसारमें भी उससे अपना स्वार्थ सिद्ध  
होता है। यदि तुझे स्वार्थ ही अच्छा लगता है, विचार कर, यह कौन है  
जिससे स्वार्थ प्राप्त होगा, और जिसे वेद गाते हैं (अर्थात् श्रीरामजी ही

• इससे यह सिद्ध है कि गोसाईंजी भगवान् शिव, कृष्ण और राममें कोई भेद  
नहीं मानते थे।

हैं)। अरे दुष्ट! देख, (विषयरूपी) साँपके साथ खेलना छोड़ दे, उस स्वामीको पहचान, जिस (सबमें रमनेवाले आत्मारूपी राम) के प्रेमके कारण ही पिता, गुरु, स्वामी, शरीर, पुत्र, सेवक, मित्र आदि सब प्रिय जान पड़ते हैं, उस अहेतुक हित करनेवाले परम सुहृद् प्रभुको तूने नहीं पहचाना ॥२॥ वह तेरा हितकारी प्रभु द्वारि दूर नहीं है, तेरे हृदयमें ही है। छल छोड़कर उसका स्मरण करनेपर वह सदा रूपा किये ही रहता है। भाव यह है, कि परमात्मा हृदयमें तो अवश्य है किन्तु बीचमें कपटका परदा पड़ा है, इसीसे उसका साक्षात्कार नहीं होता। परदा हटा, कि प्यारेका मुखकमल दीखा! वह रूपा करके अपने भक्तोंपर कर-कमलोंकी छाया किये रहता है, स्वयं सदा उनकी रक्षा करता है। जो उसे भजता है, वह भी उसे भजता है। वह जगत्का ईश्वर है, जीवका जीवन है। जो सबके लिये सब तरहके साज मजाता है, जिसने विष्णुको विष्णुत्व, ब्रह्माका ब्रह्मत्व और शिवको शिवत्व दिया, वह यही श्रीजानकी-नाथ रघुनाथजीकी मधुर आनन्दस्वरूपिणी मंगलमयी मूर्ति है ॥३॥ यद्यपि वह बहुत ही बड़ा स्वामी है, सभीका अधीश्वर है, तथापि वह महान् सुशील, सुन्दर और मरल है। अरे! जिसका ध्यान शिवको भी दुर्लभ है उसने उठकर केपटको हृदयसे लगा लिया! हृदयसे लगाकर मिलने ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और प्रेमवश शरीर शिथिल-सा हो गया। देवता, सिद्ध, मुनि और कवि कहते हैं, कि श्रीरघुनाथजीके समान कोई भी प्रेमप्रिय नहीं है, उन्हें जितना प्रेम प्यारा लगता है उतना और किसीको नहीं लगता। उन्होंने पक्षी (जटाधु), शवरी, राक्षस (विभीषण), रीछ (जाम्बवान् आदि) और चन्द्रों (हनुमान्जी आदि) को अपनेसे भी अधिक पूजनीय

पना दिया । (अथ शीलकी भोग देखिये) इतनेपर भी ये जय उन लोको  
छारा की हुई सेवा याद करते हैं, तब संकोचके मारे मन-ही-मन गड़े-  
जाते हैं ॥४॥ प्रभु धीरामजीका जो शील-स्वभाव मैंने कहा है उसे ज  
तू हृदयमें लायेगा, तब तेरी भारी चिन्ताएँ मिट जायँगी और प्र  
रामचन्द्रजी भी मनमें प्रसन्न होंगे । अरे ! श्रीरघुनाथजी तो तभी प्रसन्न हो  
जायँगे, जय तू हाथ जोड़कर मन्त्रक नया देगा । तुलसीदास ! तू उसी  
क्षण जन्म और जीवनका फल पा जायगा, अर्थात् तुझे धीरामजी दर्शन  
देंगे । राम-नामका जप कर, रामको प्रणाम कर, उनके गुण-समूहों-  
का कीर्तन कर, और हृदयमें धीरामजीको विराजित कर और अपने  
मनको जगदीश धीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंमें नित्य निवास करने-  
वाला भ्रमर घनाकर पृथ्वीपर निर्भय विचरण कर ॥५॥

[१३६]

[१]

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो । तबतें देह गेह निज जान्यो ॥  
मायाब्रह्म स्वरूप बिसरायो । तेहि भ्रमते दारुन दुख पायो ॥

पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिँ मिल्यो ।  
भव-सुल, सोक अनेक जेहि, तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ॥  
बहु जोनि जनम, जरा, विपत्ति, मतिमंद ! हरि जान्यो नहीं ।  
श्रीराम बिनु विधाम मूढ़ ! विचारु, लखि पायो कहीं ॥

[२]

आनँद-सिंधु-मध्य तब चासा । बिनु जाने कस भरसि पिपासा ।  
मृग-भ्रम-चारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयो सुख मानी ।

तहँ मगन मज्जसि, पान करि, त्रयकाल जल नाहीं जहाँ ।  
 निज सहज अनुभव रूप तव खल ! भूलि अब आयो तहाँ ॥  
 निरमल, निरंजन, निरविकार, उदार सुख तँ परिहरयो ।  
 निःकाज राज विहाय नृप इव सपन कारागृह परयो ॥

[ ३ ]

निज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं । अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ॥  
 ताते परबस परयो अभागे । ता फल भरम-चास-दुख आगे ॥  
 आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ ।  
 सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट घात नहिं पूछै कोऊ ॥  
 सोनित-पुरीष जो मूत्र-मल कृमि-कर्दमावृत सोवई ।  
 कोमल सरीर, गँभीर वेदन, सीस धुनि-धुनि रोवई ॥

[ ४ ]

निज करम-जाल जहँ घेरो । श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो ॥  
 बहुविधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों । परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हों ॥  
 तोहि दियो ग्यान-विवेक, जनम अनेककी तव सुधि भई ।  
 तेहि ईसकी हीं सरन, जाकी विषम भाया गुनमई ॥  
 जेहि किये जीव-निकाय बस, रसहीन, दिन-दिन अति नई ।  
 सो करौ बेगि सँमार श्रीपति, विपति मई जेहि मति दई ॥

[ ५ ]

धुनि बहुविधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजाँ चक्रपानी ॥  
 ऐसेहि करि विचार शुभ साधी । प्रसव-पवन प्रेरैउ अपराधी ॥

प्रेरयो जो परम प्रचंड मारुत, कष्ट नाना तैं सखो ।  
 सो ग्यान, ध्यान, विराग, अनुभव जातना-पावक दखो ॥  
 अति खेद ब्याकुल, अल्प बल, छिन एक बोलि न आवई ।  
 तब तीव्र कष्ट न जान कोउ, सब लोग हरपित गावई ॥  
 [ ६ ]

बाल दसा जेते दुख पाये । अति असीम, नहिं जाहिं गनाये  
 छुधा-ब्याधि-बाधा भइ मारी । वेदन नहिं जानै महतारी  
 जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै ।  
 सोइ करै विविध उपाय, जातैं अधिक तुब छाती जरै ॥  
 कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै ।  
 ब्यतिरेक तोहि निरदय ! महाखल ! आन कहु को सहि सकै ॥  
 [ ७ ]

जोबेन जुवती सँग रँग रात्यो । तब तू महा मोह-भद मात्यो ।  
 ताते तजी घरम-भरजादा । बिसरे तब सब प्रथम बिपादा ।  
 बिसरे बिपाद, निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो ।  
 फिरि गर्भगत-आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो ॥  
 कृमि-भस्म-बिट-परिनाम तनु, तेहि लागि जग पैरी भयो ।  
 परदार, परधन, द्रोहपर, मंमार पाई नित नयो ॥  
 [ ८ ]

देखत ही आई चिरुघाई । जो तैं मपनेहुं नाहिं बुलाई ॥  
 साके गुन कष्टु फदे न जाहीं । सो अच प्रगट देरु तनु माहीं ॥

सो प्रगट तनु जरजर जराबस, व्याधि, शूल सतावई ।  
 सिर-कंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत, वचन काहु न भावई ॥  
 गृहपालहूतें अति निरादर, खान-पान न पावई ।  
 ऐसिहु दसा न विराग तहँ, कृष्णा-तरंग चढ़ावई ॥

[९]

कहि को सकै महाभव तेरे । जनम एकके कलुक गनेरे ॥  
 चारि खानि संतत अवगाहीं । अजहुँ न करु विचार मन माहीं ॥

अजहुँ विचारु, धिकार तजि, भजु राम जन-सुखदायकं ।  
 भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं ॥  
 बिनु हेतु करुनाकर, उदार, अपार-माया-तारनं ।  
 कैवल्य-पति, जगपति, रमापति, प्रानपति, गतिकारनं ॥

[१०]

रघुपति-भगति सुलभ, सुखकारी । सो त्रयताप-सोक-भय-हारी ॥  
 बिनु सतसंग भगति नहिं होई । ते तव मिलें द्रवै जब सोई ॥

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये ।  
 जेहि दरस-परस-समागमादिक पापरासि नसाइये ॥  
 जिनके मिले दुख-सुख समान, अमानतादिक गुन भये ।  
 मद-मोह लोभ-विपाद-क्रोध सुबोधतें सहजहिं गये ॥

[११]

सेवत साधु द्वैत-भय भागै । श्रीरघुवीर-चरन लय लागै ॥  
 देह-जनित विकार सब त्यागै । तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ॥



अनुराग सो निज रूप जो जगते बिलच्छन देखि  
संतोष, सम, सीतल सदा दम, देहवंत न लेखि  
निरमल, निरामय, एकरस, तेहि हरप-सोक न व्याप  
त्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भा

[ १२ ]

जो तेहि पंथ चलै मन लाई । तौ हरि काहे न होहि ।  
जो मारग श्रुति-साधु दिखावै । तेहि पथ चलत सब मुख

पावै सदा सुख हरि-कृपा, संसार-आसा तजि सँ  
सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत-दरसन, चात कोटिक को कौ  
द्विज, देव, गुरु, हरि, संत बिनु संसार-पार न पाइये  
यह जानि तुलसीदास आसहरन रमापति गाइये

[ १ ]

भावार्थ—हे जीव ! जबसे तू भगवान्से अलग हुआ, तमारे  
शरीरको अपना घर मान लिया। मायाके यश होकर तूने अपने 'सच्चि-  
स्वरूपको भुला दिया, और इसी भ्रमके कारण तुझे वागण दुःख भोगने  
तुझे बड़े ही कठिन (जन्म-मरणरूपी) असहनीय दुःख मिले। सुलभ  
स्वप्नमें भी लेश नहीं रहा। जिस मार्गमें अनेक संसारी कष्ट भीर  
भरे पड़े हैं, तू उन्हींपर दृष्टपूर्वक धार-धार चलता रहा। अनेक योनि  
भटका, बूढ़ा हुआ, विपत्तियाँ महीं, (मर गया)। पर, अरे मूर्ख ! तूने  
भी धीहरिको नहीं पहचाना ! अरे मूढ़ ! विचारकर देख, भीरामा  
छोड़कर (किमीने) क्या कहीं शांति प्राप्त की है ?

[ २ ]

हे जीव ! तेरा नियास तो आनन्द-सागरमें है, अर्थात् तू आनन्द-रूप ही है, तो भी तू उसे भुलाकर क्यों प्यासा मर रहा है ? तू ( विषय-भोगरूपी ) मृगजलकी सखा जानकर उन्हींमें सुख समझकर मग्न हो रहा है । उसीमें डूबकर नहा रहा है और उसीको पी रहा है; परन्तु उस ( विषय-भोगरूपी ) मृगवृष्णाके जलमें तो ( सुखरूपी ) सखा जल तीन कालमें भी नहीं है । अरे दुष्ट ! तू अपने सहज अनुभव-रूपको भूलकर आज यहाँ आ पड़ा है । तूने अपने उस विगुण, अविनाशी और विकाररहित परम सुखस्वरूपको छोड़ दिया है और व्यर्थ ही ( उसी प्रकार दुर्मी हो रहा है ) जैसे कोई राजा सपनेमें राज छोड़कर कैदखानेमें पड़ जाता है और व्यर्थ ही दुर्मी होता है । अर्थात् सपनेमें भी राजा राजा ही है, परन्तु मोह-मग्न अपने संकरूपसे राज्यसे धञ्चित होकर कारागारमें पड़ जाता है और ज्यत्नक जागता नहीं, तबतक व्यर्थ ही दुःख भोगता है । इसी प्रकार जीव भी मभिदानन्दस्वरूपको भ्रममग्न भूलकर जगन्में अपनेको मायासे बँधा मान लेता है और दुर्मी होता है ।

[ ३ ]

तूने स्वयं ही ( अज्ञानसे ) अपनी कर्मरूपी रस्सी मजबूत कर ली, और अपने ही हाथोंसे उनमें ( अविद्याकी ) पकड़ी गॉठ भी लगा दी । इसीसे हे अभाग ! तू परतन्त्र पड़ा हुआ है । और इसीका फल आगे गर्भमें रहनेका दुःख होगा । संसारमें जो अनेक क्लेशोंके समूह हैं उन्हें यही जानता है जो माताके पेटमें पड़ा है । गर्भमें सिर तो नीचे और पैर ऊपर रहते हैं । इस भयानक संकटके समय कोई धात भी नहीं पूछता । रक्त, मल, मूत्र,

धिष्ठा, कीड़े और कीचटों में घिरा हुआ ( गर्भमें ) सांता है। कोमल शरीरमें जय यड़ी भारी पेंदना होती है, तब सिर धुन-धुनकर रोता है।

[ ४ ]

तू यहाँ अपने कर्म-जालमें फँसा हुआ ( दुःख पाता है, परन्तु ) श्री हरिने यहाँ भी तेरा साथ नहीं छोड़ा। ( गर्भमें ) प्रभुने नाना प्रकारसे तेरा पालन-पोषण किया, और फिर परम कृपालु स्वामीने तुझे यहाँ ज्ञान भी दिया। जय तुझे हरिने ज्ञान-विवेक दिया, तब तुझे अपने अनेक जन्मोंमें यातों याद आयीं और तू कहने लगा—'जिसकी यह त्रिगुणमयी माया अति दुस्तर है, मैं उसी परमेश्वरकी शरण हूँ। जिस मायाने जीव-समूहको अपने वशमें करके उनके जीवनको नीरस अर्थात् आनन्दरहित कर दिया है और जो प्रतिदिन अत्यन्त नयी बनी रहती है, ( ऐसी मायारूपी ) जिस लक्ष्मीके पतिने गर्भकालकी इस विपत्तिमें मुझे ऐसी विवेक-बुद्धि दी है यहाँ मेरी इससे तुरन्त रक्षा करें।'

[ ५ ]

फिर तू ( पूर्व-जन्मोंमें भजन न करनेके लिये ) अपने मनमें बहुत भाँतिसे गलानि मानकर कहने लगा कि अबकी बार ( संसारमें ) जन्म लेकर तो चक्रधारी भगवान्का भजन ही करूँगा। ऐसा विचार कर ज्यों ही पुत्र हुआ कि प्रसवकालकी पयनने तुझ अग्राधीको प्रेरित किया, उस अति प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रेरित होकर तूने ( जन्मके समय ) नाना प्रकारके कष्टोंसे सहा। उस समय उस भयानक कष्टकी आगमें तेरा ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अनुभव सभी कुछ जल गया, अर्थात् मारे कष्टके तू सब भूल गया। अत्यन्त कष्टके कारण तू व्याकुल हो गया और थोड़ा बल होनेसे एक क्षण भी तुझसे बोला नहीं गया। उस समयके तेरे दारुण दुःखको किसीने ब जाना, उलटे सब लोग ( पुत्र होनेके आनन्दमें ) हर्षित होकर गाने लगे।

[ ६ ]

फिर बचपनमें तूने जितने महान् कष्ट पाये, वे इतने अधिक हैं कि उनकी गणना करना असम्भव है। भूख, रोग और अनेक बड़ी-बड़ी बाधाओंने तुझे घेर लिया, पर तेरी माँको तेरे इन सब कष्टोंका यथार्थ पता नहीं लगा। माँ यह नहीं जानती कि यथा किसलिये रो रहा है, इससे वह बार-बार ऐसे ही उपाय करती है, जिससे तेरी छाती और भी अधिक जले। जैसे अजीर्णके कारण पेट दुखनेसे यथा रोता है, पर माता उसे भूखा समझकर और खिलती है, जिससे उसकी बीमारी बढ़ जाती है। शिशु, कुमार और किशोरावस्थामें तू जो अपार पाप करता है, उसका वर्णन कौन करे ? अरे निर्दय ! महादुष्ट ! तुझे छोड़कर और कौन ऐसा है जो इन्हें सह सकेगा ?

[ ७ ]

जवानीमें तू युवती स्त्रीकी आसक्तिमें फँसा, नव तो महान् अज्ञान और मदमें मतवाला हो गया। उस जवानीके नशेमें तूने धर्मकी मर्यादा छोड़ दी और पहले ( गर्भमें और लड़कपनमें ) जो कष्ट हुए थे, उन सबको मुला दिया ( और पाप करने लगा )। पिछले कष्टसमूहोंको भूल गया। ( अब पाप करनेसे ) आगे तुझे जो संकट प्राप्त होंगे, अरे, उनपर विचार करके तेरी छाती, नहीं फट जाती ? जिससे फिर गर्भके गड्ढेमें गिरना पड़े, संसार-धक्रमें आना पड़े, तूने बारम्बार वैसे ही कर्म किये। जिस शरीरका परिणाम ( मरनेपर ) कीड़ा, राख या विष्टा होगा, ( कबमें गाड़नेसे सड़कर कीड़ोंके रूपमें बदल जायगा, जलानेपर राख हो जायगी या जीव-जन्तु खा डालेंगे तो उनकी विष्टा बन जायगा ) उसीके लिये तू सारे संसारका शत्रु बन बैठा। परायी स्त्री और

विष्टा, कीड़े और कीचसे धिरा हुआ ( गर्भमें ) सांता है । कोमल शरीर जब बड़ी भारी वेदना होती है, तब सिर धुन-धुनकर रोता है ।

[ ४ ]

तू यहाँ अपने कर्म-जालमें फँसा हुआ ( दुःख पाता है, परन्तु ) हरिने यहाँ भी तेरा साथ नहीं छोड़ा । ( गर्भमें ) प्रभुने नाना प्रकार तेरा पालन-पोषण किया, और फिर परम कृपालु स्वामीने तुझे वहीं भी भाँति दिया । जब तुझे हरिने ज्ञान-विवेक दिया, तब तुझे अपने अनेक जन्मों के घातें याद आयीं और तू कहने लगा—‘जिसकी यह त्रिगुणमयी माया अतुल्य है, मैं उसी परमेश्वरकी शरण हूँ । जिस मायाने जीव-समूहको अज्ञान-वशमें करके उनके जीवनको नीरस अर्थात् आनन्दरहित कर दिया है और जो प्रतिदिन अत्यन्त नयीं घनी रहती है, ( ऐसी मायारूपी ) जिसकी लक्ष्मीके पतिने गर्भकालकी इस विपत्तिमें मुझे ऐसी विवेक-बुद्धि दी है, जो यहाँ मेरी इससे तुरन्त रक्षा करे ।’

[ ५ ]

फिर तू ( पूर्व-जन्मोंमें भजन न करनेके लिये ) अपने मनमें बहुत ही भाँतिसे ग्लानि मानकर कहने लगा कि अबकी बार ( संसारमें ) जन्म लेना तो चक्रधारी भगवान्का भजन ही करूँगा । ऐसा विचार कर ज्यों ही तू जन्म लेना हुआ कि प्रसवकालकी पचनने तुझ अशरीरकी प्रेरित किया, उस अज्ञान-प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रेरित होकर तूने ( जन्मके समय ) अपना अज्ञान सदा । उस समय उस भयानक कष्टकी आगमें तेरा ज्ञान, ध्यान, वैराग्य अनुभव सभी कुछ जल गया, अर्थात् मारे कष्टके तू सत्य भूल गया । कष्टके कारण तू व्याकुल हो गया और थोड़ा बल होनेसे एक सत्य को याद आया । तू बोला नहीं गया । उस समयके तेरे दारुण दुःखको किसीने नहीं उलटे सत्य लोग ( पुत्र होनेके आनन्दमें ) हर्षित होकर गाने लगे ।



पराये धन (पर प्रीति) और दूसरोंसे द्रोह, यही संसारमें नया पड़ता गया।

[ ८ ]

देखते-ही-देखते बुढ़ापा का पहुँचा, जिसे तूने स्वप्नमें भी नहीं बुढ़ा था; उस बुढ़ापेका हाल बड़ा नहीं जाता। उसे अब मरने शरीरमें प्रवेश से, शरीर ऊर्ध्व हो रहा है, बुढ़ापेके कारण रोग और गूल सत हैं, तिर धिल रहा है, हस्त्रिबन्धी शक्ति घली गयी है। तेरा जो बिलोके अन्धकार नहीं लपका, अरको रसावाली करनेपाला कुत्ता भी निराश्रुत करता है अन्धकार कुत्तेसे भी बड़कर तेरा निराश्रुत होने से कुत्तेके द्वारा रोड़ी लँकते हैं, पर जसे सुनकर तो दे देते हैं, तैरी उरसे ही अन्धकार क्यों अन्धकार क्यों तू सज्जे-सज्जे अन्धकार नहीं पाता। बुढ़ापेके अन्धकार अन्धकार भी कुत्ते वैलक्य क्यों होता ? इस दशामें भी अन्धकारके अन्धकारके बुढ़ापा ही जाता है।

[ ९ ]

ये जो तेरे एक ऊपरके कुछ पदोंसे कर गिलावे हैं, वेने में कहे-कहे अन्धकारके अन्धकार तो और बड़ा साबता है ! सदा धारण (निष्काम अन्धकार, अन्धकार अन्धकार) में घूमना पड़ता है। अब भी तू मरने-मरने अन्धकार ! अब भी विचार कर अन्धकारको छोड़ दे, और अन्धकार अन्धकारके अन्धकार धीरान्तर्गतका अन्धकार कर । ये दुष्कर अन्धकारके अन्धकार हैं, तू उन अन्धकारके धारण करने-कहे देवदत्त अन्धकारके अन्धकार ही हेतु दया करने-कहे हैं, बड़े ही उत्तर हैं अन्धकारके अन्धकार हैं । ये अन्धकारके, अन्धकारके, अन्धकारके और अन्धकारके कारण हैं ।

[ १० ]

धीरघुनाथजीकी भक्ति सुलभ और सुगदायिनी है। यह संसारके तीनों ताप, शोक और भयको हरनेवाली है। किन्तु यह भक्ति मत्संगके बिना प्राप्त नहीं होती; और सन्त तभी मिलते हैं जब रघुनाथजी कृपा करते हैं। जब दीनदयालु रघुनाथजी कृपा करते हैं तब सन्त-समागम होता है। जिन सन्तोंके दर्शन, स्पर्श और सत्संगसे पाप-समूह समूल नष्ट हो जाते हैं, जिनके मिलनेसे सुख-दुःखमें समबुद्धि हो जाती है, अमानिता आदि अनेक सद्गुण प्रकट हो जाते हैं तथा भलीभाँति परमात्माका बोध हो जानेके कारण मद, मोह, लोभ, शोक, क्रोध आदि सहज ही दूर हो जाते हैं।

[ ११ ]

ऐसे साधुओंका संघन करनेसे द्वैतका भय भाग जाता है, ( सर्वत्र परमात्म-बुद्धि हो जानेसे यह निर्मय हो जाता है ) धीरघुनाथजीके घरणोंमें ध्यान लग जाता है। शरीरसे उपद्रव हुए सब विकार छूट जाते हैं, भीर तब अपने स्वरूपमें—भात्मस्वरूपमें प्रेम होता है। जिसका अपने स्वरूपमें अनुराग हो जाता है, अर्थात् जो भात्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है उसकी दशा संसारमें कुछ विलक्षण ही हो जाती है। सन्नोय, समता, शान्ति और मन-इन्द्रियोंका निग्रह उसके स्वाभाविक हो जाते हैं, फिर वह अपनेकी देहधारी नहीं मानता अर्थात् उसके देहात्म-बोध बल्ला जाता है। यह विमुक्त, संसार-रोग-रहित, और एकरस ( परमात्म-स्वरूपमें निरव्य भिन्न ) हो जाता है। फिर उसे दर्प-शोक नहीं व्यापता। जिसकी ऐसी निरव्य भिन्न हो गयी वह तीनों शोचोंको पवित्र करनेवाला होता है।



पराये धन ( पर प्रीति ) और दूसरोंसे द्रोह, यही संसारमें निरनया बढ़ता गया ।

[ ८ ]

देखते-हों-देखते बुढ़ापा आ पहुँचा, जिसे तूने स्वप्नमें भी नहीं बुलाया था; उस बुढ़ापेका हाल कहा नहीं जाता । उसे अब अपने शरीरमें प्रत्यक्ष देख ले, शरीर जर्जरहो गया है, बुढ़ापेके कारण रोग और शूल सता रहे हैं, सिर हिल रहा है, इन्द्रियोंकी शक्ति चली गयी है । तेरा फोला किसीको अच्छा नहीं लगता, घरकी रखवाली करनेवाला कुत्ता भी तेरा निरादर करता है अथवा कुत्तेसे भी बढ़कर तेरा निरादर होने लगा । कुत्तेको दूरसे रोटी फेंकते हैं, पर उसे समयपर तो दे देते हैं, तेरी उतनी भी सँमाल नहीं; अधिक क्या, तू माने-पीनेतकको नहीं पाता । बुढ़ापेमें ऐसी दुर्दशा होनेपर भी तुझे घैराग्य नहीं होता ? इस दशामें भी तू तृष्णाकी तरंगोंको बढ़ाता ही जाता है ।

[ ९ ]

ये तो तेरे एक जन्मके कुछ थोड़े-से कष्ट गिनाये हैं, ऐसे भतेक थड़े-थड़े जन्मोंकी सबकी कथा तो कौन कह सकता है ? सदा चार नातो ( भिण्डज, अण्डज, स्येदज, उद्भिज्ज ) में घूमना पड़ता है । अब भी तू मत्तमें विचार नहीं करता ! अब भी विचार कर भ्रान्तको छोड़ दे, और भक्तोंकी मुष्ण देनेवाले मगवान् श्रीरामजीका भजन कर । ये तुस्तर भय-सागरके लिये जहाजरूप हैं, तू उन गुदरांतयक धारण करनेवाले वैद्यपति मगवान्का भजन कर । ये बिना ही हेतु दया करनेवाले हैं, थड़े ही उदार हैं और इस अपार मायाके तारनेवाले हैं । वे मोक्षके, संसारके, लक्ष्मीके और इन प्राणोंके नाथ हैं, एवं मुक्तिके कारण हैं ।

[ १० ]

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति सुलभ और सुखदायिनी है। वह संसारके तीनों ताप, शोक और भयको हरनेवाली है। किन्तु वह भक्ति सत्संगके विना प्राप्त नहीं होती; और सन्त तमी मिलते हैं जय रघुनाथजी कृपा करते हैं। जय दीनदयालु रघुनाथजी कृपा करते हैं तब सन्त-समागम होता है। जिन सन्तोंके दर्शन, स्पर्श और सत्संगसे पाप-समूह समूल नष्ट हो जाते हैं, जिनके मिलनेसे सुख-दुःखमें समबुद्धि हो जाती है, अमानिता आदि अनेक सद्गुण प्रकट हो जाते हैं तथा भलीभाँति परमात्माका बोध हो जानेके कारण भद्र, मोह, लोभ, शोक, क्रोध आदि सहज ही दूर हो जाते हैं।

[ ११ ]

ऐसे साधुओंका सेवन करनेसे द्वैतका भय भाग जाता है, ( सर्वत्र परमात्म-बुद्धि हो जानेसे वह निर्भय हो जाता है ) श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें ध्यान लग जाता है। शरीरसे उत्पन्न हुए सब विकार छूट जाते हैं, और तब अपने स्वरूपमें—आत्मस्वरूपमें प्रेम होता है। जिसका अपने स्वरूपमें अनुराग हो जाता है, अर्थात् जो आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है उसकी दशा संसारमें कुछ विलक्षण ही होती है। सन्तोष, समता, शान्ति और मन-इन्द्रियोंका निग्रह उसके स्वाभाविक हो जाते हैं, फिर वह अपनेको देहधारी नहीं मानता अर्थात् उसका देहात्म-बोध चला जाता है। वह विशुद्ध, संसार-रोग-रहित, और एकरस ( परमात्म-स्वरूपमें नित्य स्थित ) हो जाता है। फिर उसे हर्ष-शोक नहीं ध्यापता। जिसकी ऐसी नित्य स्थिति हो गयी वह तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला होता है।

[ १२ ]

जो मनुष्य इस मार्ग पर मन लगाकर चलता है, भगवान् उसमें सहायता क्यों न करेंगे ? यह जो मार्ग घेद और सन्तोंने दिखा दिया है, उसपर चलनेसे सभी प्रकारके सुखोंकी प्राप्तिहोगी। इसमार्गपर चलनेवाला साधक सांसारिक ( विषयोंसे मुक्तकी ) आशाको त्यागकर भगवान्कपासे नित्य (अद्वैत ब्रह्मके) मुक्तकी प्राप्ति करना है। यों तो करोड़ों धार्मिक हैं, उन्हें कौन कहना फिरे ? परन्तु जहाँतक द्वैत दिखलायी भी देता है वहाँतक सपनेमें भी सच्चा सुख नहीं मिल सकता, सच्चा सुख अद्वैत ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होनेमें ही है, इसीको संसार-सागरसे पारहोना कहते हैं; परन्तु ब्राह्मण, देवता, गुरु, हरि और सन्तोंकी (कृपा) बिना कोई संसार-सागरका पार नहीं पा सकता, यह समझकर तुलसीदास भी (संसारके) भयको दूर करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्के गुण गाता है।

राग विलावल

[ १३७ ] ✓

जोपै कृपा रघुपति कृपालुकी, वैर औरके कहा सैर ।

होइ न बाँको धार भगतको, जो कोउ कोटि उपाय करै ॥१॥

१३ तके नीचु जो मीचु साधुकी, सो पामर, तेहि मीचु मरै ।

वेद-विदित प्रह्लाद-कथा सुनि, को न भंगति-पथ पाउँ धरै ? ॥२॥

गज उधारि हरि थप्यो विभीषन, ध्रुव अविचल कबहुँ न टरै ।

अंबरीष की साप सुरति करि, अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ॥३॥

मुद्र

सों घों कहा जु न कियो सुजोधन, अबुघु आपने मान जैर ।  
 प्रभु-प्रसाद सौभाग्य विजय-जस, पांडवनै\* बरिआइ बरै ॥४॥  
 जोइ जोइ कूप खनैगो परकहँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै ।  
 सपनेहुँ सुख न संतद्रोहीकहँ, सुरतरु सोउ विप-करनि फरै ॥५॥  
 हँ काके द्वै सीस ईसके जो हठि जनकी सीवँ चरै ।  
 तुलसिदास रघुवीर-बाहुबल सदा अमय, काहू न डरै ॥६॥

भावार्थ—यदि कृपालु रघुनाथजीकी कृपा है, तो दूसरोंके घैर करने-से उनका क्या काम निकल सकता है? भक्तका बाल भी योंका नहीं होना, चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे ॥१॥ जो नीच सन्तकी मान विचारता है, यह पामर स्वयं उसी मौतसे मरता है। प्रह्लादकी कथा घेदोंमें प्रसिद्ध है, उसे सुनकर ऐसा कौन (अभागा) होगा, जो भक्ति-मार्गपर पैर न रखेगा, यार्ना भक्ति न करेगा? ॥२॥ ध्रीहरिने गजराजका उद्धार किया, विभीषणको राज्य-सिंहासनपर बैठाया, ध्रुवको ऐसा अटल पद दे दिया जो कभी हटना ही नहीं और अम्बरीषकी तो घात ही निराली है, महा-मुनि (दुर्वासा) ने जो उनको शाप दिया था, उसका परिणाम याद करके भय भी घे ग्लानिसे गले जाते हैं, लाजसे मरे जाते हैं ॥३॥ दुर्वाधनने भपनी जानमें, ऐसी कौन-सी बुराई है, जो पाण्डवोंके साथ नहीं की। मूर्ख अपने ही घमण्डमें जलता रहा। पर भगवान्की कृपासे सौभाग्य, विजय और घशने पाण्डवोंकी ही हठपूर्वक अपनाया ॥४॥ जो दूसरेके

● 'पाण्डवने' पाठ ही शुद्ध है। 'पांडुवने' पाठ कर देनेवालोंने भूठ की है। भवभीमें पाण्डवका बहुवचन कर्मकारकका शुद्ध रूप है 'पाण्डवनि' वा 'पाण्डवने'। 'पाण्डवि' भी लापरवहे बनता है, परन्तु यहाँ एक मात्रा उससे अधिक चाहिये थी।

लिये कुर्यां गोवेगा, यह दुष्ट अयं उमीमें गिरेगा। सन्तोंके साथ घेर करके  
पालेको अन्नमें भी सुग्य नहीं हो सकता। उसके लिये तो कल्प-वृक्ष के  
जहरीले फल ही फलेगा ॥५॥ किसके दो सिर हैं जो भगवान्के मन्द  
सीमा लाँघेगा ? हे तुलसीदास ! जिसके धीरघुनायजीका बाहु-व  
सहायक है, वह सदा निर्भय है, किसीसे भी नहीं डर सकता ॥६॥

[ १३८ ]

कचहुँ सो कर-सरोज रघुनायक ! धरिहाँ नाथ सीस मेरे ।  
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिषस नाम टेरे ॥१॥  
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु मंजि जनक-संसय भेट्यो ।  
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीति केवट भेट्यो ॥२॥  
जेहि कर-कमल कृपालु गीषकहँ, पिंड देइ निजधाम दियो ।  
जेहि कर बालि विदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुप्रीव कियो ॥३॥  
आयो सरन समीत विभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हो ।  
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हो ॥४॥  
सीतल सुखद छाहँ जेहि करकी, भेटति पाप, ताप, माया ।  
निसि-चासर तेहि कर-सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! हे स्वामी ! क्या आप कभी अपने उस कर-  
कमलको मेरे माथेपर रखेंगे, जिससे आपने, परतन्त्रतावश एक  
बार आपका नाम लेकर पुकार करनेवाले आर्त्त भक्तोंको अभय कर दिया  
था ॥१॥ जिस कर-कमलसे महादेयजीका कठोर धनुष तोड़कर आपने  
महाराज जनकका सन्देह दूर किया था और जिस कर-कमलसे गुह निपात  
को उठाकर भार्गवके समान बड़े ही प्रेमसे हृदयसे लगा लिया था ॥२॥ हे

गलु ! जिस कर-कमलसे आपने ( जटायु ) गीधको ( पिताके समान ) गृह-दान देकर अपना परम धाम दिया था, और जिस हाथसे, अपने सके लिये धालिको मारकर, सुग्रीवको बन्दरोंके कुलका राजा बनाया था ॥ ३ ॥ जिस कर-कमलसे आपने अमयीत शरणागत विभीषणका ज्यामिपेक किया था और जिस हाथसे धनुष-बाण चढ़ा राक्षसोंका नाश कर देवताओंको अमय-दान दिया था ॥४॥ तथा जिस कर-कमल-। शीतल और सुखदायक छाया पाप, सन्ताप और मायाका नाश करती है, हे प्रभु ! आपके उसी कर-कमलकी छाया यह तुलसीदास त-दिन चाहा करता है ॥ ५ ॥

[ १३९ ]

दीनदयालु, दुरित-दारिद्र-दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है ।  
 देव दुवार पुकारत आरत, सबकी सब सुख हानि भई है ॥१॥  
 प्रभुके बचन, वेद-बुध-सम्मत, मम मूरति महिदेवभई है ।  
 तिनकी मति रिस-राग-भोह-मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥  
 राज-समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है ।  
 नीति, प्रतीति, प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेर हई है ॥३॥  
 आम्रम-चरन-धरम-विरहित जग, लोक-वेद-भरजाद भई है ।  
 प्रजा पतित, पाखंड-पापरत, अपने अपने रंग रई है ॥४॥  
 सांति, सत्य, सुभ रीति गई घटि, बड़ी कुरीति, कपट-कलई है ।  
 सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥५॥

## बिनय-पत्रिका

परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल, सफल नहि सिद्धि स  
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर विषस विकल जामति न क  
कलि-करनी चरनिये कहाँ लौं, करत फिरत यिनु टहल ट  
तापर दाँत पीसि फर मींजत, को जानँ चित कहा ठई  
त्योँ त्योँ नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्योँ ज्योँ सीलवस ढील दई  
सरूप बरजि तरजियेँ तरजनी, कुम्हिल्लहँ कुम्हड़ेकी जई  
दीजँ दादि देखि ना तौ बलि, मही मोद-मंगल रितई  
भरे भाग अनुराग लोग कहँ, राम कृपा-चितवनि चितई  
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुना-चारि भूमि मिजई  
राम-राज भयो काज, सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है  
समरथ बड़ो, सुजान सुसाहब, सुकृत-सैन हारत जितई है  
सुजन सुभाव सराहत सादर, अनायास साँसति चितई है  
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि विरद सदई है  
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर, अमयबाँह केहि केहि न दर्दई है ।

भावार्थ—हे दीनदयालु ! पाप, दारिद्र्य, दुःख और तान प्र  
दुःसह वैचिक, वैदिक, भौतिक तापोंसे दुनियाँ जली जा रही है। हे भग  
यह आर्त्त आपके द्वारपर पुकार रहा है, क्योंकि सभीके सय प्र  
सुख जाते रहे हैं ॥१॥ वेद और विद्वानोंको सम्मति है तथा प्रभुके धाम  
वचन हैं कि ब्राह्मण साक्षान् मेरा ही स्वरूप हैं; पर आज उन ब्राह्मण  
बुद्धिको मोघ, आत्मिक, मोह, मद, लोभ और लालचने निगल लिया

र्ति वे अपने स्वाभाविक शम-दमादि गुणोंको छोड़कर अज्ञानी, कामी,  
 वी, घमण्डी और लोभी हो गये हैं ॥२॥ इसी तरह राजसमाज  
 (त्रिय-जाति) करोड़ों कुचालोंसे भर गया है, वे (मनमाने रूपमें लूट-  
 ण, अन्याय, अत्याचार, ध्वमिचार, अनाचाररूप) नित्य नयी कुचालें चल  
 हैं और हेतुवाद(नास्तिकता)ने राजनीति,(ईश्वर और शास्त्रपर यथार्थ)  
 व्यास,प्रेम,धर्मकी और कुलकी मर्यादाका ढूँढ़-ढूँढ़कर नाश कर दिया  
 ॥३॥ संसार चर्ष और आश्रम-धर्मसे भलीभाँति विहीन हो गया है।  
 क और वेद दोनोंकी मर्यादा चली गयी। न कोई लोकाचार मानता है,  
 र न शास्त्रकी आज्ञा ही सुनता है। प्रजा अथनत होकर पाखण्ड और पाप-  
 रत हो रही है। सभी अपने-अपने रंगमें रँग रहे हैं, यथेच्छाचारी हो गये  
 ॥४॥ शान्ति,मृत्यु और सुप्रथाएँ घट गयी और कुप्रथाएँ बढ़ गयी हैं तथा  
 सभी आचरणोंपर) कपट (दम्भ)की कलाई हो गयी एवं दुराचार तथा  
 ल-कपटकी बढ़ती हो रही है। साधुपुरुष कष्ट पाते हैं, साधुता शोकप्रस्त  
 , दुष्ट मौज कर रहे हैं और दुष्टता आनन्द मना रही है अर्थात् धगुला-  
 क्ति बढ़ गयी है ॥५॥ परमार्थ स्वार्थमें परिणत हो गया अर्थात् ज्ञान,  
 क्ति, परोपकार और धर्मके नामपर लोग धन बटोरने लगे हैं। (विधि-  
 र्थकन करनेसे) साधन निष्फल होने लगे हैं। और सिद्धियाँ प्राप्त होनी  
 न्द हो गयी हैं, कामधेनुरूपी पृथ्वी कलियुगरूपी गोमर (कत्तार)के हाथमें  
 गड़कर पेसी व्याकुल हो गयी है कि उसमें जो बोया जाता है, धष्ट जमता  
 दी नदी (जहाँ-तहाँ दुर्मिश्र पड़ रहे हैं) ॥६॥ कलियुगकी करनी कहाँ-  
 तक पवानी जाय ? यह बिना कामका काम करता फिरता है। इनने-  
 पर भी दान पीस-पीसकर हाथ मल रहा है। न जाने इसके मनमें अर्भी



क्या-क्या है ॥७॥ हे प्रभु ! ज्यों-ज्यों आप शीलवश इसे ढील दे रहे हैं, दामा करतं जानें हैं, त्यों-ही-त्यों यह नीच सिरपर चढ़ता जाता है जरा क्रोध करके इसे डाँट दीजिये । आपकी तरजनी देखते ही सब कुम्हड़ेकी यनियाकी तरह मुरझा जायगा ॥८॥ आपकी यन्त्रिया लेता है देगकर न्याय कीजिये, नहीं तो अब पृथ्वी आनन्द-मंगलसे शून्य हो जायगी । ऐसा कीजिये, जिसमें लोग बड़भागी होकर प्रेमपूर्वक यह कहें कि श्रीरामजीने हमें कृपादृष्टिसे देखा है (बड़भागी यहीं है जिम्का राम के चरणोंमें अनुराग है । यह अनुराग श्रीरामकृपासे ही प्राप्त होता है) ॥९॥ मेरी यह यिनती सुनकर श्रीरामजीने आनन्दसे मेरी ओर देखा और मुसकराकर करुणाकी ऐसी वृष्टि की जिससे सारी भूमि तर गयी । (हृदयका सारा स्थान शान्तिसे पूर्ण हो गया) राम-राज्य हों सब काम सफल हो गये । शुभ शकुन होने लगे, क्योंकि महारामचन्द्रजी जगद्विजयी हैं (हृदयमें उनके विराजित होते ही कलियु की सारी सेना भाग गयी) ॥१०॥ सर्वसमर्थ ज्ञानस्वरूप दयालु स्वामी पुण्य-रूपी सेनाको हारनेसे जिता लिया, सद्गुण स्वभावसे ही आपूर्वक उनकी सराहना करते हैं, कि नाथने सहज ही सारी यातना दूर कर दी ॥११॥ (परन्तु) आप ऐसा क्यों न करते ? आपका तो सारा से यह घाना चला आता है, कि उजड़े हुएको घसाना और गयी हुई वस्तुको फिरसे दिला देना (जैसे विभीषण और सुग्रीवको राज्यपविठा देना, जैसे रावणके भयसे डरे हुए देवताओंको फिरसे स्वर्गमें बसा देना) । हे तुलसी ! दुखियोंके दुःख दूर कर भगवान्ने किस किसको भ्रमय याँह नहीं दी ? ॥१२॥

[ १४० ]

नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद-विमुख अमागी ।  
 सिवासर रुचिपाप असुचिमन, खलमति-मलिन, निगमपथ-त्यागी ॥१॥  
 हैं सतसंग, मजन नहीं हरिको, सवन न राम-कथा-अनुरागी ।

कर-स्नान-सृगाल-सारस जन, जनमत जगत जनान-दुख लागा ॥२॥

भावार्थ—वे अमागे मनुष्य संसारमें नरकरूप होकर जी रहे हैं, जो  
 गम-भरण-रूप भवका भङ्गन करनेवाले श्रीभगवान् के चरणोंसे विमुख हैं ।  
 नकी रुचि रात-दिन पापोंमें ही लगी रहती है । उनका मन अशुद्ध रहता  
 । उन दुष्टोंकी बुद्धि मलिन रहती है, और वे वेदीक्त मार्गको छोड़े हुए  
 ॥१॥ न तो वे सन्तोंका संग ही करते हैं, न भगवद्भजन करते हैं और न  
 नके कानोंको धीरामकी कथा प्यारी लगती है । वे तो वस, सदा-सर्वदा  
 श्री-पुत्र-धन और मकान आदिकी ममतारूपी रात्रिमें ही अचेत सोते  
 होते हैं । उनकी बुद्धि (इस 'मेरे मेरे' की निद्रासे) कमी जागती ही  
 हीं ॥२॥ हे तुलसीदास ! जो दुष्ट धीहरि-नाम-रूपी अमृतको छोड़कर  
 तटपूर्वक विषयरूपी जहर मौंग-मौंगकर ( धन-पुत्र आदिकी कामना कर-  
 णे) पीते हैं, वे मनुष्य सूअर, कुत्ते और गीदड़के समान जगत्में केवल  
 अपनी मौँको दुःख देनेके लिये ही जन्म लेते हैं ॥३॥

[ १४१ ]

रामचंद्र ! रघुनायक ! तुमसों हीं चिनती केहि मौँति करौं ।  
 अघ अनेक अबलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि दरौं ॥१॥

पर-दुख दुखी सुखी पर-सुख ते, संत-सील नहिं हृदय धरौं ।  
 देखि आनकी विपति परम सुख, सुनि संपति विनु आगि जरौं ॥२॥  
 भगति-विराग-ग्यान साधन कहि बहु विधि डहकत लोग फिरौं ।  
 सिव-सरयस सुखधाम नाम तव, बैचि नरकप्रद उंदर मरौं ॥३॥  
 जानत हौं निज पाप जलधि जिय, जल-सीकर सम सुनत लरौं ।  
 रज-सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रजतें निदरौं ॥४॥  
 नाना बेप बनाव दिवस-निसि, पर-वित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।  
 एका पल न कचहुँ अलोल चित हित दै पद-सरोज सुभिरौं ॥५॥  
 जौ आचरन विचारहु मेरो, कल्प कोटि लगि औटि मरौं ।  
 तुलसिदास प्रभु कृपा-बिलोकनि, गोपद-ज्यो भवसिंधु तरौं ॥६॥

भावार्थ—हे रघुकुलश्रेष्ठ रामचन्द्रजी ! मैं किस प्रकार तुमसे वितन करूँ ? अपने अनेक अधों (पापों) की ओर देखकर और तुम्हारा अनध (पापरहित) नाम विचारकर डर रहा हूँ ॥१॥ दूसरेके दुःखसे दुखी तथा दूसरेके सुखसे सुखी होना सन्तोंका शील-स्वभाव है, उसे तो मैं कभी हृदयमें धारण ही नहीं करता । प्रत्युत दूसरोंकी विपत्ति देखकर परम सुखी होता हूँ । और दूसरोंकी सम्पत्ति सुनकर तो बिना ही आगके जला करता हूँ ॥२॥ भक्ति, वैराग्य, ज्ञान आदिके साधनोंका उपदेश देता हुआ मैं लोगोंको भौंति-भौंतिसे ठगता फिरता हूँ और शिष्यके सर्वस्व तथा आनन्दके धाम तुम्हारे राम-नामको बेच-बेचकर नरकमें ले जानेवाले (पापी) पेटको भरता हूँ ॥३॥ मनमें जानता हूँ कि मेरे पाप समुद्रके समान अपार

है, परन्तु जब दूसरे किसीके मुग्धमे भवने पापोंके लिये जब यह सुनता है, कि मेरेमे पानीकी बूँदके बराबर भी पाप है, तब उसमे लड़ने लगता है। तब यह है कि महापापी होनेपर भी लोगोंके मुग्धमे परम पुण्यात्मा ही कहलाना चाहता है परन्तु दूसरोंके धूलके कणके समान मामूली लोगोंको भी सुमेरुपर्यंतके समान बढ़ाकर बतलाता है। और उनके स्वर्गके समान (महान्) गुणोंको धूलके समान तुच्छ बतलाकर उनका निरस्कार करता है (मरी ऐसी करनी है) ॥४॥ भौति-भौतिके भेष बना-बनाकर दिन-रात जिस किसी भी उपायसे दूसरोंका धन हरण करता है। कभी एक पल भी गिरविचिंत होकर प्रेमसे तुम्हारे चरणकमलोंका स्मरण नहीं करता ॥५॥ यदि तुम मेरे आचरणोंपर विचार करने लगेगे तब तो मुझे करोड़ों कल्पनक संसाररुपी कढ़ावमें आँट-आँटकर जल मरना पड़ेगा, जन्म-मरणसे कभी नहीं छूटूँगा। पर यदि तुम एक बार कृपादृष्टि करोगे, तो हे प्रभो ! मैं तुलसीदास उसीके प्रभावसे इस संसार-सागर-को गावके गुरके समान सहज ही पार कर जाऊँगा ॥६॥

[ १४२ ]

सङ्घत हैं अति राम कृपानिधि ! क्यों करि चिनय सुनावीं ।  
 मकल धरम विपरीत करत, केहि भौति नाथ ! मन भावै ॥१॥  
 जानत हैं हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावै ।  
 अंजन-कैस-गिरवा जुवती, तहँ लोचन-सलम पठावै ॥२॥  
 श्रवनि को फल कथा तुम्हारी, यह समुह्राँ, समुह्राँ ।  
 तिन्ह श्रवनि परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावै ॥३॥

जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, विनु प्रयास सुख पावौं ।  
 तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यो रटि-रटि जनम नसावौं ॥६॥  
 'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं ।  
 हां निज उर अभिमान-मोह-भद खल-मंडली बसावौं ॥७॥  
 जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन, सो विनु काज गँवावौं ।  
 हाटक-घट भरि घरयो सुधा गृह, तजि नम कूप खनावौं ॥८॥  
 मन-क्रम-बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौं ।  
 पर-प्रेरित इरपा बस कबहुँक किय कछु सुम, सो जनावौं ॥९॥  
 विप्र-द्रोह जनु बाँट परयो, हठि सबसों बैर बढ़ावौं ।  
 ताहपर निज मति-विलास सब संतन माँझ गनावौं ॥१०॥  
 निगम सेस सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौं ।  
 ताँ न सिराहिं कल्प सत लागि प्रभु, कहा एक मुख गावौं ॥११॥  
 जो करनी आपनी विचारों, ताँ कि सरन हाँ आवौं ।  
 मृदुल सुभाउ सील रघुपतिको, सो बल मनहिं दिखावौं ॥१२॥  
 तुलसिदास प्रभु सो गुन नाहिं, जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिखावौं ।  
 नाथ-कृपा भवसिंधु धेनुपद सम जो जानि सिरावौं ॥१३॥

भावार्थ—हे कृपानिधि रामजी ! मुझे बड़ा संकोच हो रहा है, मैं  
 प्रकार आपको अपनी विनती सुनाऊँ ? जो कुछ भी मैं करता हूँ,  
 फिर नाथ ! आपको मैं क्यों अच्छा लगते

ज्ञा ? ॥१॥ यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि सम्पूर्ण जड़-चेतन भगवान् ध्रीहरि-  
 ता ही रूप है, पर मैं उस हरिस्वरूपको भूलकर भी नहीं देखता । मैं तो  
 अपने नेत्र-रूपी पतंगोंको कामिनीरूपी अग्निकी शिवामें (जलनेके लिये)  
 भेजता हूँ ॥२॥ मैं यह समझता हूँ और दूसरोंको भी समझाता हूँ कि  
 हानोंकी सार्थकता तो आपकी कथा सुननेमें ही है; परन्तु मैं तो उन  
 हानोंसे सदा दूसरोंके दोष सुन-सुनकर, उन्हें हृदयमें भरता और  
 सन्तप्त होता हूँ ॥३॥ जिस जीभसे आपके गुणानुवाद गाकर  
 विना ही परिश्रमके परमसुख प्राप्त कर सकता हूँ, उस मुखसे  
 (जीभसे) मेढककी नाई दूसरोंकी निन्दाएँ रट-रटकर अपना जन्म  
 खो रहा हूँ ॥४॥ मैं यह घात सबको सिखाता फिरता हूँ, कि 'हृदयको  
 अत्यन्त शुद्ध कर लो, तभी उसमें भगवान् ध्रीहरि विराजेंगे' किन्तु मैं  
 स्वयं अपने हृदयमें अभिमान, मांह और मद आदि दुष्टोंकी मण्डलीको  
 बसाना हूँ ॥५॥ जिस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको धारणकर भक्त-जन भगवान्-  
 के परमपदको प्राप्त करनेकी साधना करते हैं, मैं उसे व्यर्थ ही खो रहा  
 हूँ । घरमें सोनेके घड़ेमें अमृत भरा रक्खा है, पर उसे छोड़कर आकाशमें  
 कुर्बू खुदघाता हूँ ॥६॥ मनसे, कर्मसे और धचनसे मैंने जो पाप किये  
 हैं, उन्हें तो मैं यत्न कर-कर बड़े जतनसे छिपाता हूँ । और यदि  
 दूसरोंकी प्रेरणासे अथवा ईर्ष्यावश कहीं कोई शुभ कर्म बन गया है,  
 तो उसे जनाता फिरता हूँ ॥७॥ ब्राह्मणोंके साथ द्रोह करना तो मानो  
 मेरे हिस्सेमें ही आ गया है । जबरदस्ती ही सबसे बुरा बड़ाता फिरता हूँ ।  
 एतना (बुद्धिभ्रष्ट) होनेपर भी, मैं सब सग्तोंके बीच बैठकर अपनी  
 बुद्धिके बिलासको गिनाना हूँ ( उनमें उत्तम क्षानी सन्त घनता हूँ ) ॥८॥

## विनय-पत्रिका

चारों घेद, शेषनाग और शारदा आदिका निहोरा करके उनसे यदि अपने दोषोंका यखान कराऊँ, तब भी, हे प्रभो ! मेरे ये दोष मौक तक समाप्त न होंगे ! फिर, भला मैं एक मुखसे उनका कहौँतक करूँ ? ॥९॥ यदि मैं अपनी करनीपर विचार करूँ, तो क्या मैं भाशरणमें आनेका साहस भी कर सकूँ ? परन्तु श्रीरामजीका यद्वा ही को स्वभाव और असीम शील है, इसी बातका बल मनको दिसाता रहता है ॥१०॥ हे प्रभो ! इस तुलसीदासके पास ऐसा एक भी गुण नहीं जिससे स्वप्नमें भी आपको रिक्ता सके । किन्तु हे नाथ ! आपकी कृपा आगे यह संसार-सागर गायके खुरके समान है । यह जानकर उल्लासित होकर सन्तोष कर लेता हूँ ( कि आपकी कृपासे, मैं विपरीत आचरण करनेपर भी संसार-समुद्रसे सहज ही तर जाऊँगा ) ॥११॥

[ १४३ ]

सुनहु राम रघुवीर गुसाई, मन अनीति-रत मेरो ।  
चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसिदिन फिरत अनरो ॥१॥  
मानत नाहिं निगम-अनुसासन, ग्रास न काहूँ केरो ।  
भूल्यो बल करम-कोलुन्ह तिल ज्यों बहु बारनि परो ॥२॥  
जहँ सतसंग कथा माधवकी, सपनेहुँ करत न केरो ।  
लोभ-मोह-मद-काम-कोह-रत, तिन्हसो प्रेम धनेरो ॥३॥  
पर-गुन मुनत दाह, पर-दूपन मुनत हरत बधुतेरो ।  
आव पापको नगर बसावत, सहि न सकत पर संरो ॥४॥  
माधन-कल, मृति-भार नाम तव, भव-सरिता कहँ धेरो ।  
पर-कार काँकिनी लागि मट, बेधि होत हठि धेरो ॥५॥

कबहुँक हों संगति-प्रभावतें, जाऊँ सुमारग नेरो ।  
 तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ॥६॥  
 इक हों दीन, मलीन, हीनमति, विपतिजाल अति धेरो ।  
 तापर सहि न जाय करुनानिधि, मनको दुसह दरेरो ॥७॥  
 हारि परयो करि जतन बहुत विधि, तातें कहत सबेरो ।  
 तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥८॥

भावार्थ—हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! हे स्वामी ! सुनिये—मेरा मन अन्यायमें लगा हुआ है, आपके चरण-कमलोंको भूलकर दिन-रात इधर-उधर (विषयोंमें) भटकता फिरता है ॥१॥ न तो यह घेदकी ही आज्ञा मानता है और न उसे किसीका डर ही है । यह बहुत धार कर्मरूपी कोण्डूमें तिलकी तरह पेरा जा चुका है, पर अब उस कण्टको भूल गया है ॥२॥ जहाँ सत्संग होता है, भगवान्की कथा होती है, वहाँ यह मन स्वप्नमें भी भूलकर भी नहीं जाता । परन्तु जो लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध-में मग्न रहते हैं, उन्हीं (दुष्टोंसे) यह अधिक प्रेम करता है ॥३॥ दूसरोंके गुण सुनकर घट्ट (डाहके मारे) जला जाता है और दूसरोंके दोष सुनकर बड़ा भारी हट्वाता है ! स्वयं तो पापोंका नगर यसा रहा है, पर दूसरोंके (पापोंके) खेड़ेको भी नहीं देख सकता । भाव यह कि अपने घड़े-घड़े पापों-पर तो कुछ भी ध्यान नहीं देता, परन्तु दूसरोंके जरा-से पापको देखकर ही उनकी निन्दा करता है ॥४॥ आपका राम-नाम सारे साधनोंका फल, धेदोंका सार और संसाररूपी नदीसे पार जानेके लिये बेटा है, ऐसे राम-नामको यह दुष्ट दूसरोंके हाथमें कौड़ी-कौड़ीके लिये बेचता हुआ



जबरदस्ती उनका गुलाम बनता फिरता है ॥५॥ यदि कर्मो सत्संगके प्रभव  
भगवत्के मार्गके समीप जाता भी हूँ तो विषयोंकी आसक्ति उमड़कर मत्त  
तुरन्त सांसारिक धुरी कामनारूपी गड़हेमें घका दे देती है ॥६॥ एक तो मैं  
ही शून्य, पापी और बुद्धिहीन हूँ तथा विपत्तियोंके जालमें मूब फँसा पड़ा।  
निसपर, हे करुणानिधि ! मनके इस असह्य धक्केको मैं कैसे सह सक  
हूँ ? ॥७॥ मैं अनेक यज्ञ करके द्वार गया, इससे मैं पहलेसे ही बड़े देव  
हूँ कि तुलसीदासका यह भय (जन्म-मरणका प्राप्त) तमी दूर होगा, अब  
आप उसके हृदयमें निवास करेंगे ॥८॥

[ १४४ ]

सो घाँ को जो नाम-लाज तें, नहिं राख्यो रघुवीर ।  
कारुणीक पिनु कारन ही हरि हरी सकल भव-भीर ॥१॥  
बेद-विदित, जग-विदित अजामिल विप्रबंधु अध-धाम ।  
घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम ॥२॥  
पसु पामर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह ।  
सुमिरत मरुत सपदि आये प्रभु, हरयो दुसह उर-दाह ॥३॥  
व्याध, निपाद, गीघ, गनिकादिक, अगनित औगुन-भूल ।  
नाम-ओटतें राम मपनिकी दूरि करी सब छल ॥४॥  
केहि आचरन घाटि हौं तिनतें, रघुकुल-भूपन भूप ।  
मीदत तुलसीदास निमिबासर परयो भीम वम-कूप ॥५॥

मायावं-हे रघुवीर ! पैसा कौन है, जिसे आपने अपने नामकी  
। धरनी शरणमें नहीं रक्खा ? हे हरि ! आप तो बिना ही कारण

रूपी करनेवाले और (जन्म-मरण-रूपी) संसारके भयको दूर करनेवाले : ॥१॥ वेदमें प्रकट है और संसारमें भी प्रसिद्ध है कि अजामिल जाति-  
 का ब्राह्मण महान् पापोंका स्थान था । यमलोक जाते समय जब उसने  
 एकके बहाने आपका 'नारायण' नाम लिया तब आपने उसे यमलोक जानेसे  
 लोक दिया ॥२॥ जब मगरने महान् अभिमानी घामर पशु हाथीको पकड़  
 लेया, तब उसके एक ही बार स्मरण करनेपर, हे प्रभो ! आप वहाँ दौड़े  
 गये और उसकी दुःसह हार्दिक पीड़ाको मिटा दिया ( मगरसे छुड़ाकर  
 उसे परमधाम प्रदान कर दिया ) ॥३॥ ध्याध ( घाल्मीकि ), निपाद  
 ( गुह ), गीध ( जटायु ), गणिका ( पिंगला ) इत्यादि अगणित जीध जो  
 पापोंकी जड़ थे, परन्तु हे रामजी ! आपने अपने नामकी ओटसे इन सबकी  
 सारी पीड़ाओंका नाश कर दिया ॥४॥ हे रघुवंशभूषण महाराज ! मैं  
 इन सबोंसे किस आचरणमें कम हूँ ? फिर भी मैं तुलसीदास रात-दिन  
 मयामक अज्ञानरूपी कुर्षमें पड़ा दुःख भोग रहा हूँ ( सबकी निकाला  
 है तो अब मुझे भी निकालिये ) ॥५॥

[ १४५ ]

कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ।  
 जब जहै तुमहिं पुकारत आरत, तहै तिन्हके दुख दाहे ॥१॥  
 राज, प्रह्लाद, पांडुसुत, कपि, सबको रिपु-संकट भेट्यो ।  
 प्रनत, बंधु-भय-विकल, बिभीषन, उठि सो भरत ज्यो भेटयो ॥२॥

## विनय-पत्रिका

मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम इक उर आपने बनावों ।  
भजन, विवेक, भिराग, लोंग भले, मैं क्रम-क्रम करि ल्यावों ॥३॥  
सुनि रिस भरे कृटिल कामादिक, कर्गहि जोर बरिआई ।  
तिन्हहि उजारि नारि-अरि-घन पुर राखहि राम गुसाई ॥४॥  
सम-सेवा-छल-दान-दंड हों, रचि उपाय पचि हारयो ।  
बिनु कारनको कलह बढ़ो दुख, प्रभुसों प्रगटि पुकारयो ॥५॥  
सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निटुर, दया चित नाहीं ।  
जाउँ कहाँ, को विपति-निवारक, भवतारक जग माहीं ॥६॥  
तुलसी जदपि पोच, तउ तुम्हरो, और न काहू केरो ।  
दीजे भगति-चाँह धारक, ज्यों सुवस बसै अब खेरो ॥७॥

भावार्थ—हे रूपासागर ! यह तुम्हारा दीन जन तुम्हारे द्वारा  
न्याय क्यों नहीं पाता ? जय, जहाँपर, दुखियोंने तुम्हें पुकारा, तब वहाँ  
पर तुमने उनके दुःख दूर कर दिये ॥१॥ गजराज, प्रह्लाद, पाण्डव, सुग्रीव  
आदि सबके शत्रुओंसे दिये गये कष्ट तुमने दूर कर दिये । माई रावण  
उरसे ध्याकुल शरणागत विभीषणको उठाकर तुमने भरतकी नाई हृदय  
से लगा लिया ( फिर मेरे लिये ही ऐसा क्यों नहीं होता ) ॥२॥  
तुम्हारा नाम लेकर अपने हृदयमें एक गाँव बसाना चाहता हूँ और उसमें  
बसानेके लिये मैं धीरे-धीरे भजन, विवेक, वैराग्य आदि सज्जनोंको हृदय  
उधरसे लाता हूँ ॥३॥ पर यह सुनकर क्रोधित हो दुष्ट काम, क्रोध, लोभ,

मोह, मद, मात्सर्य आदि जयरदस्ती करने हैं और उन घेचारे भजन आदि मले आदमियोंको निकाल-निकालकर, हे प्रभो ! उस गाँवमें दुष्ट स्त्री, शत्रु और धन आदि नीचोंको ला-लाकर पसाने हैं ॥४॥ साम, दाम, दण्ड, भेद और सेवा-दहल करके तथा और अनेक उपाय करके मैं धक गया हूँ, तब हे प्रभो ! इस बिना ही कारणकी लड़ाईके इस महान् दुःखको आज मैंने तुम्हारे सामने खुलकर निवेदन कर दिया है ॥५॥ ( तुम्हारे सिवा यह दुःख और सुनाता भी किसे, क्योंकि) देवता तो स्वार्थी, असमर्थ, अयोग्य और निष्ठुर हैं । उनके चित्तमें तो दया नहीं है। मैं कहाँ जाऊँ ? (तुम्हारे सिवा) कौन विपत्ति दूर करनेवाला है ? कौन इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला है ? ॥६॥ तुलसी यद्यपि नीच है, पर है तो तुम्हारा ही, और किसीका गुलाम तो नहीं है । अपना जानकर एक धार भक्तिरूपी बाँह दे दो, जिम्से यह ( तुम्हारे नामका ) गाँव अच्छी तरह आयाद हो जाय । अर्थात् हृदयमें तुम्हारी भक्तिके प्रतापसे भजन, ज्ञान, वैराग्यका विकास होकर काम-क्रोधादिका नाश हो जाय ॥७॥

[ १४६ ]

हैं सब विधि राम, रावरो चाहत भयो चैरो ।

ठौर ठौर साहसी होत है, ख्याल काल कलि केरो ॥१॥

काल-करम-इंद्रिय-विषय गाहकगन धैरो ।

हैं न कबूलत, बाँधि कै मोल करत करैरो ॥२॥

बंदि-छोर तेरो नाम है, चिह्नित बड़ेगे ।  
 मैं फर्यो, तब छन-प्रीति कै माँगे उर डेंगे ॥३॥  
 नाम-आँट अब लगि बच्चो मलजुग जग जेंगे ।  
 अब गरीब न जमो गियेपाइवा न हेंगे ॥४॥  
 जेहि काँतुक <sup>बक</sup><sub>खग</sub> स्थानकां प्रभु न्याय निवेंगे ।  
 तेहि काँतुक कहिये कृपालु ! 'तुलसी है मेरो' ॥५॥

भावार्थ—हे रामजी ! मैं सब प्रकार आपका दास बनना चाहता हूँ पर यहाँ तो जगह-जगह साहसी हो रही है । भाव यह कि मन इन्द्रियाँ सभी मेरे मालिक बन बैठे हैं । यह सब कलिकालके सेल हैं । काल, कर्म और इन्द्रियरूपी ब्राह्मणों ने मुझे घेर रक्खा है । जब मैं उदास होकर हाथ विकना कबूल नहीं करता, तब ये मुझे बाँधकर मुझपर कड़ा कड़ा चढ़ाते हैं, जैसे-तैसे लालच दिखाकर अपने बशमें करना चाहते हैं । आपका नाम बन्धनसे छुड़ानेवाला है और आपका याना भी बड़ा है । मैंने उन ( ब्राह्मणों ) से यह कहा, कि भाई ! मैं तो रघुनाथजीके दास बिक चुका हूँ, तब ये कपट-प्रेम दिखाकर मुझसे मेरे हृदयमें बन्धन लिये स्थान माँगने लगे ( यदि उन्हें स्थान दिये देता हूँ, तो अभी तो दीनता दिखा रहे हैं, पर जगह मिल जानेपर धीरे-धीरे उसपर अधिकार जमा लेंगे । ) ॥३॥ अतएव मैं आपके नामके सहारेसे बचा रहूँ पर अब तो यह कलियुग मुझे जेर किये है । अतएव, अब इस गरीब गुलामका पालन कीजिये, नहीं तो फिर खोजनेसे भी इसका पता

लगेगा ॥४॥ हे नाथ ! आपने जिस लीलासे पक्षी (उल्लू) का और कुत्ते का मैसला कर दिया था, उसी लीलासे (इस कलियुगसे) यह भी कह दीजिये कि, 'तुलसी मेरा है।' (इतना कह देनेसे फिर कलियुगका रसपर कुछ भी घटा न चलेगा) ॥५॥

[ १४७ ]

कृपासिंधु ताते रहों निसिदिन मन मारे ।

महाराज ! लाज आपुही निज जाँघ उधारे ॥१॥

१ वनमें उल्लू और गीघ एक ही घरमें रहते थे । एक दिन गीघने बुरी नीयतसे परपर अपना अधिकार करना चाहा और उल्लूसे कहा—'हमारा घर खाली कर दो, रसपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं, नहीं मानते तो चलो राजाजीसे न्याय करा लें।' अन्तमें दोनों भीरामजीके दरवारमें आये । रामचन्द्रजीने उल्लूसे कहा—'घर किसका है ! तू उसमें कबसे रहता है ?' उल्लूने उत्तर दिया—'महाराज ! जवसे वृषोंकी सृष्टि हुई, तबसे मैं उस घरमें रहता हूँ।' गीघने कहा कि 'जवसे मनुष्योंकी सृष्टि हुई, तबसे मैं रहता हूँ।' भगवान्ने कहा कि 'वृषोंकी सृष्टि मनुष्योंसे पहले हुई है, इसलिये घर उल्लूका ही है, तुम्हारा नहीं। तुम घर खाली कर दो।'।

२ एक दिन भीरामजीके राजदरवारमें एक कुत्ता आया और रोता हुआ कहने लगा—'महाराज, तीर्थसिद्धि नामक ब्राह्मणने बिना ही अपराध लाठीसे मेरा सिर फोड़ दिया, आप मेरा न्याय कर दीजिये।' भगवान्ने ब्राह्मणको बुलाया और उससे पूछा, कि 'तुमने निरपराध कुत्तेके सिरपर क्यों लाठी मारी ?' ब्राह्मणने कहा, कि 'मैं भील मोंगता फिरता था, इसे मैंने रास्तेसे हटाया, जब यह न हटा, तब मैंने लकड़ी मार दी।' ब्राह्मणको अदण्डनीय समझकर भगवान् विचार करने लगे । इतनेमें कुत्तेने कहा कि 'भगवन् ! आप इसे कालिजरका महन्त बना दीजिये । मैं भी पूर्व-जन्ममें एक महन्त था । भक्ष्याभक्ष्य खानेसे मुझे कुत्ता होना पड़ा, महन्ती बहुत बुरी है।' कुत्तेके कहनेपर भगवान्ने उसे कालिजरका महन्त बना दिया ।



मिले रहें, मारयाँ चढ़ें कामादि संपाती ।  
 मो विनु रहें न, मेरियँ जाँरँ छल छाती ॥२॥  
 वसत दिये दित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।  
 कियो कथकको दंड हों जड़ करम कुचाली ॥३॥  
 देखी मुनी न आजु लों अपनायति ऐसी ।  
 फरहिँ सब सिर मेरे ही फिरि परँ अनैसी ॥४॥  
 बड़े अलेखी लखि परँ, परिहरे न जाहीं ।  
 असमंजसमें मगन हों, लीजँ गहि बाहीं ॥५॥  
 वारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जी को ।  
 अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसीको ॥६॥

भावार्थ—हे कृपासिन्धु ! इसीलिये मैं रात-दिन मन मारे रहते  
 कि हे महाराज ! अपनी जाँघ उघाड़नेसे अपनेको ही लाज ल  
 है ॥१॥ यह काम, क्रोध, लोभ आदि सार्या मिले भी रहते हैं और मा  
 भी चाहते हैं, ऐसे दुष्ट हैं ! ये मेरे बिना रहते भी नहीं और  
 करके मेरी ही छाती जलाते हैं । भाव यह कि अपने ही ब  
 मारते हैं ॥२॥ ये मेरे हृदयमें वसते हैं, मैंने ऐसा समझकर प्रेमपू  
 इन सबकी रुचि भी पूरी कर दी है, अर्थात् सब विषय मोग चुका  
 फिर भी इन दुष्टों और कुचालियोंने मुझे कथककी लकड़ी बना र  
 है ( लकड़ीके इशारेसे जैसे नाच नचाते हैं, वैसे ही ये मुझे नचाते हैं ) ॥  
 ऐसी अपनायत ( आरमोयता ) तो आजतक मैंने कहीं भी नहीं देख  
 सुनी । कर्म तो करें सब आप, और जो कुछ घुराई हो, यह मेरे सि

भावे ॥४॥ मुझे ये सब घड़े ही अन्यायी दीखते हैं ! पर छोड़े नहीं जाते । घड़े ही असमझसमें पड़ रहा हूँ । अब हाथ पकड़कर आप ही निकालिये (नहीं तो, अपने-से घने हुए ये मुझे मार कर ही छोड़ेंगे) ॥५॥ आपकी यलैया लेता हूँ, कृपाकर एक थार अपने इस दासका यह कौतुक तो देखिये । आपके देखते ही तुलसीका दुःख सहज ही दूर हो जायगा ॥६॥

[ १४८ ]

कहाँ कौन मुँह लाइ कै रघुवीर गुसाईं ।  
 सकुचत समुहृत आपनी सब साईं दुहाई ॥ १ ॥  
 सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं ।  
 गुनगन सीतानाथके चित करत न हौं हौं ॥ २ ॥  
 कृपासिंधु बंधु दीनके आरत-हितकारी ।  
 प्रनत-पाल विरुदावली सुनि जानि विसारी ॥ ३ ॥  
 सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद-प्रीति सुधारी ।  
 पाइ सुसाहिब राम सो, भरि पेट विगारी ॥ ४ ॥  
 नाथ गरीपनिवाज हँ, मैं गही न गरीबी ।  
 तुलसी प्रभु निज ओर तैं बनि परै सो कीवी ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे रघुवीर ! हे स्वामी ! कौन-सा मुँह लेकर आपसे कुछ कहूँ ? स्वामीकी दुहाई है, जब मैं अपनी कर्त्तनीपर विचार करता हूँ, तब संकोचके मारे चुप हो रहता हूँ ॥१॥ सेवा करनेसे घशमें ही जाते हैं, शरण करनेसे मित्र बन जाते हैं और शरणमें आनेसे सामने प्रकट हो



## बिनाय-पत्रिका

जाते हैं । ऐसे आप धीर्सातानाथजीके गुण-समूहपर भी मैं ध्यान देता ॥२॥ आप कृपाके समुद्र हैं, दीनोंके बन्धु हैं, दुखियोंके द्विद हैं, शरणागतोंके पालनेवाले हैं, आपकी ऐसी विरदावली सुनकर जानकर भी मैं भूल गया हूँ ॥३॥ मैंने न तो सेवा ही की और न ही किया । स्मरण करके आपके चरणोंमें सच्चा प्रेम भी नहीं किया । आप-सरीखे श्रेष्ठ स्वामीको पाकर भी मैंने भरपेट आपसे बुराई ही की । आप गरीबोंपर कृपा करनेवाले हैं, पर मैंने गरीबी धारण नहीं की (अतएव मेरी ओर देखनेसे तो कुछ भी नहीं होगा), अब दे नाथ! आप ओर देखकर ही जो आपसे बन पड़े सो कीजिये ॥५॥

[ १४९ ]

कहाँ जाऊँ, कासों कहाँ, और ठौर न भरे ।  
जनम गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे ॥ १ ॥  
मैं तो बिगारी नाथ सों आरतिके लीन्हें ।  
तोहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी-सी कीन्हें ॥ २ ॥  
दिन-दुरदिन दिन-दुरदसा, दिन-दुख दिन दूषन ।  
जब लौं तू न बिलोकिहै खुबंस-बिभूषन ॥ ३ ॥  
दर्ई पीठ बिनु डीठ मैं तुम बिस्व-बिलोचन ।  
तौ सों तुही न दूमरो नत-सोच-बिमोचन ॥ ४ ॥  
परार्थीन देव दीन हौं, स्वार्थीन गुसाईं ।  
बोलनिहारे सों करै बलि बिनाय कि झाईं ॥ ५ ॥

आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो ।

बढ़ी ओट रामनामकी जेहि लई सो बाँचो ॥ ६ ॥

रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है ।

ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥ ७ ॥

भावार्थ—कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ? मुझे कोई और ठौर ही नहीं ।  
 उस तेरे गुलामने तो तेरे ही दरवाजेपर (पड़े-पड़े) जिन्दगी काटी है ॥१॥  
 नि तो जो अपनी करनी बिगाड़ी सो हे नाथ ! दुःखोंसे घबराया हुआ  
 तेनेके कारण बिगाड़ी । परन्तु हे कृपानिधे ! यदि तू भी मेरी करनीकी  
 ओर देखकर फल देगा तो कैसे काम चलेगा ? ॥२॥ हे रघुकुलमें श्रेष्ठ !  
 जयन्तक तू (हरज जीयकी ओर कृपादृष्टिसे) नहीं देखेगा, तबतक नित्य ही  
 छोटे दिन, नित्य ही बुरी दशा, नित्य ही दुःख और नित्य ही दोष लगे  
 रहेंगे ॥३॥ मैं जो तुझे पीठ दिये फिरता हूँ, तुझसे विमुख हो रहा हूँ, सो मैं  
 तो बहिर्हीन हूँ, अन्धा हूँ (अज्ञानी हूँ) पर तू तो सारे विश्वका द्रष्टा है ! (तू  
 मुझसे विमुख कैसे होगा ?) तुझ-सा तो तू ही है, तेरे सिवा हीन-दुखियोंके  
 शोक हरनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥४॥ हे देव ! मैं परतन्त्र हूँ, दीन  
 हूँ, पर तू तो स्वतन्त्र है, स्वामी है । तेरी बलिहारी ! (धिनन्यरूप)  
 बोलनेवालेसे उसकी परछाईं क्या बिनय कर सकती है ? ॥५॥ मतपय तू  
 पढ़ले अपनी ओर देख, फिर मेरी ओर देख, तमी इस दासको सच्चा  
 मानना । राम-नामकी ओट बढ़ी भारी है । जिम किसीने भी राम-नाम-  
 की ओट ले ली वह (जन्म-मरणके चक्रसे) बच गया ॥६॥ हे राम ! तेरी  
 रहन-सहन सदा मेरे हृदयमें हुलस रही है, तेरा शील-स्वभाव विचारकर

मैं मन-ही-मन बड़ा प्रमत्त हो रहा हूँ, कि भय मेरी सारी करनी ख  
जायगी। यम, यह तुलसी तेरा है, जिस तरह हो, उम्मी तरह इत्त  
रुपा कर ॥७॥

[ १५० ]

राममद्र ! मोहि आपनो सोच हूँ अरु नहीं ।  
जीव सकल संतापके माजन जग माहीं ॥१॥  
नातो बड़े समर्थसों इक ओर किधौ हूँ ।  
तोको मोसे अति धने मोको एकूँ तू ॥२॥  
बड़ी गलानि हिय हानि हूँ सरवग्य गुसाईं ।  
कूर कुसेवक कहत हौं सेवककी नाईं ॥३॥  
मलो पोच रामको कहै मोहि सब नरनारी ।  
बिगरे सेवक खान ज्यों साहिव-सिर गारी ॥४॥  
असमंजस मनको मिटै सो उपाय न बूझै ।  
दीनबन्धु ! कीजै सोई बनि परै जो बूझै ॥५॥  
विरुदावली बिलोकिये तिन्हमें कोउ हौं हौं ।  
तुलसी प्रभुको परिहरयो सरनागत सो हौं ॥६॥

भावार्थ—हे कल्याण-स्वरूप रामचन्द्रजी ! मुझे अपना सोच है भी  
और नहीं भी है, क्योंकि इस संसारमें जितने जीव हैं वे सभी संतापके  
पात्र हैं, (सभी दुखी हैं) ॥१॥ पर क्या आप-जैसे बड़े समर्थसे सिर्फ एक  
... औरसे सम्बन्ध है ? (शायद यही हो क्योंकि) आपको तो  
... बहुरंगे हैं, किन्तु मेरे तो एक आप ही हैं ॥२॥ हे नाथ ! आप

तो घट-घटकी जानते हैं, मेरे हृदयमें यही यही ग्लानि हो रही है और इसीको मैं हानि समझता हूँ कि, मैं हूँ तो दुष्ट और बुरा सेवक, नमकहराम नौकर, पर धातों कर रहा हूँ सब्जे सेवक-जैसी। भाव यह है, कि मेरा यह दम्भ आप सर्वज्ञके सामने कैसे छिप सकता है ? ॥३॥ परन्तु भला हूँ या बुरा, सब स्त्री-पुरुष मुझे कहते तो रामका ही हूँ न ? सेवक और कुत्तेके विगड़नेसे स्वामीके सिंग ही गालियाँ पड़ती हैं। भाव यह कि यदि मैं बुराई करूँगा, तो लोग आपको ही बुरा कहेंगे ॥४॥ मुझे यह उपाय भी नहीं सूझ रहा है, कि जिससे चित्तका यह असमञ्जस मिटे अर्थात् मेरी नीचता दूर हो जाय और आपको भी कोई भला-बुरा न कहे। अब हे दीनबन्धु ! जो आपको उचित जान पड़े और जो बन सके, यही (मेरे लिये) कीजिये ॥५॥ ननिक अपनी विरदावलीकी ओर तो देखिये ! मैं उन्हींमें कोई हूँगा ! (भाव यह कि आप दीनबन्धु हैं, तो क्या मैं दीन नहीं हूँ, आप पतित-पावन है, तो क्या मैं पतित नहीं हूँ, आप प्रणतपाल हैं, तो क्या मैं प्रणत नहीं हूँ ? इनमेंसे कुछ भी तो हूँगा)। (इतनेपर भी) यदि स्वामी इस तुलसीको छोड़ देंगे, तो भी यह उन्हींके सामने शरणमें जाकर पड़ा रहेगा। (आपको छोड़कर कहीं जा नहीं सकता) ॥६॥

[ १५१ ]

जो पं चेरार्ह रामकी करतो न लजातो ।

तो तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिकातो ॥ १ ॥



## धिनय-पत्रिका

जपत जीह रघुनाथको नाम नहिं अलसातो ।  
बाजीगरके सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥२॥  
जौ तू मन ! मेरे फदे राम-नाम कमातो ।  
सीतापति सनमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥३॥  
राम सोहाते तोहिं जौ तू सबहिं सोहावो ।  
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥४॥  
राम-नाम अनुरागही जिय जो रतिआतो ।  
स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो ॥५॥  
सेह साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो ।  
जनम कौटिको काँदलो हृद-हृदय धिरातो ॥६॥  
भव-मग अगम अनंत है, बिनु भ्रमहि सिरातो ।  
महिमा उलटै नामकी धुनि कियो किरातो ॥७॥  
अमर-अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो ।  
होवो मंगल-मूल तू, अनुकूल बिधातो ॥८॥  
जो मन, प्रीति-प्रतीतिसौ राम-नामहिं रातो ।  
तुलमी रामप्रसादसौं तिहुँताप  $\frac{\text{न तातो}}{\text{नसातो}}$  ॥९॥

भावार्थ—धरे ! जो तू श्रीरामजीकी सुलामी करमेमें न छत्र  
तो तू स्वर्ग दाम होकर भी, लोटे दामकी भाँति इस हाथमें उस हाथ  
बिकता फिरता । भाव यह कि परमात्माका राग्य भंडा होनेपर भी उन  
मूल ज्ञानके कारण जीवस्वरूपमें एक ध्योनिमें दूसरी ध्योनिमें मदकता मि

रहा है ॥१॥ यदि तू जीभसे श्रीरघुनाथजीका नाम जपनेमें बालस्य न करता, तो आज तुझे याजीगरके सूमके सदृश धूल न फाकनी पड़ती ॥२॥ अरे मन ! यदि तू मेरा कदा मानकर राम-नामरूपी धन कमाता, तो श्रीजानकी-नाथ रघुनाथजीके सम्मुख उनकी शरणमें जाकर सुखी हो जाता और सर्वत्र तेरा आदर होता । लोक-परलोक दोनों बन जाते ॥३॥ जो तुझे श्रीरामजी अच्छे लगे होते, तो तू भी सचको अच्छा लगता; काल, कर्म और कुल आदि जितने ( इस जीवके ) प्रेरक हैं, वे सब फिर कोई भी तुझपर क्रोध न करते । सभी तेरे अनुकूल हो जाते ॥४॥ यदि तू श्रीराम-नामसे प्रेम करता और उसीमें अपनी लगन लगाता, तो स्वार्थ और परमार्थ इन दोनोंके ही बटोही तुझपर विश्वास करते । अर्थात् तू संसार और परलोक दोनोंमें ही सुखी होता ॥५॥ जो तू सन्तोंकी सेवा करता एवं दूसरोंका दुःख सुन और समझकर दुखी होता, तो नेरे हृदयरूपी तालाबमें जो करोड़ों जन्मोंका मैल जमा है, वह नीचे बैठ जाता; तेरा अन्तःकरण निर्मल हो जाता ॥६॥ श्रीरामका नाम न लेने-वालोकें लिये संसारका मार्ग अगम्य है और अनन्त है, किन्तु उसीको तू बिना ही धर्मके पार कर जाता । जब श्रीरामके उलटे नामकी भी इतनी महिमा है कि उससे व्याध ( वास्मीकि ) मुनि बन गये थे, तब सीधा नाम जपनेसे क्या नहीं हो जायगा ? ॥७॥ अरे मूर्ख ! तेरा यह देवताओंको भी दुर्लभ (मानव) शरीर यों ही न चला जाता ! तू कल्याण-का मूल हो जाता और विधाता तेरे अनुकूल हो जाते ॥८॥ अरे मन ! यदि तू प्रेम और विश्वाससे राम-नाममें लौ लगा देता, तो हे तुलसी, श्रीराम-रूपासे, तू तीनों तापोंमें कभी न जलता ॥९॥

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ।  
 जुग जुग जानकिनाथको जग जागत साको ॥ १ ॥  
 ब्रह्मादिक चिनती करी कहि दुख बसुधाको ।  
 रबिकुल-कैरव-चंद्र भो आनंद-सुधाको ॥ २ ॥  
 कौंसिक गरत तुपार ज्यों तकि तेज तियाको ।  
 प्रभु अनहित हित को दियो फल कोष कृपाको ॥ ३ ॥  
 हरयो पाप आप जाईके संताप सिलाको ।  
 सोच-मगन काढ्यो सही साहिय मिथिलाको ॥ ४ ॥  
 रोष-रासि भृगुपति धनी अहमिति ममताको ।  
 चितवत भाजन करि लियो उपसम समताको ॥ ५ ॥  
 मुदित मानि आयसु चले बन मातु-पिताको ।  
 घरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील-जिता को ॥ ६ ॥  
 गुह गरीब गतग्याति हू जेहि जिउ न भखा को ॥  
 पायो पावन प्रेम ते सनमान सरसाको ॥ ७ ॥  
 मदगति सखरी गीधरी सादर करता को ॥  
 सोच-भीष गुप्रीयके संकट-हरता को ॥ ८ ॥  
 रागि विभीषनको सक अम काल-गहा को ॥  
 आज विराजत रात्र हू दमकंड जहाँको ॥ ९ ॥  
 शान्तिम धामी अपपको धृष्टिये न साको ।  
 मां पौरर पहुँचो तहाँ जई मुनि-मन थाको ॥ १० ॥

गति न लहै राम-नामसों विधि सो सिरजा को ? ।

सुमिरत कहत प्रचारि कै बल्लभ गिरिजाको ॥११॥

अकनि अजामिल को कथा सानंद न भा को ? ।

नाम लेत कलिकालहु हरिपुरहिं न गा को ? ॥१२॥

राम-नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको ।

साखी वेद पुरान हैं तुलसी-तन ताको ॥१३॥

भावार्थ—श्रीरामजीने अपने भले स्वभावसे किसका भला नहीं किया ?  
 ग-युगसे श्रीजानकीनाथजीका यह कार्य जगत्में प्रसिद्ध है ॥१॥ प्रह्ला  
 दि देवताओंने पृथ्वीका दुःख सुनाकर ( जय ) विनय की थी, ( तय  
 प्योका मार हरनेके लिये और राक्षसोंको मारनेके लिये ) सूर्यवंशरूपी  
 सुदिनीकी प्रफुलित करनेवाले चन्द्ररूप एवं अमृतके समान आनन्द देने-  
 वाले श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए ॥२॥ विश्वामित्र ताड़काका तेज देखकर  
 तिलेकी नाईं मले जाते थे। प्रभुने ताड़काको मारकर, शत्रुको मित्रका-सा  
 ल दिया एवं क्रोधरूपी परम कृपा की। भाय यह है, कि दुष्ट ताड़काको  
 अग्नि देकर उसपर कृपा की ॥३॥ स्वयं जाकर शिला ( बनी हुई महत्या ) का  
 अप-सम्हाप दूर कर दिया, पितर, ( धनुष-ग्रहके समय ) शोक-सागरमेंसे  
 तबने हुए मिथिलाके महाराज जनकको निकाल लिया, अर्थात् धनुष  
 गिड़कर उनकी प्रतिष्ठा पूरी कर दी ॥४॥ परशुराम क्रोधके डेर एवं  
 महंकार और ममत्त्यके धनी थे, उन्हें भी भापने देणते ही शान्ति और  
 समताका पात्र बना लिया। अर्थात् यह क्रोधीसे शान्त और महंकारीसे  
 समद्रोह हो गये ॥५॥ माता ( कैकेयी ) और पिताकी आज्ञा मानकर



प्रसन्नचित्तसे वन चले गये । ऐसा, धर्मधुरन्धर और धीरज्वारी तब  
 सद्गुण और शीलको जाननेवाला दूसरा कौन है ? कोई भी नहीं ॥१॥  
 नीच जातिका गरीब गुह निषाद, जिमने ऐसा कौन जान है जिसे बर्  
 नाया हो अर्थात् जो सब प्रकारके जानोंका मक्षण कर चुका था, उसे  
 भी पवित्र प्रेमके कारण धीरघुनायजीसे सन्ना-जैसा आदर प्र  
 किया ॥७॥ शयरी और गीच (जटायु) को सत्कारके साथ मंत्र  
 देनेवाला कौन है ? और शोककी सीमा अर्थात् महान् दुःखी मुश्रीवका  
 संकट दूर करनेवाला कौन है ? (ध्रीरामजी ही हैं) ॥८॥ ऐसा कौन  
 कालका प्राप्त था, जो (रावणसे निकाले हुए) विभीषणको अपनी राक्षस  
 रखता ? जिस रावणके राज्यमें आज भी विभीषण राजा बना बैठा है  
 (यह सब रघुनाथजीकी ही कृपा है) ॥९॥ अयोध्याका रहनेवाला  
 मूर्ख घोषी, जिसमें बुद्धिका नाम भी नहीं था, वह पामर भी वहाँ पहुँच  
 गया, जहाँ पहुँचनेमें मुनियोंका मन भी थक जाता है । (महामुनिय  
 जिस परम धामके सम्यग्धमें तत्त्वका विचार भी नहीं कर सकते, वह घोषी  
 वहाँ चला गया) ॥१०॥ ब्रह्माने ऐसा किसे रचा है, जो राम-नाम लेकर  
 मुक्तिका भागी न हो ? पार्वतीवल्लभ शिवजी (जिस) राम-नामका स्त  
 स्मरण करते हैं और दूसरोंको उपदेश देकर उसका प्रचार करते हैं ॥११॥  
 अजामिलकी कथा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं हुआ ? और राम-नाम लेकर  
 इस कलिकालमें भी कौन भगवान् हरिके परम धाममें नहीं गया ? ॥१२॥  
 राम-नामकी महिमा ऐसी है कि वह आकके पेड़को भी कल्पवृक्ष बना  
 सकती है । वेद और पुराण इस घातके साक्षी हैं (इसपर भी विश्वास  
 न हो, तो) मुलसीकी ओर देखो । भाव यह है, कि मैं क्या था और पर  
 राम-नामके प्रभापसे कैसा राम-भक्त हो गया हूँ ॥१३॥

[ १५३ ]

मेरे राखरियै गति है रघुपति बलि जाउँ ।

निलज नीच निरधन निरगुन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥ १ ॥

हैं घर घर बहु भरे सुसाहिव, स्रद्धत सयनि आपनो दाउँ ।

बानर-चंधु बिभीषन-दितु विनु, कोसलपाल कहँ न समाउँ ॥ २ ॥

प्रनतारति-भंजन जन-रंजन, सरनागत पवि-पंजर नाउँ ।

कीजँ दास दासतुलसी अब, कृपासिंधु विनु मोल बिकाउँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! आपपर बलिहारी जाता हूँ, मुझे तो बस आपकी ही शरण है । क्योंकि इस निर्लज, नीच, कंगाल और गुणहीनके लिये संसारमें (आपको छोड़कर) न तो कोई मालिक है, और न कोई ठौर-ठिकाना ही ॥१॥ वैसे तो घर-घर बहुतेरे अच्छे-अच्छे मालिक हैं, किन्तु उन सबको अपना ही स्वार्थ स्रद्धता है । मैं तो यन्दर (सुग्रीव) के मित्र और विभीषणके हितैषी कोशलेश श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और कहीं भी शरण नहीं पा सकता, और किसी मालिकके यहाँ मेरा टिकाव नहीं हो सकता ॥२॥ आप आश्रितोंके दुःखोंका नाश करनेवाले और भक्तोंको सुख देनेवाले हैं । शरणागतोंके लिये तो आपका नाम ही वज्रके पिंजरेके समान है । भाव यह कि आपका नाम लेते ही वे तो सुरक्षित हो जाते हैं । अतः हे कृपासागर ! अब तुलसीदासको तो अपना दास बना ही लीजिये । मैं अब बिना ही मोलके (आपके हाथमें) बिकना चाहता हूँ ॥३॥

[ १५४ ]

देव ! दूसरो कौन दीनको दयालु ।

सीलनिधान सुज्ञान-सिरोमनि, सरनागत-प्रिय प्रनत-यालु ॥ १ ॥

को समर्थ सरपग्य सकल प्रभु, शिव-सनेह-मानस भरातु ।

को साहिय किये भीत प्रीतिवस खग निसिचर कपि भील भातु ॥ २ ॥

नाथ हाथ माया-प्रपंच सब, जीव-दोष-गुण-करम-कातु ।

तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजिये निहातु ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे देव ! ( आपके सिया ) दीनोंपर दया करनेवाला दूसरा कौन है ? आप शीलके भण्डार, ज्ञानियोंके शिरोमणि, शरणागतोंके पालक और आश्रितोंके रक्षक हैं ॥१॥ आपके समान समर्थ कौन है ? आर स जाननेवाले हैं, सारे चराचरके स्वामी हैं, और शिवजीके प्रेमके मानसरोधरमें ( विहार करनेवाले ) हंस हैं । ( दूसरा ) कौन ऐसा स्वामी है जिसने प्रेमके वश होकर पक्षी ( जटायु ), राक्षस ( विभीषण ), बन्दर भील ( निपाद ) और भालुओंको अपना मित्र बनाया है ? ॥२॥ हे नाथ मायाका सारा प्रपञ्च एवं जीवोंके दोष, गुण, कर्म और काल सब आपकी ही हाथ हैं । यह तुलसीदास, भला हो या बुरा, आपका ही है । तब इसकी ओर कृपादृष्टि कर इसे निहाल कर दीजिये ॥३॥

राग सारंग

[ १५५ ]

विश्वास एक राम-नामको ।

मानव नहीं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन चामको ॥ १ ॥

यो न छठी छ भत रिगु जजुर अथर्वन सामको ।

। तप सुनि सहमत पचि मरै करै तन छाम को ? ॥ २ ॥

। कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दामको ।

। राग जोग जप तप, भय लोभ मोह क्रोध कामको ॥ ३ ॥

। सब लायक भव गायक रघुनायक गुन-ग्रामको ।

। म-कामतरु-तर डर कौन घोर घन घामको ॥ ४ ॥

। ने को जैहै जमपुर को सुरपुर पर-धामको ।

। बहुत मलो लागत जग जीवन रामगुलामको ॥ ५ ॥

वार्थ-मुझे तो एक राम-नामका ही विश्वास है । मेरे कुटिल  
 छ पैसा ही स्वभाव है, कि वह और कहीं विश्वास ही  
 रता ॥१॥ छः ( न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा,

। शास्त्रोंका तथा ऋक्, यजु, अथर्वण और साम वेदोंका  
 तो मेरी छटोमें ही नहीं पड़ा ( भाष्यमें ही नहीं लिखा  
 है, और व्रत, तीर्थ, तप आदिका तो नाम सुनकर मन डर रहा  
 । ( इन साधनोंमें ) पच-पचकर मरे या शरीरको क्षीण करे ? ॥२॥

। ( यज्ञादि ) कलियुगमें कठिन है, और उनका होना भी घनके  
 है । ( भव रहे ) ज्ञान, वैराग्य, योग, जप और ध्यान,  
 के करनेमें काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, अहंकार,

। ( सार )

## विनय-पत्रिका

का क्या डर है ? भाव यह है, कि ये भ्रान्तके घरा होकर विपयों  
पँस सकते । इससे पाप-ताप उनसे सदा दूर रहते हैं ॥३॥ कौन  
है, कि कौन नरक जायगा, कौन स्वर्ग जायगा और कौन परम  
जायगा ? तुलसीदासको तो इस संसारमें रामजीका गुलाम होकर  
ही बहुत अच्छा लगता है ॥५॥

[ १५६ ]

कलि नाम कामतरु रामको ।

दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घामको ॥  
नाम लेत दाहिनो होत मन, घाम विघाता घामको ।  
कहत मुनीस महेस महात्म, उलटे घूषे नामको ॥  
मलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित-ललामको ।  
तुलसी जग जानियत नामते सोच न कूच मुकामको ॥

भावार्थ—कलियुगमें श्रीराम-नाम ही कल्पवृक्ष है । क्योंकि,  
दारिद्र्य, दुर्भिक्ष, दुःख, दोष और घनघटा ( अज्ञान ) तथा कड़ी  
( विषय-विलास ) का नाश करनेवाला है ॥१॥ राम-नाम लेते ही प्रतिकूल  
विघाताका प्रतिकूल मन भी अनुकूल हो जाता है । मुनीश्वर वाल्मीकि  
उलटे अर्थात् 'मरा मरा' नामकी महिमा गायी है और शिवजीने सी  
राम-नामका माहात्म्य यताया है । तात्पर्य यह है, कि उलटा नाम जपते  
जपते वाल्मीकि व्याघ्रासे ब्रह्मर्षि हो गये और शिवजी सीघा नाम जपते  
हलाहल विषका पान कर गये तथा स्वयं भगवत्स्वरूप माने गये ॥  
जिसे इस परम सुन्दर राम-नामका बल है, उसके लोक और परलो



## बिनाय-पत्रिका

सहल है ( क्योंकि ये सेवककी भूल-चूककी ओर देखने ही नहीं )  
अपने भक्तोंके घट-घटमें, चारों युगोंमें चारों पहर, जागते रहते।  
( हृदयमें घैटकर सदा रमयाली करते हैं । ) अपराध से  
सेवकपर क्रोध नहीं करते । परन्तु जब अपने सेवककी गुणावली सु  
हैं, तब उसपर रोभ जाते हैं ॥४॥ जिन्हें भजनेसे, तिर्यक् योनिके ( प  
पथी ) एयं तामसी शरीरवाले ( राक्षस ) भी तीनों लोकोंके तिलक बन  
हे तुलसी ! ऐसे ( सुन्दर, सुशील, सुन्दर, भक्तवत्सल, चतुर, पतितपाप  
प्रभुकी जो नहीं भजते उनपर विधाता प्रतिकूल ही है ॥५॥

राग नट

[ १५८ ]

कैसे देउं नायहिं खोरि ।

काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥ १ ॥  
बहुत प्रीति पुजाइवे पर, पूजिबे पर थोरि ।  
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥ २ ॥  
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।  
संग-बस किये सुम सुनाये सकल लोक निहोरि ॥ ३ ॥  
करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि ।  
पैठि उर बरवस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥ ४ ॥  
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यौं, गरे आसा-डोरि ।  
चात कहाँ बनाइ बुध ज्यौं, धर बिराग निचोरि ॥ ५ ॥  
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई धोरि ।  
निलजता पर रीझि रघुपर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥ ६ ॥

भावाथ—स्वामीको कैसे दोष दूँ ? हे हरे ! मेरा मन तुम्हारी भक्तिको  
 इकर कामनाओंमें फँसा हुआ इधर-उधर भटकता करता है ॥१॥  
 मेने पुजानेमें तो मेरा बड़ा प्रेम है, सदा यही चाहता हूँ, कि लोग मुझे  
 नी-भक्त मानकर पूजा करें, किन्तु तुम्हें पूजनेमें मेरी बहुत ही कम  
 ति है । दूसरोंको तो खूब सीख दिया करता हूँ, पर स्वयं किसीकी  
 आशा नहीं मानता । मेरी ऐसी मूर्खता है ॥२॥ जिन-जिन पापोंको मैंने  
 अनुरागसे किया था, उन्हें तो हृदयमें छिपाकर रखता हूँ । पर  
 भी किसी अच्छे संगके प्रभावसे ( बिना ही प्रेम ) मुझसे जो कोई अच्छे  
 काम बन गये हैं, उन्हें दुनियाको निहोरा कर-कर सुनाता फिरता हूँ ।  
 भाव यह, कि मुझे कोई पापी न समझकर बड़ा धर्मात्मा समझे ॥३॥  
 भी जो कुछ सत्कर्म बन जाता है उसे खेतमें पड़े हुए अन्नके दानोंकी  
 तरह बटोर-बटोरकर रख लेता हूँ, किन्तु हे दयानिधान ! दम्भ  
 अवरदस्ती हृदयमें घुसकर उसे बाहर निकाल फेंकता है । भाव यह  
 कि दम्भ बढ़कर थोड़े-बहुत सुरुतको भी नष्ट कर देता है ॥४॥  
 उसके सिवा लोभ मेरे मनको आशारूपी रस्सीसे इस तरह नचा रहा  
 है, जैसे धाजीगर चन्द्रके गलेमें डोरी बाँधकर उसे मनमाना नचाता है  
 (तनेपर भी मैं दम्भसे) एक बड़े पण्डितकी नाई परम धैर्याग्यके  
 अर्थकी धारें घना-घनाकर सुनाता फिरता हूँ ॥५॥ इतना ( दम्भी )  
 होनेपर भी मैं तुम्हारा ( दास ) कहता हूँ । लाजको तो मानों मैं धोकर  
 ही पी गया हूँ । हे रघुनाथजी ! तुम उदार हो, इस निर्लज्जतापर ही  
 रोमाँकर तुलसीका बन्धन काट दो । (मुझे भय-बन्धनसे मुक्त कर दो) ॥६॥



है प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।

सीलसिंधु कृपालु नाथ अनाथ आस्त-पांसु ॥१॥

बेष वचन विराग मन अथ अवगुननिको कोसु ।

राम प्रीति-प्रतीति पोली, कपट-करतव ठोसु ॥२॥

राग-रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु ।

चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यो खरगोसु ॥३॥

संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहि घोसु ।

दंभहू कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥४॥

मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।

रामनाम प्रभाव मुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभो ! सब मेरा ही दोष है । आप तो शीलके कृपालु, अनाथके नाथ और दीन-दुखियोंके पालने-पोसनेवाले हैं । भेष और वचनोंमें तो वैराग्य दीखता है, किन्तु मेरा मन पराई अवगुणोंका स्वज्ञाना है । हे रामजी ! आपके प्रेम और दिव्यास्तमे मेरा मन पोटा है अर्थात् उसमें तनिक भी प्रेम और विभवास्त नहीं, कपटकी करनीके लिये तो मूथ टोम है, कपट-ही-कपट मेरा है जैसे खरगोश सियारकी सेवा करके सिंहकी कीर्ति घाहता है, वैसे कुम्भगतिसे तो प्रेम करता हूँ और साधुओंके संगमें गुँहालाया करता हूँ (जैसे खरगोश गीदड़के बालपर सिंहकी-सी कीर्ति घाहता सियार तो उसका ही डालता है । कीर्तिके बदले प्राण ही )

ले हैं। इसी प्रकार जो कुसंगमें पड़कर कीर्ति चाहता है, उसे कीर्तिका  
लना तो दूर रहा, उसके सद्गुणोंका भी नाश हो जायगा, जिससे  
रम्यार मृत्युके चक्रमें जाना पड़ेगा।) ॥३॥ शिवजीका उपदेश यही  
कि 'नित्य जीभसे राम-नामका कीर्तन करो।' कलियुगमें दम्भसे भी  
दिया हुआ राम-नाम अगस्त्यकी तरह दुःख-सागरको सोख लेता है  
दम्भसे लिया हुआ नाम भी लोक-परलोक दोनोंकी चिन्ताओंको दूर कर  
ता है) ॥४॥ यह राम-नाम आनन्द और कल्याणकी जड़ है। श्रीराम-  
नाम अपने लिये ऐसा अत्यन्त अनुकूल है कि जिसकी किसी अनुकूलतामें  
तुलना नहीं हो सकती। राम-नामका ऐसा प्रभाव सुनकर तुलसीकां  
री परम सन्तोष है (क्योंकि यही उसका अवलम्बन है) ॥५॥

[ १६० ]

मैं हरि पतित-पावन सुने ।

मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥१॥

व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने ।

और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥२॥

जानि नाम अजानि लीन्हें नरक सुरपुर\* भने ।

दासतुलसी सरन आयो, राखिये आपने ॥३॥

\* आजकलकी प्रचलित प्रतियोंमें प्रायः 'नरक जमपुर भने' पाठ  
है। परन्तु मैंने एक प्राचीन प्रतिमें 'नरक सुरपुर भने' पाठ देखा था और  
यही ठीक मारूम होता है, क्योंकि नरक और जमपुर एकपर्यावाचक होनेसे  
पुनरुक्ति दोष आता है; इसके सिवा बिना जाने भी अन्तकालमें भगवान्-  
का नाम लेनेवालेकी मुक्ति बतायी गयी है, न कि स्वर्गगमन; इसलिये  
यही पाठ ठीक है।

## चित्तय-पत्रिका

भावार्थ—हे हरे ! मैंने तुम्हें पतितोंको पवित्र  
सो मैं तो पतित हूँ और तुम पतितपावन हो; बस दीनो  
गये, दोनोंका मेल मिल गया। (अब मेरे पावन होनेमें  
है?) ॥१॥ वेद साक्षी दे रहे हैं, कि तुमने व्याध (वाल्मीकि  
(पिंगला घेदया), गजेन्द्र और अजामिलकी तथा और भी  
को संसार-सागरसे पार कर दिया है, जिनकी गिनती ही  
सकती है? ॥२॥ जिन्होंने जानकर या बिना जाने तुम्हा  
लिया, उन्हें नरक और स्वर्गमें जानेकी मनाई कर दी  
अर्थात् वे भवसागरसे पार होकर मुक्त हो जाते हैं (यह  
बूझकर ही अब) तुलसी भी तुम्हारी शरणमें आया  
अपना लो ॥३॥

राग मलार

[ १६१ ]

तो सौ प्रभु जो पै कहूँ कोउ होतो ।

तौ सहि निपट निरादर निसिदिन, रटि लटि ऐसो घटि को  
कृपा-सुधा-जलदान माँगियो कहीं सो साँच निसि  
खाति-सनेह-सलिल-सुख चाहत चित-चावक सोषो  
काल-करम-बस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कुछ मो  
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भमरि लेत गो  
दुराव दासतुलसी उर क्यों कहि आवत ओ  
राज राय दभरथ के, लयो बयो बिनु जो

मावार्थ—यदि तुझ-सरीखा कहीं कोई दूसरा (समर्थ स्वामी) होता, तो मला ऐसा कौन क्षुद्र था, जो निपट ही निरादर सहकर एवं दिन-जत तेरा नाम रट-रटकर दुबला होता ? ॥१॥ मैं जो तुझसे कृपारूपी ममृतजल माँग रहा हूँ, वह सबमुच ही निराला है। मेरा चित्तरूपी आतकका यथा प्रेमरूपी स्वातिनक्षत्रका आनन्दरूपी जल चाहता है ॥२॥ हाल तथा कर्मके प्रभावसे यदि कमी-कमी मनमें कोई बुरी कामना आ जाती है, (जिससे तेरी ओरसे चित्त हटने लगता है) तो यह पेमा ही है, जैसे आनन्दसे जलमें रहनी हुई मछली कमी-कमी उछलकर फिर घबराकर उसीमें गोता लगा जाती है (जैसे मछलीको क्षणभरका भी जलका वियोग सहन नहीं होता, वैसे ही मेरा चित्त-आतक तेरे प्रेम-जलसे अलग होनेपर घबरा जाता है, और फिर तेरे ही लिये बेछा करता है) ॥३॥ (परन्तु ऐसा कहना भी नहीं बनता क्योंकि) तुलसी-दासके हृदयमें जितना कष्ट है, उतना किस प्रकार कहा जा सकता है ? पर हे वरारथ-दुलारे ! तेरे राज्यमें लोगोंले विना ही जोते-बाँपे पाया है। अर्थात् विना ही सत्कर्म किये केवल तेरे नामसे ही अनेक पापी तर गये हैं, वैसे ही मैं भी तर जाऊँगा, यही विश्वास है ॥४॥

राग सोरठ

[ १६२ ]

ऐसो को उदार जग माहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिम कोउ नाहीं ॥१॥

## पिनय-पत्रिका

जो गति जोग चिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी  
सो गति देत गीघ सबरी कहैं प्रभु न बहुत जिय जानी  
जो संपति दस सीस अरप करि रावन .सिव पहुँ लीन्हौं  
सो संपदा विभीषन कहैं अति सकुच-सहित हरि दीन्हौं  
तुलसिदास सब भौति सकल मुख जो चाहसि मन मेरो  
तां भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो

भावार्थ—संसारमें ऐसा और कौन उदार है, जो बिना  
किये दोन-दुखियोंपर (उन्हें देखते ही) द्रवित हो जाता हो ?  
श्रीरामचन्द्र ही हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं ॥१॥ बड़े-  
मुनि योग, वैराग्य आदि अनेक साधन करके भी जिस परम  
नहीं पाते, वह गति प्रभु रघुनाथजीने गीघ और शबरीतकको दे  
उसको उन्होंने अपने मनमें कुछ बहुत नहीं समझा ॥२॥ जिस सा  
रावणने शिबजीको अपने दसोंसिर चढ़ाकर प्राप्त किया था, वही  
श्रीरामजीने बड़े ही संकोचके साथ विभीषणको दे डाली ॥३॥ तुल  
कहते हैं, कि अरे मेरे मन, जो तू सब तरहसे सब सुख चाहता है, तो  
जीका भजन कर । कृपा-निधान प्रभु तेरी सारी कामनाएँ पूरी करे

[ १६३ ]

एकै दानि-सिरोमनि साँचो ।

जोइ जाच्यो सोइ जाचकतावस, फिरि बहु नाच न नाच्यो  
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये  
कोसलपालु कृपालु कलपतरु, द्रवत सकुच सिर नाये



तिय-विरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसरार्ई ।  
 रन परयो बंधु विभीषन ही को, सोच हृदय अधिकार्ई ॥३॥  
 घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, मद्र जय जहँ पहुनार्ई ।  
 तय तहँ कहि सखरीके फलनिकी रुचि मांधुरी न पार्ई ॥३॥  
 सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नार्ई ।  
 केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बढार्ई ॥५॥  
 प्रेम-कनौड़ो रामसो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न मारई ।  
 तेरो रिनी हौं कस्यो कपि सों ऐसी मानिहि को सेवकारई ॥६॥  
 तुलसी राम-संनह-सील लखि, जो न भगति उर आई ।  
 ती तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गवाँई ॥७॥

भावार्थ—प्रीतिकी रीति एक श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं। श्रीराम  
 सब नातोंको छोड़कर केवल प्रेमका ही नाता रखते हैं ॥१॥ जिन मंहार  
 दशरथने प्रेमके निमानेमें शरीर छोड़कर, अपनी अचल कीर्ति स्थापित  
 कर दी, उन प्रेमी पितासे भी आपने जटायु गीघपर अधिक ममता और  
 गुण-गौरवता दिखायी, (दशरथका मरण रामके सामने नहीं हुआ, परन्तु  
 प्यारे गीघके प्राण तो रामकी गोदमें निकले और हाथों पिण्डदान देकर  
 उसका उद्धार किया) ॥२॥ मिश्र सुग्रीवको स्त्रीके विरहमें देखकर आपने  
 अपनी प्राणाधिका प्यारी सीताजीको भी भुला दिया (जानकीजीका पग  
 लगानेकी घात भुला पहले थालिको मारकर सुग्रीवका दुःख दूर किया)।  
 रणभूमिमें शक्तिके लगनेसे प्यारे भाई लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पड़े हैं, पर  
 (उनका दुःख भूलकर) आप हृदयमें विभीषणहीकी विगता करने सेने





## धिनय-पत्रिका

मिलि मुनिबृन्द फिरत दंडक वन, सां चरचा न चलाई।  
चारहि चार गीघ सघरीकी वरनत प्रीति सुहाई।  
खान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई।  
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई।  
सहि दरबार दीनको आदर, रीति सदा चलि आई।  
दीनदयालु दीन तुलसीकी काहु न सुरति कराई।

भावार्थ—हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी यही यद्दाई है, कि आप धनि  
घनान्धोंका, गण्यमान्योंका (धन या विद्या या पदके अभिमानीयों  
अनादर कर गरीबोंका आदर करते हैं, उनपर बड़ी कृपा करते हैं ॥१॥  
अनेक साधन करके धक गये, पर उन्हें आपने स्वप्नमें भी दर्शन न  
किन्तु निषाद एवं कष्टी रीति, यन्दर और राक्षस ( विभीषण ) के  
भार-चारा कर लिया, (इसीलिये कि ये सब दीन-निरभिमानों थे) ॥२॥  
कारणमें घूमते तो फिरे मुनियोंके साथ हिलमिलकर, परन्तु उन  
चर्चातक नहीं चलायी, लेकिन गीघ ( जटायु ) और शबरीके  
चारम्बार सुन्दर बखान करना आपको सदा अच्छा लगा । (यह  
यही दीनता और निरभिमानकी बात है) ॥३॥ कुत्तेके कहनेपर संन्यास  
तो हाथीपर चढ़ाकर नगरके बाहर निकाल दिया और धीसीता  
झूठी निन्दा करनेवाले मूर्ख घोबोंकी अपनी प्रजा समझकर, नी  
अपने नगर अयोध्यामें बसा लिया (क्योंकि यह दीन-गरीबों था) ॥४॥ (इ  
सिद्ध है कि ) इस दरबारमें, रामराज्यमें, दीनोंके आदर करनेकी  
धली आ रही है । किन्तु हे दीनदयालु ! (क्या ) इस  
ध्यान आपको ( आजतक ) किसीने नहीं दिलाया ॥५॥



## विनय-पत्रिका

मिलि मुनिपुंद फिरत दंडक बन, सो चरचा न  
वारहि बार गीध समरीकी बरनत प्रीति  
झान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गवद  
तिप-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर  
पहि दरवार दीनको आदर, रीति सदा बरि  
दीनदयालु दीन तुलसीकी काहु न सुरति

भावार्थ—हे रघुथेष्ट ! आपकी यही बड़ाई है, कि

धनान्धोंका, गण्यमान्योंका (धन  
अनादर कर गरीबोंका आदर करते हैं, उनपर घड़ी कृपा कर  
अनेक साधन करके थक गये, पर उन्हें आपने स्वप्न में भी  
किन्तु निषाद पर्व कपटी रीति, बन्दर और राक्षस (विम  
भाई-चारा कर लिया, (हसीलिये कि ये सब दीन-निरभिमान  
कारण्यमें घूमते तो फिरे मुनियोंके साथ हिलमिलकर, पर  
चर्चातक नहीं चलायी, लेकिन गीध (जटायु) और श  
वारम्बार सुन्दर बखान करना आपको सदा अच्छा लग  
यही दीनता और निरभिमानकी बात है) ॥३॥ कुत्तेके कहनेपर  
तो हाथीपर चढ़ाकर नगरके बाहर निकाल दिया और अ  
भूटी निन्द्रा करनेवाले भूखें घोषीको अपनी प्रजा समस्त  
आपने  
) इस दरवारमें, रामराज्यमें, दीनोंके आदर क  
आ रही है। किन्तु हे दीनदयालु ! (बया  
... आपको (आजतक) किसीने नहीं दिलाया



मायार्थ—दीनोंका ऐसा हिन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। भक्ति कोमल, करुणाके भण्डार और यिना ही कारण दूसरोंका उबार करनेवाले हैं ॥१॥ साधनोंसे रहित, दीन, गौतम ऋषिकी स्त्री बनने अपने पापोंके कारण, शिला हो गयी थी। उसे आपने घरसे बढाकर अपने पवित्र चरणसे छूकर, घोर शापसे छुड़ा दिया ॥२॥ हिंसामें खूब निषाद जिसका तामसी शरीर था, और जो पशुकी तरह वनमें तिरा रहता था, उसे आपने, घंश और जातिका विचार किये बिना ही, प्रेमके बहोकर हृदयसे लगा लिया ॥३॥ यद्यपि इन्द्रके पुत्र जयन्तने (काकेश्य श्रीसीतार्जीके चरणमें चाँच मारकर) इतना भारी अपराध किया कि कुछ कहा नहीं जा सकता तथापि जब वह (याणके मारे धरतीकर रक्ष लिये) सब लोकोंको देख फिरा और फिर शोकसे व्याकुल होकर शरण आया, तब उसको सारा भय दूर कर दिया ॥४॥ जटायु गीघ पक्षीके योनिका था, सदा मांस खाया करता था। उसने ऐसा कौन-सा प्रधारण किया था, कि जिसकी आपने अपने हाथसे, पिताके समान अनर्थकी क्रिया कर सब बातें सुधार दीं, अर्थात् मुक्ति प्रदान कर दी ॥५॥ शबरी नीच जातिकी मूर्खा स्त्री थी। जो लोक और वेद दोनोंसे ही बाहर थी। परन्तु उसका सच्चा प्रेम समझकर कृपालु रघुनाथजीने उसे भी कृपापूर्वक दर्शन देकर उद्धार कर दिया ॥६॥ मुग्धीव यन्दर अपने माई (बालि)के भयसे व्याकुल होकर जब पुकारता हुआ आपको शरणमें आया, तब आपने अपने उस दासका दारुण दुःख नहीं सह सके और गालियों सहकर भी बालिका धध कर डाला ॥७॥ विभीषण, शत्रु (रावण) का माई था और जातिका राक्षस था ! वह किस भजनका अधिकारी था ? किन्तु



और सदा सुख देनेवाली है। जैसे (छोटी-सी) ... के सामने खली जाती है, पर यहाँ मारी हाथी यह जाता है (सर्वो मछलीकी तरह उसमें तैरना नहीं जानता) ॥२॥ जैसे यदि घुलने मिल जाय तो उसे कोई भी जोर लगाकर अलग नहीं कर सकता। चित्त रमको जाननेवाली एक छोटी-सी चीटी उसे अनायास ही (अलग) पा जाती है ॥३॥ जो योगी हृदयमात्रको अपने पेटमें रख (अहमें मत समेटकर, परमेश्वररूप कारणमें कार्यरूप जगत्का लय करके) (अनिद्राको त्यागकर सोता है, यही द्वैतमें आत्यन्तिक रूपसे मुक्त पुरुष भगवान्के परम पदके परमानन्दकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता इस अवस्थामें शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन-रात और देश-काल नहीं रहते (एक सच्चिदानन्दधन प्रभु ही रह जाता है) हे तुलसीदास ! जबतक दशाकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक संशयका समूल नाश नहीं होता

[ १६८ ]

जोपै राम-चरन-रति होती ।

तौ कत त्रिविध मूल निसिबासर सहते विपति निसौती ॥१॥

जो संतोष-सुधा निसिबासर संपनेहुँ कबहुँक पावै ।

तौ कत त्रिपय बिलोकि झूठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै ॥२॥

जो श्रीपति-महिमा विचारि उर मजते भाव बढाए ।

तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥३॥

जे लोडुप भये दास आसके ; ते सचहीके चरे ।

प्रभु-विस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि करे ॥४॥

नहिं एका आचरन भजनको, विनय करत हीं ताते ।

कीजे कृपा दामतुलसी पर, नाथ नामके नाते ॥५॥

मावार्थ—यदि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होता, तो रात-दिन त्यों प्रकारके कष्ट और निम्वालिस विपत्ति हीं क्यों सहनी पड़ती ॥१॥ दि यह मन दिन-रातमें कमी स्वप्नमें भी सन्तोषरूपी अमृत पा जाय, तो स्वप्नरूपी भूटे मृग-जलको देखकर उसके पीछे यह मृग धनकर क्यों दि? ॥२॥ यदि हम भगवान् लक्ष्मीकान्तकी महिमाका हृदयमें विचार-र प्रेम बढ़ाकर उनका भजन करते, तो आज कुत्तेकी तरह द्वार-द्वार ट दिखाते हुए क्यों मारे-मारे फिरते ? ॥३॥ जो लोभी आशाके दास न गये हैं, वे तो समीके गुलाम हैं ( विपयोंकी आशा रखनेवालेको हीं यकी गुलामी करनी पड़ती है ) और जिन्होंने भगवान्में विश्वास करके आशाको जीन लिया है, वे हीं भगवान्के सच्चे सेवक हैं ॥४॥ मैं आपसे सलिये विनय कर रहा हूँ, कि मुझमें भजनका तो एक भी आचरण हीं है । (केवल आपका नाम जपता हूँ) । हे नाथ ! तुलसीदासपर स नामके नातेसे हीं कृपा कीजिये ॥५॥

[ १६९ ]

जो मोहि, राम लागते मीठे ।

तां नवरस पटरस-रस अनरस हूँ जाते सब सीठे ॥१॥

बंधक विपय विविध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे ।

यह जानत हीं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥२॥



तुलसीदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति डींठे ।  
 नामकी लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चींठे ॥११॥

भावार्थ—यदि मुझे धीरामचन्द्रजी ही मीठे लगे होते, तो मैं  
 नगरस\* एवं ( भोजनके ) छः रसों नीरस और फीके पड़ जाते ।  
 रामजी मीठे नहीं लगते, इसीलिये विषय-भोग मीठे मालूम होते हैं ।  
 मैं भौंति-भौंतिके शरीर धारणकर यह अनुभव कर चुका हूँ तथा मैंने  
 और देखा भी है कि ( संसारके ) विषय टग हैं । ( मायामें मुक्त  
 परमार्थरूपी धन हर लेते हैं ) यद्यपि यह मैं अपने जीमें अच्छी  
 जानता हूँ, तथापि कर्मा, स्वप्नमें भी, इनसे तृप्त होकर मेरा मन  
 उकताया ( कैसी नीचता है ? ) ॥२॥ पर तुलसीदास अपने स  
 श्रीरघुनाथजीसे एक ही बलपर ये ढिठाई-भरे बचन कह रहा है । (   
 वह बल यह है, कि ) हे नाथ ! आपने अपने नामकी लाजसे नि  
 किसको दया करके ( भयबन्धनसे छूटनेके लिये ) परवाने नहीं लिखा  
 हैं ? ( जिसने आपका नाम लिया, उसीको मुक्तिका परवाना मिल  
 इसीलिये मैं भी यों कह रहा हूँ ) ॥३॥

[ १७० ]

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।

ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो ॥१॥

\* गृहकार, हास्य, कठुणा, वीर, रुद्र, भयानक, वीरस, अद्भुत और ए  
 ये नौ रस हैं ।

। १, तीखा, मीठा, कड़वा, खटा और नमकीन—ये छः भोजनके रस ।

ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर-घरके ।  
 त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निरमल गुनगन रघुवरके ॥ २ ॥  
 ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना पटरस-रति मानी ।  
 राम-प्रसाद-माल जूठन लागि त्यों न ललकि ललचानी ॥ ३ ॥  
 चंदन-चंदचदनि-भूपन-पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।  
 त्यों रघुपति-पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥ ४ ॥  
 ज्यों सब माँति कुदेव कुठाकुर सेये बपु बचन हिये हैं ।  
 त्यों न राम सुकृतग्य जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हैं ॥ ५ ॥  
 चंचल चरन लोभ लागि लोलुप द्वार-द्वार जग धारो ।  
 राम-सीय-आश्रमनि चलत त्यों भये न श्रमित अभारो ॥ ६ ॥  
 मकल अंग पद-विमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है ।  
 ई तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-भूरति कृपामई है ॥ ७ ॥

भावार्थ—मेरा मन आपसे पेरता कभी नहीं लगा, जैसा कि यह कपट  
 छोड़कर, स्वभावसे ही निरन्तर विषयोंमें लगा रहता है ॥१॥ जैसे  
 मैं परारि स्त्रीको ताकता फिरता हूँ, घर-घरके पाप-भरे प्रपञ्च सुनता हूँ,  
 वैसे न तो कभी साधुओंके दर्शन करता हूँ, और न गह्वाजीकी निर्मल  
 गरजोंके समान श्रीरघुनाथजीकी गुणायली ही सुनता हूँ ॥२॥ जैसे नाक  
 अच्छी-बच्छी सुगन्धके रसके भरीन रहती है, और जीम छः रसोंसे  
 प्रेम करती है, वैसे यह नाक भगवान्‌पर चढ़ी हुई मालाके लिये और  
 श्रीरघुनाथ-प्रसादके लिये कभी ललक-ललक कर नहीं ललचानी ॥३॥  
 जैसे यह भयम शरीर चन्दन, चन्द्रचदनी युवती, सुन्दर गहने और

(मुलायम) कपड़ोंको स्पर्श करना चाहता है, वैसे धीरुधरजी चरण-कमलोंका स्पर्श करनेके लिये यह कर्मी नहीं तरसता ॥१॥ मैंने शरीर, वचन और हृदयसे, बुरे-बुरे देवों और दुष्ट स्वामियोंके प्रकारसे सेवा की, वैसे उन रघुनाथजीकी सेवा कर्मी नहीं की, जो (उन सेवासे) अपनेको खूब ही कृतज्ञ मानने लगते हैं और एक बार प्रण करते ही (अपार करुणाके कारण) सकुचा जाते हैं ॥२॥ मैंने चञ्चल चरणोंने लोभवश, लालची बनकर, द्वार-द्वार ठोककर मारी हैं, मैंने ये अभाग्ये श्रीसीतारामजीके (पुण्य) आश्रमोंमें जाकर कर्मी नहीं किये। (स्वप्नमें भी कर्मी भगवान्के पुण्य आश्रमोंमें उठने कष्ट नहीं उठाया) ॥६॥ हे प्रभो ! (इस प्रकार) मेरे सभी भंग झटके चरणोंसे विमुक्त हैं। केवल इस मुखसे आपके नामकी ओट ले रखनी (और यह इसलिये कि) तुलसीको एक यही निश्चय है कि आरक्षी नहीं कृपामयी है (आप कृपासागर होनेके कारण, नामके प्रभावसे मुझे अवश्य अपना लेंगे) ॥७॥

[ १७१ ]

कीजै मोको जमजातनामई ।

राम ! तुमसे मुचि सुहृद साहिबहिं, मैं सठ पीठि दरि ॥१॥

गरभवास दम माम पालि पितु-मातु-रूप दिव कीन्हों ।

जड़हिं विचेरु, सुमील रालहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों ॥२॥

कष्ट करी अंतरजामिहुँ सों, अप म्यापकहिं दुगरीं ।

ऐमेहु कुमति शुमेरक पर रघुपति न कियो मन पारीं ॥३॥

उदर भरों किकर कहाइ बंच्यौ विषयनि हाथ हियो है ।  
 मांसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है ॥४॥  
 पल-पलके उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके ।  
 भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पीके ॥५॥  
 स्वामीकी सेवक-हितता सब, कछु निज साइँ-द्रोहाई ।  
 मैं मति-तुला तौलि देखी मइ मेरेहि दिसि गरुआई ॥६॥  
 एतेहु पर हित करत नाथ भेरो, करि आये, अरु करिहैं ।  
 तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं ॥७॥

भावार्थ—हे नाथ ! मुझे तो आप यमकी यातनामें ही डाल दीजिये,  
 (नरकोंमें ही भेजिये) । क्योंकि, हे श्रीरामजी ! मैं ऐसा दुष्ट हूँ कि मैंने  
 आप-सरीखे पवित्र और सुहृद् ( बिना ही कारण हित करनेवाले )  
 स्वामीको पीट दे रक्खी है ॥१॥ गर्भमें आपने माता-पिताके समान दस  
 महानैवक मेरा पालन-पोषण कर (कितना) हित किया । मुझ मूर्खको आपने  
 शुद्ध ज्ञान, मुझ दुष्टको सुन्दर शील और मुझ अपराधीको आदर दिया ।  
 (इतनेपर भी मैं आपका भजन न करके आपसे उलटा ही चलता हूँ) ॥२॥  
 मैं अन्तर्यामी प्रभुके साथ भी कपट करता हूँ, घट-घटमें रमनेवाले  
 सर्वव्यापीसे अपने पाप छिपाता हूँ । ( परन्तु धन्य है आपको कि ) ऐसे  
 दुर्बुद्धि और नीच नौकरपर भी हे रामजी ! आपने अपना मन प्रतिकूल नहीं  
 किया ॥३॥ पेट तो भरता हूँ, आपका दास कहाकर, किन्तु हृदयको विषयों-  
 के हाथ बेच रक्खा है तो भी मुझ-सरीखे ठगपर भी हे कृपालु ! आपने  
 निष्कपट-भावसे कृपा ही की है ॥४॥ आपके पल-पलके उपकारोंकी

## धिनय-पत्रिका

मलीमाँति जानकर, समझकर भीर सुनकर भी मेरा वज्रसं भी  
कठोर चित्त कभी श्रीजानकीनाथजीके प्रेममें नहीं भिदा ॥१॥ मैं  
अपनी बुद्धिरूपी तराजूपर एक ओर स्वामीकी सारी सेवक-वक्त  
और दूसरी ओर अपना जरा-सा स्वामीद्रोह रखकर तीला, तब देखे  
मेरी ही ओरका पलड़ा भारी निकला ॥६॥ इतनेपर भी हे नाथ !  
छुपाकर मेरा हित ही करते चले आ रहे हैं, करते हैं और करें  
तुलसी अपनी ओरसें जानना है, कि इस कनौड़ेका, (पद्मनाभसे  
हुपका) प्रभु ही पालन करेंगे ॥७॥

[ १७२ ]

कषहुँक हों यहि रहनि रहौंगो ।

श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ॥ १ ॥

जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।

पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम वचन नेम निवहौंगो ॥ २ ॥

परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।

विगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥ ३ ॥

परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।

तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अचिचल हरि-भगति लहौंगो ॥ ४ ॥

भावार्थ—क्या मैं कभी इस रहनीसे रहूँगा ? क्या कृपालु श्रीरघुनाथ-  
जीकी कृपासे कभी मैं सन्तोंका-सा स्वभाव ग्रहण करूँगा ? ॥१॥ जो  
कुछ मिल जायगा उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा, किसीसे ( मनुष्य या देवतासे )

भी नहीं चाहूँगा। निरन्तर दूसरोंकी भलाई करनेमें ही लगा रहूँगा।  
 धन और कर्मसे यम-नियमों का पालन करूँगा ॥२॥ कानोंसे  
 कठोर और असह्य ध्वनि सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई (क्रोधकी)  
 आग न जलूँगा। अभिमान छोड़कर सबमें समबुद्धि रहूँगा और मनको  
 तृप्त रखावूँगा। दूसरोंकी स्तुति-निन्दा कुछ भी नहीं करूँगा (सदा  
 उनके चिन्तनमें लगे हुए मुझको दूसरोंकी स्तुति-निन्दाके लिये  
 स्थान ही नहीं मिलेगा) ॥३॥ शरीर-सम्बन्धी चिन्ताएँ छोड़कर  
 स्वयं और दुःखको समान-भावसे सहूँगा। हे नाथ! क्या तुलसीदास  
 (उपर्युक्त) मार्गपर रहकर कभी अविचल हरि-भक्तिको प्राप्त  
 करेगा? ॥४॥

[ १७३ ]

नाहिंन आवत आन भरोसो ।  
 यहि कलिकाल सकल साधनतरु है श्रम-फलनि फरो सो ॥१॥  
 तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो ।  
 पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि भरि वेद परोसो ॥२॥  
 आगम-विधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो ।  
 सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग चियोग धरो सो ॥३॥  
 काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो ।  
 बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम धरो सो ॥४॥

\* अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय  
 और ईश्वर-प्रणिधान—ये दस यम-नियम हैं ।

बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो ।  
 गुरु कयो राम-मजन नीको मोहिं लगत राज-डगरां सो ॥१॥  
 तुलसी विनु परतीति प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै मरां सो ।  
 रामनाम-बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो ॥१॥

भावार्थ—(श्रीराम-नामके सिवा) मुझे दूसरे किसी (साधन) पर  
 भरोसा नहीं होता। इस कलियुगमें सर्वा साधनरूपी वृक्षोंमें केवल  
 परिश्रमरूपी फल ही फल रहे हैं अर्थात् उन साधनोंमें लगे रहनेमें  
 केवल श्रम ही हाथ लगता है, फल कुछ नहीं होता ॥१॥ तप, तीर्थ, दान,  
 यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे सो करे। किन्तु इन सब कर्मोंका  
 फल पानेपर ही जान पड़ेगा, यद्यपि वेदोंने (पत्तल) भर-भरकर फलोंको  
 परोसा है। भाव यह कि वेदोंमें इन कर्मोंकी बड़ी प्रशंसा है परन्तु  
 कलियुग इन्हें सफल ही नहीं होने देगा तब फल कहाँसे मिलेगा! ॥२॥  
 शास्त्रकी विधिसे मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं, किन्तु उनसे असली  
 कार्यकी सिद्धि नहीं होती। योग-सिद्धियोंके साधनमें सुख स्वप्न भी  
 नहीं है (क्रिया जाननेवालोंके अभावसे) इस साधनमें भी रोग और  
 वियोग प्रस्तुत है (शरीर रोगी हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रियजनसे  
 विछोह हो जाता है।) ॥३॥ काम, क्रोध, मद, लोभ और मोहने भिन्न-भर  
 ज्ञान-वैराग्यको तो हर-सा लिया है। और संन्यास लेनेपर तो यह मत  
 ऐसा धिगड़ जाता है, जैसे पानीके डालनेसे कच्चा घड़ा गल जाता है ॥४॥  
 मुनियोंके अनेक मत हैं, (छः दर्शन हैं) और पुराणोंमें नाना प्रकारके  
 पन्थ देखकर जहाँ-तहाँ झगड़ा-सा ही जान पड़ता है। गुरुने भरे लिये

जिनको ही उत्तम बनलाया है और मुझे भी सीधे राज-मार्गके । यही अच्छा लगता है ॥५॥ हे तुलसी ! विश्वास और प्रेमके बिना पार-पार पच-पचकर मरना हो, यह भले ही मरे, किन्तु संसार-में तरनेके लिये तो राम-नाम ही जहाज है । जिसे पार होना हो, (सपर चढ़कर) पार हो जाय ॥६॥

[ १७४ ]

आके प्रिय न राम-चंदेही  
 जिये ताहि कोटि बेरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥  
 छोड़िये  
 ज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, मरत महतारी ।  
 लिल गुरु तज्यो कंत प्रज-बनितन्हि, भये मुद-भंगलकारी ॥२॥  
 ताने नेह रामके मनियत सुहृद सुसेन्य जहाँ लीं ।  
 प्रंजन कहा आँखि जेहि फूट, बहुतक कहाँ कहाँ लीं ॥३॥  
 तुलसी सां सब भौति परम हित पूज्य प्रानने प्यारी ।  
 नामों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारी ॥४॥

भावार्थ—जिसे श्रीराम-जानकीजी प्यारे नहीं, उमे करोड़ों शत्रुओंके न छोड़ देना चाहिये, चाहे यह अपना अत्यन्त ही प्यारा क्यों न ॥१॥ (उदाहरणके लिये देखिये) प्रह्लादने अपने पिता (द्विष्यकशिपु) विभीषणने अपने भाई

मरतजाने अपनी माता (केकेयी)

दिया, परन्तु ये सभी



## विनय-पात्रिका

आनन्द और कल्याण करनेवाले हुए ॥२॥ जितने सुहृद् और भगवती  
पूजने योग्य लोग हैं, वे सब श्रीरघुनाथजीके ही सम्बन्ध और प्रेमसे  
जाते हैं। यस, अब अधिक क्या कहूँ। जिस अञ्जनके लगानेसे भी नहीं  
जायँ, वह अञ्जन ही किस कामका ? ॥३॥ हे तुलसीदास ! जिसके  
( जिसके संग या उपदेशसे ) धीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम हो, वह  
प्रकारसे अपना परम हितकारी, पूजनीय और प्राणोंसे भी अधिक  
है। हमारा तो यही मत है ॥४॥

[ १७५ ]  
जो पै रहनि लगन रामसों नहीं ।

तौ नर खर कूकर सुकर सम वृथा जियत जग माहीं ॥१॥  
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबहीके ।  
मनुज देह सुर-साधु सराहत, सो सनेह सिप-पीके ॥२॥  
घर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।  
पिनु हरिमजन ईदारुनके फल तजत नहीं करुआई ॥३॥  
फीरति, कुल, करतूति, भूति मलि, सील सरूप सलोने ।  
तुलसी प्रसू-अनुराग-रहित जस सालन साग अलौने ॥४॥

भावार्थ—जिगरी धीरामचन्द्रजीमें प्रीति नहीं है, वह इस संसारके  
मदरे, कुत्ते और सुभक्तके समान वृथा ही जी रहा है ॥१॥ काम, क्रोध,  
मद, लोभ, नींद, भय, भूख और प्यास तो सभीमें है। पर जिग वानके  
लिये देवता और सगुणन इस मनुष्य-शरीरकी प्रसंगा करने हैं।

वह तो थीसितानाथ रघुनाथजीका प्रेम ही है ( भगवत्प्रेमसे ही मनुष्य-  
जीवनकी मार्यकता है ) ॥२॥ कोई शूरवीर, सुचतुर, माता-पिताकी आज्ञा-  
में रहनेवाला सुपुत्र, सुन्दर लक्षणवाला तथा बड़े-बड़े गुणोंसे युक्त भले ही  
श्रेष्ठ गिना जाता हो परन्तु यदि वह हरिभजन नहीं करता है तो वह इन्द्रा-  
णके फलके समान है, जो ( सब प्रकारसे देखनेमें सुन्दर होनेपर भी )  
भयना कड़वापन नहीं छोड़ता ॥३॥ कीर्ति, ऊँचा कुल, अच्छी करनी,  
वर्षा विभूति, शील और लावण्यमय स्वरूप होनेपर यदि वह प्रभु  
धीरामचन्द्रजीके भक्ति प्रेमसे रहित है, तो ये सब गुण ऐसे ही हैं, जैसे  
बिना नमककी साग-भाजी ॥४॥

[ १७६ ]

।।ख्यो राम सुखामी सों नीच नेह न नातो । एते अनादर हूँ तोहि ते  
न हातो ।।१।  
जोरे नये नाते नेह फोकट फीके । देहके दाहक, गाहक जीके ।।२।  
प्रपने अपने को सब चाहत नीको । मूल दुहूँको दयालु दूलह सी को ।।३।  
जीवको जीवन प्राणको प्यारो । सुखहूँको सुख रामसो बिसारो ।।४।  
कियाँ करैगो तोसे खलको भलो । ऐसे सुसाहब सों तू कुचाल  
क्यों चलो ।।५।

तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै । राड़उ राउत होत फिरिके जूझै ।।६।

भावार्थ—अरे नीच ! तूने तो श्रीरामचन्द्रजी-सरीवे सुन्दर स्वामीसे न  
तां प्रेम ही किया और न सम्बन्ध ही जोड़ा । परन्तु इतना अनादर करनेपर  
भी उन्होंने तुझे नहीं छोड़ा ॥१॥ तूने ( जन्म-जन्मान्तरमें ) नये-नये नातं  
और नया-नया प्रेम जोड़ा, जो सब व्यर्थ और नीरस थे तथा (उलटते)

या स्वार्थी तो पागलोंकी-सी ही बानें किया करते हैं। (भाय य  
 भाय जो नित्य अपने अनौपर कृपा-दृष्टि रखते हैं उनके लिये तो  
 ता है कि भाय चाहे उद्दामन हो जायँ और मेरे लिये यह अभिमान  
 घात कहता है कि मुझे तो आपकी ही आशा है, यह पागलोंकी-स  
 ही तो हैं) ॥१॥ जो मेघ पानीका दान करता है, सारे प्राणिपौक  
 करता है उसे किस वस्तुकी कर्मा है ? पानी देकर जीवनकी रक्ष  
 नेवाले मेघको क्या चाहिये ? परन्तु प्रेमका अटल नियम निवाहनेके  
 ण पपीहेकी ही सराहना होती है। भाय यह कि मेघ पपीहेकी विना  
 किसी स्वार्थके स्वातिका जल देता है, इसमें उदारता मेघकी ही है,  
 तु दूसरी ओर न ताकनेके कारण सराहना चातककी हुआ करती है २  
 व और पुष्ट करनेवाले जलकी मछलीसे लेशमात्र भी लाम नहीं है,  
 मछलीके लिये जलको छोड़कर, ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ यह  
 ने प्राण बचा सके ? भाय यह कि यह जलको छोड़कर कहीं भी  
 घेत नहीं रह सकती। इसी प्रकार आपको मुझसे कोई लाम नहीं,  
 तु मैं आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ ? आपको अपनी शरणमें रखना मी  
 और तारीफ भी मेरी ही होगी ॥३॥ मैं आपकी यलैया लेता हूँ,  
 ये, वहाँके सहारे (सदा) छोटे घबते आये हैं, जहाँ-तहाँ खरे सिजोंके  
 छोटे भी चला करते हैं। भाय यह है, कि आपके सच्चे मरु भसली  
 हैं, और मैं पालण्डी, नकली सिक्का होनेपर भी आपके नामकी  
 से भवसागरसे तर जाऊँगा ॥४॥ आपके दरबारमें भले-बुरे सर्माका  
 ण होता है, चाहे कोई आपके अनुकूल हो या अनिकूल हो (जैसे  
 ण सम्मुख था तथा रावण विमुख था पर दोनों ही मुक्त हो गये)

हे धीरामजी ! मुझे तो केवल आपके कल्याणकारी नामका ही मरोसा है ॥५॥ हे नाथ ! कह देनेसे सब धात बिगड़ जायगी, (सारा भेद खुल जायगा) इससे मनकी मनहीमें रखना अच्छा है, फिर भाप तो हे कृपानिधान ! तुलसीके मनकी सब जानते ही हैं ॥६॥

राग बिलावल

[ १७२ ]

कहाँ जाऊँ, कासों कहाँ, कौन मुनै दीनकी ।  
 त्रिभुवन तुहीं गति सब अंगहीनकी ॥ १ ॥  
 जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं ।  
 निराधारके अधार गुनगन तेरे हैं ॥ २ ॥  
 गजराज-काज खगराज तजि धायो को ।  
 मोसे दौम-कोप पोसे, तोसे माय जायो को ॥ ३ ॥  
 मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आषके ।  
 किये धहुमोल तैं करैया गीष-थाषके ॥ ४ ॥  
 तुलसीकी तेरे ही बनाये, बलि, बनैगी ।  
 प्रभुकी बिलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ॥ ५ ॥

भावार्थ—कहाँ जाऊँ ? किमसे कहूँ ? कौन इस (साधनरूपी धनमे हीन) हीनकी सुनेगा ? मुझ-सरीये सब तरहमें साधनहीनकी गति तो, नीनों लोकमें एकमात्र नू ही है ॥१॥ यों तो दुनियामें घर-घर 'जगदीश' मरे हैं (गर्भी भपनेको ईदपर कहते हैं) पर जिसके कोई भाषार नहीं, उमके

ये तो एक तेरे गुणसमूहका (गान ही) आधार है। भायं यह कि, तेरे ही गानका गान कर वह संसार-सागरको पार करता है ॥२॥ गजराजको मारनेके लिये गरुड़को छोड़कर कौन दौड़ा था ? जिसने मुझ-जैसे गानके भण्डारका भी पालन-पोषण किया, ऐसा एक तुझे छोड़कर, किसको किस माताने जना है ? ॥३॥ मुझ-जैसे क्रूर, कायर, कुपूत और धी कौड़ीकी कीमतवालोंको भी, हे जटायुके थाड़ करनेवाले ! तूने मूल्य घना दिया ॥४॥ बलिहारी ! तुलसीकी (विगड़ी हुई) बात तेरे ही लिये घन सकेगी। यदि तूने मेरा उद्धार करनेमें देर की, तो फिर यह रूपी माता दुःख और दोषरूपी सन्तान ही जनेगी। भायं यह कि, तू रूपाके शीघ्र उद्धार न करेगा तो मैं पाप और दुःखोंसे ही घिर जाऊँगा ॥५॥

[ १८० ]

धारक विलोकि बलि कीर्ति मोहिं आपनो ।  
 राय दसरथके तू उथपन-धापनो ॥ १ ॥  
 साहिव सरनपाल सफल न दूसरो ।  
 तेरो नाम लेत ही सुखेत होत उमरो ॥ २ ॥  
 पचन करम तेरे मेरे मन गढ़े हैं ।  
 देगे मुने जाने में जहान जेते बड़े हैं ॥ ३ ॥  
 कौन कियो समाधान सनमान सीलाको ।  
 भृगुनाथ मो रिषी जितया कौन सीला को ॥ ४ ॥  
 मातु-पितु-बंधु-हित, लोक-वेदपाल को ।  
 बोलको अचल, नव करत निहान को ॥ ५ ॥

संग्रही सनेहबस अधम असाधुको ।  
 गीष सचरीको कही करिई सराधु को ॥ ६ ॥  
 निराधारको अधार, दीनको दयालु को ।  
 मीत कपि-कैवट-रजनिचर-मालु को ॥ ७ ॥  
 रंक, निरगुनी, नीच जितने निवाजे हैं ।  
 महाराज ! गुजन-समाज ते बिराजे हैं ॥ ८ ॥  
 साँची विरुदावली न पढ़ि कहि गई है ।  
 मीलसिंधु ! डील तुलसीकी बेर भई है ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे माध, चलिहारी ! एक बार मेरी भोग देगकर मुझे  
 बदना लीजिये । हे धीन्द्रावध-जन्दन ! आप उगड़े हुए जीपोंको फिरसे  
 समानेवाले हैं ॥१॥ आपके समान कोई दूसरा शरणागतोंका पालनेवाला  
 परमविमान् स्वामी नहीं है । आपका नाम लेते ही उगर गंग की  
 दरजाऊ हो जाता है । आप यह कि जिनके भाग्यमें गुणका संज्ञा भी  
 नहीं है वे भी आपके नामके जपमें भक्ति-प्राप्तकों प्राप्तकर परम आनन्द  
 प्राप्त करते हैं ॥२॥ आपके यजन भीरु बर्म भेरे मनमें गढ़ गये हैं (गान्ध-  
 पानपर हीनोंके उदारकी प्रशिक्षा, भीरु धर्माभिर, गलिबा आदि हीनोंके  
 उदारकी बर्म देवकर मुझे यह विचार हो गया है) भीरु हीने उन  
 गैलोंको भी देग, गुन भीरु समस्त लिये है जो दुर्मियोंने बड़े बड़े जाने  
 हैं ॥३॥ उनमेंसे विराने शिखा बर्मा हुई अदरवाका शरु दूर कर उगे  
 शरणे प्रदान की, भीरु विराने लीलाते ही परगुणम हीने महाबोधी  
 बरिबो जौन लिये । (विराने नहीं) ॥४॥ आपका, पिना भीरु मरिंके

लिये किसने लोक और वेदकी मर्यादाका पालन किया ? अपने वचनों  
अडिग कौन है ? और प्रणाम करने ही प्रणतको कौन निहाल कर दे  
है ? (केवल एक थीरघुनायजी ही) ॥५॥ प्रेमके अधीन होकर किस  
नीचों और दुष्टोंको इकट्ठा किया, अपनाया ? गीच और शबरीका मित्र  
माताकी तरह कौन थाद करेगा ? ॥६॥ जिनके कहीं कोई सहारा न  
है, उनका आधार कौन है ? दीनोंपर दया करनेवाला कौन है ? और  
बन्दर, महुआह, राक्षस तथा रीछोंका मित्र कौन है ? (सिधा रघुनाथजीके  
दूसरा कोई नहीं) ॥७॥ हे महाराज ! आपने जितने कंगाल, मूर्ख और  
नीचोंको निहाल किया है, वे सब ही आज सन्तोंके समाजमें विराजित  
हो रहे हैं ॥८॥ यह आपकी सच्ची-सच्ची बढ़ाई कही गयी है, (एक मसर  
भी) बढ़ाकर नहीं कहा है। किन्तु हे शीलके समुद्र ! तुलसीदासके ही  
लिये इतनी देर क्यों हो रही है ? ॥९॥

[ १८१ ]

केह भाँति कृपासिंघु मेरी ओर हेरिये ।

मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिये ॥ १ ॥

सहस सिलातें अति जड़ मति भई है ।

कासों कहीं, कौने गति पाहनहिं दई है ॥ २ ॥

पद-राग-जाग चहीं कौंसिक ज्यों कियो हैं ।

कलि-मल खल देखि मारी भीति भियो हैं ॥ ३ ॥

करम-कपीस बालि-बली-त्रास-त्रस्यो हैं ।

चाहत अनाथ-नाथ ! तेरी बाँह भस्यो हैं ॥ ४ ॥

महा मोह-रावन विभीषण ज्यों हयो हैं ।

त्राहि, तुलसीस ! त्राहि, तिहूँ ताप तयो हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे रुपासागर ! किसी भी तरह मेरी ओर देखो । मुझे और  
 नहीं ठौर-ठिकाना नहीं है, एक तुम्हारा ही पक्का आसरा है ॥१॥ मेरी  
 छि हजार शिलाओंसे भी अधिक जड़ हो गयी है । (अब मैं उसे चैतन्य  
 रत्नेके लिये) और किससे कहूँ ? पत्थरोंको ( तुम्हारे सिवा और )  
 हसने मुक किया है ? ॥२॥ जिस प्रकार महर्षि विश्वामित्रने ( तुम्हारी  
 रा-रेखमें निर्विघ्न ) यज्ञ किया था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे चरणोंमें  
 मरूपी एक यज्ञ करना चाहता हूँ । किन्तु कलिके पापरूपी दुष्टोंको देख-  
 कर मैं बहुत ही भयभीत हो रहा हूँ । ( जैसे मारीच, ताड़का आदिसे  
 अपने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की थी वैसे ही इन पापोंसे बचाकर  
 श्वे भी चरणकमलोंका प्रेमी बना लो ) ॥३॥ कुटिल कर्मरूपी बन्दरोंके  
 लयान् राजा बालिसे मैं बहुत डर रहा हूँ, सो हे अनार्योंके नाथ ! जैसे  
 अपने बालिको मारकर सुग्रीवको अभय कर दिया था, उसी प्रकार मुझे  
 भी अपनी धाडुकी छायामें बसा लो, इन कोठेन कर्मोंसे बचाकर  
 अपना लो ॥४॥ जैसे राघवने विभीषणको मारा था, उसी प्रकार मुझे  
 भी यह महान् मोह मार रहा है; हे तुलसीके स्वामी ! मैं संसारके तीनों  
 पापोंसे जला जा रहा हूँ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥५॥

[ १८२ ]

नाथ ! गुनगाथ सुनि होत चित चाउ सो ।

राम रीक्षिबेको जानौं भगति न भाउ सो ॥ १ ॥



## विनय-पत्रिका

करम, सुभाउ, काल, ठाकुर न ठाउँ सो ।  
 सुघन न, सुतन न, सुमन, सुआउ सो ॥  
 जाँचौं जल जाहि कहै अमिय पियाउ सो ।  
 कासौं कहीं काहूँ सो न बढ़त हियाउ सो ॥  
 बाप ! बलि जाउँ, आपु करिये उपाउ सो ।  
 तेरेही निहारे परै हारेहूँ सुदाउ सो ॥ ४ ॥  
 तेरेही सुझाये सुझै असुझ सुझाउ सो ।  
 तेरेही बुझाये बुझै अबुझ बुझाउ सो ॥ ५ ॥  
 नाम-अवलंबु-अंबु दीन मीन-राउ सो ।  
 प्रभुसौं बनाइ कहीं जीह जरि जाउ सो ॥ ६ ॥  
 सब भौंति बिगरी है एक सुबनाउ सो ।  
 तुलसी सुसाहिबाहिँ दियो है जनाउ सो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे माय ! आपके गुणोंकी गाथा सुनकर मेरे चित्तमें  
 शा होता है, किन्तु हे रामजी ! तिम्र भक्ति और भावनें भाव  
 होत हैं, उमें मैं नहीं जानता ॥१॥ कारण कि, न तो मेरे कर्म भा  
 न स्वभाव उलम है, और न रामध अच्छा है ( कलियुग है ) । न  
 मादिक है, न कहीं टार-टिकाना है, न ( साधनरूपी उलम ) धन  
 ( संयागणपण ) शरीर है, न ( परमार्थमें लगनेवाला ) उलम मन  
 न ( भक्तनमें पवित्र हुई ) उलम भापु ही है । शारांश, प्रणयप्रतिज्ञा व  
 भाधन मेरे पास नहीं है, सब प्रकारमें निराधार हूँ ॥२॥ त्रिगुण  
 ( ध्यामते मारे ) पानी मींगता है यह उलटा गुणों ही भगून पिया

लिये कहता है। मैं अपनी बात किससे कहूँ ? किसीसे भी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ती ॥३॥ हे बापजी ! बलिहारी ! आप ही मेरे लिये तो कोई अच्छा उपाय कर दीजिये। क्योंकि आपके (रूपादृष्टिसे) देखते ही हारनेपर भी अच्छा द्रव हाथ लग जाता है। भाय, बड़े-बड़े पापी भी आपकी कृपासे वैकुण्ठके अधिकारी हो जाते हैं ॥४॥ आप यदि सुझा दें तो मददय चस्तु भी दीखने लगती है, और आपके समझा देनेपर नहीं समझमें आनेवाला (आपका स्वरूप) पदार्थ भी समझमें आ जाता है। अब आप उसे ही समझा दीजिये ॥५॥ देखिये, आपके नामका जो अणुलम्बन है, वही तो पानी है और उसमें रहनेवाला मैं दीन मीनोंका राजा हूँ, यड़ा भारी मत्स्य हूँ। मैं जो प्रभुके सामने इसमें कुछ भी बनावटी बात कहता होऊँ, तो जीभ जल जाय ॥६॥ मेरी बात समी तरहसे विगड़ चुकी है, केवल एक ही अच्छा वानर बन रहा है, और वह यह, कि तुलसीदासने यह बात अपने दयालु स्वामीकी जना दी है। (अब स्वामी आप ही विगड़ी बनावेंगे) ॥७॥

राग आसावरी

[ १८३ ]

राम ! प्रीतिकी रीति आप नीके जनियत है ।  
 बड़ेकी बड़ाई, छोटेकी छोटाई दूरि करै,  
 ऐसी विरुदावली, बलि, बेद मनियत है ॥ १ ॥  
 गीधको कियो सराध, भीलनीको खायो फल,  
 सोऊ साधु-समा भलीभाँति मनियत है ।

## विनय-पत्रिका

रावरे आदरे लोक वेद हूँ आदरियत,  
जोग ग्यान हूँ तें गरु गनियत है ॥  
प्रभुकी कृपा कृपालु ! कठिन कलि हूँ काल,  
महिमा समृद्धि उर अनियत है ।  
तुलसी पराये पस भये रस अनरस,  
दीनबन्धु ! द्वारे हट ठनियत है ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! प्रीतिकी रीति आपही भलीभाँति जान  
बलिहारी ! वेद आपकी विरदाबलीको इस प्रकार मान रहे हैं कि  
बड़ेका बड़प्पन ( अभिमान ), एवं छोटेकी छोटाई ( दीनता ) क  
कर देते हैं ॥१॥ आपने जटायु गीघका थाढ़ किया और शबरीके  
( घेर ) खाये; यह बात भी सन्त-समाजमें अच्छी तरह बखानी जा  
कि जिस किलीका आपने आदर किया, लोक और वेद दोनों ही उ  
आदर करते हैं । आपका प्रेम, योग तथा ज्ञानसे भी बड़ा माना  
है ॥२॥ हे कृपालु ! आपकी कृपासे इस कठिन कलिकालमें भी आ  
महिमाको समझकर भक्तजन हृदयमें धारण करते हैं । यद्यपि तु  
दूसरोंके ( विषयोंके ) अधीन होनेके कारण ( आपके प्रेमसे ) अ  
अर्थात् प्रेमहीन ही रहा है, तथापि हे दीनबन्धु ! यह आपके द्वारपर घ  
दिये बैठा है ( आपकी कृपा-दृष्टि पाये बिना हटनेका नहीं ) ॥३॥

१८४ ]

राम-नामके जपे जाइ जियकी जरनि ।  
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये,  
जैसे तम नासिबेको चित्रके तरनि ॥ १ ॥

करम-कलाप परिताप पाप-साने सब,  
 ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि ।  
 दंभ, लोभ, लालच, उपासना विनासि नीके,  
 सुगति साधन भई उदर भरनि ॥ २ ॥  
 जोग न समाधि निरुपाधि न विराग-ग्यान,  
 वचन विसेप बेप, कहूँ न करनि ।  
 कपट कुपथ कोटि, कहनि-रहनि खोटि,  
 सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥ ३ ॥  
 मरत महेस उपदेस हूँ कहा करत,  
 सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि ।  
 राम-नामको प्रताप हर कहैं, जपें आप,  
 जुग जुग जाँन जग, बेदहूँ बरनि ॥ ४ ॥  
 भति राम-नाम ही सौं, रति राम-नाम ही सौं,  
 गति राम-नाम ही की विपति-हरनि ।  
 राम-नामसौं प्रतीति प्रीति राखे कपहुँक,  
 तुलसी दरंगे राम आपनी दरनि ॥ ५ ॥

भावार्थ—धीराम-नाम जपनेसे ही मनकी जलन मिट जाती है ।  
 हम कलियुगमें (योग-यज्ञादि) दूसरे साधन तो सब वैसे ही व्यर्थ हो  
 गये हैं जैसे अंधेरा दूर करनेके लिये विप्रलिखित सूर्य व्यर्थ है ॥१॥  
 कर्म तो बहुतेरे दुःख और पापोंमें मने हैं । कर्मोंका करना हम  
 समय वेमा है, जैसे किसी वृक्षमें बड़े ही सुन्दर फूल फूलें, पर फल लगे

ही नहीं। दम्भ, लोभ और लालचने उपासनाका भलीभाँति नाश कर दिया है। और मोक्षका साधन ज्ञान आज पेट भरनेका साधन हो रहा है। (इस प्रकार कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी ही घुरी दशा है) ॥२॥ न तो योग ही बनना है, न समाधि ही उपाधिरहित है, वैराग्य और ज्ञान लम्बी-चौड़ी घातें बनाने और वेद बनानेभरके ही रह गये हैं। करनी कुछ भी नहीं, केवल कथनी है। कपट-भरे करोड़ों कुमार्ग चल पड़े हैं। कहनी और रहनी सभी खोटी हो गयी हैं। सभी अपने-अपने आचरणोंकी सराहना करते हैं ॥३॥ ( एक राम-नामकी महिमा रही है ) शिवजी गंगाके किनारे काशीकी धर्म-भूमिपर मरते समय जीवको क्या उपदेश देते हैं ? वे श्रीराम-नामके प्रतापका वर्णन करते हैं। दूसरों-से कहते हैं और स्वयं भी जपते हैं। अनेक युगोंसे इसे संसार जानता है और वेद भी कहते चले आये हैं ॥५॥ अब तो राम नामहीमें अपनी बुद्धिको लगाना चाहिये, राम-नामहीसे प्रेम करना चाहिये और राम-नामहीकी शरण लेनी चाहिये। क्योंकि एक यही साधना जीवकी जन्म-मरणरूप विपत्तियोंको दूर करनेवाली है। हे तुलसी ! राम-नामपर विश्वास और दृढ़ प्रेम बनाये रखोगा, तो कभी-न-कभी श्रीरामजी अथर्व ही अपने दयालु स्वभावसे तुझपर दया करेंगे ॥५॥

[ १८५ ]

लाज न लागत दास कहावत ।

सो आचरन विमारि मोच तजि, जो हरि तुम कहै भावत ॥१॥

मकल संग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जाग बनावत ।

मो-मम मंद महाखल पाँवर, कौन जवन तेहि पावत ॥२॥

हरि निरमल, मलग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत ।  
 जेहि सर काक कंक वक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥३॥  
 जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप युझावत ।  
 तहँ गये मद मोह लोभ अति, सरगहुँ मिटत न सावत ॥४॥  
 भय-सरिता कहँ नाउ संत, यह कहि औरनि समुझावत ।  
 हौं तिनसौं हरि ! परम वैर करि, तुम सौं भलो मनावत ॥५॥  
 नाहिंन और ठौर मो कहँ, ताते हठि नातो लावत ।  
 रामु सरन उदार-चूड़ामनि ! तुलमिदास गुन गावत ॥६॥

भावार्थ—हे हरे ! मुझे (आपका) दास कहलानेमें लज्जा भी नहीं आती ! जो आचरण आपको अच्छा लगता है, उसे मैं बिना किसी विचारके छोड़ देता हूँ। (सन्तोंके आचरण छोड़ देनेमें मुझे पश्चात्तापतक भी नहीं होता। इतनेपर भी मैं आपका दास बनता हूँ) ॥१॥ मुनिगण जिसे सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर भजते हैं, जिसके लिये जप, तप और यज्ञ करते हैं, उस गमुको मुझ-जैसा मूर्ख, महान् दुष्ट और पापी कैसे पा सकता है ? ॥२॥ भगवान् तो विशुद्ध हैं और मेरा हृदय पापपूर्ण महामलिन है, मुझे यह असमंजस जान पड़ता है। जिन तालाथमें कीच, गांध, थगुले और सूअर रहते हैं वहाँ हंस क्यों आने लगे ? भाव यह कि मेरे काम, क्रोध, लोभ, मोहभरे मलिन हृदयमें भगवान् नहीं आवेंगे। यह तो उन्हीं मुनियोंके हृदय-मन्दिरमें विहार करेंगे जिन्होंने निष्काम कर्म, धैर्याग्य, भक्ति, ज्ञान आदि साधनोंद्वारा अपने हृदयको निर्मल बना लिया है ॥३॥ जिन (तीर्थों) की शरणमें जाकर ज्ञानके साधक पुरुष सांसारिक तानों कटित तापोंको

गुनांग हैं, यहाँ भी जानेपर मुझे तां अहंकार, मजान और लोभ और भी अधिक मतायेंगे, क्योंकि मौलियाइहाद मार्गमें भी नहीं छूटता, यहाँ भी राग लगा फिरता है ॥५॥ मैं दूगरोंको यह कहकर समझाता फिरता हूँ, कि 'श्रेयो, संगाररूपी नशुंके पार जानेके लिये सन्तजन ही नोहाई'— किन्तु, हे हरे! मैं (व्यय) उनसे यही भारी शत्रुता करके भागसे बचना पश्याण चाहता हूँ ॥५॥ (पर येना होनेपर भी कहाँ जाऊँ) मुझे और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है, इसीसे (नालायक होता हुआ भी) आसने जपरदस्ती सम्पन्ध जोड़ता फिरता हूँ। हे दातामोमें शिरोमणि रघुनाथजी! यह तुलसीदास आपके गुण गा रहा है, (भलाई-शुराईकी ओर न देगकर अपने दयालु स्वभावसे ही) इसको अपना लीजिये ॥६॥

[ १८६ ]

कौन जतन चिनती करिये ।

निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥१॥

जेहि साधन हरि ! द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिये ।

जाते विपति-जाल निशिदिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥

जानत हूँ मन बचन करम पर-हित कीन्हें तरिये ।

सो विपरीत देखि पर-सुख, चिनु कारन ही जरिये ॥३॥

श्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये ।

निज अभिमान मोह इरिषा बस तिनहिं न आदरिये ॥४॥

सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते भवनिधि परिये ।

अब नाथ, कौन बलते संसार-सोग हरिये ॥५॥

जब कब निज करुना-सुभावते, द्रवहु तौ निस्तरिये ।  
तुलसीदास विस्वास आन नहिं, कत पचि-पचि मरिये ॥६॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं किस प्रकार आपकी विनती करूँ ? जय अपने (नीच) आचरणोंपर विचार करता हूँ और समझता हूँ, नय हृदयमें हार मानकर डर जाता हूँ (प्रार्थना करनेका साहस ही नहीं रह जाता) ॥१॥ हे हरे ! जिस साधनसे आप मनुष्यको दास जानकर उसपर कृपा करते हैं उसे तो मैं हठपूर्वक छोड़ रहा हूँ । और जहाँ चिपत्तिके जालमें फँसकर दिन-रात दुःख ही मिलता है, उसी (कु) मार्गपर चला करता हूँ ॥२॥ यह जानता हूँ कि मन, ध्वन और कर्मसे दूसरोंकी भलाई करनेसे संसार-सागरसे तर जाऊँगा, पर मैं इससे उलट्टा ही आचरण करता हूँ, दूसरोंके सुखको देखकर बिना ही कारण (ईर्ष्यासे) जला जा रहा हूँ ॥३॥ वेद-पुराण सभीका यह सिद्धान्त है कि खूब बढ़तापूर्वक सत्संगका आश्रय लेना चाहिये, किन्तु मैं अपने अभिमान, अज्ञान और ईर्ष्याके बश कभी सत्संगका आदर नहीं करता, मैं तो सन्तोंसे सदा द्रोह ही किया करता हूँ ॥४॥ (घात तो यह है कि) मुझे सदा घड़ी अच्छा लगता है, जिससे संसार-सागरहीमें पड़ा रहूँ । फिर हे नाथ ! आप ही कहिये, मैं किस बलसे संसारके दुःख दूर करूँ ? ॥५॥ जब कभी आप अपने दयालु स्वभावसे मुझपर पिघल जायँगे तभी मेरा निस्तार होगा, नहीं तो नहीं । क्योंकि तुलसीदासको और किसीका विश्वास ही नहीं है, फिर वह किसलिये (अन्यान्य साधनोंमें) पच-पचकर मरे ॥६॥



ताहि तें आयो सरन सघेरें ।

ग्यान धिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ ! न भेरें ॥१॥

लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैन-दिन घेरें ।

तिनहिँ मिले मन भयो कुपथ-रत, फिरै तिहारेहि फेरें ॥२॥

दोष-निलय यह विषय सोक-ग्रद कहत संत श्रुति टेरें ।

जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो, हरि तुम्हरेहि प्रेरें ? ॥३॥

विष पिपूष सम करहु अग्नि हिम, तारि सकहु विनु घेरें ।

तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहाँ हेरें ॥४॥

यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुवीर भरोसे तेरें ।

तुलसिदास यह विपति बागुरौ तुम्हहिँ सौं बनै निवेरें ॥५॥

भावार्थ—हे नाथ ! (केवल तुम्हारा ही भरोसा है) इसी कारण

मैं पहलेसे ही तुम्हारी शरणमें आ गया हूँ । ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि

साधन तो मेरे पास स्वप्नमें भी नहीं हैं (जिनके बलसे मैं संसार

सागरसे पार हो जाता) ॥१॥ मुझे तो लोभ, अज्ञान, घमण्ड, काम

और क्रोधरूपी शत्रु ही रात-दिन घेरे रहते हैं, ये क्षणभर भी मेरा पिपूष

नहीं छोड़ते । इन सबके साथ मिलकर यह मन भी कुमार्गी हो गया है

अब यह तुम्हारे ही फेरनेसे फिरेगा ॥२॥ सन्तजन और वेद पुकार

कहते हैं कि संसारके यह सब विषय पापोंके घर हैं और

...भी मेरा उन विषयोंमें ही जो इतना अनुराग है

! यह तुम्हारी ही प्रेरणासे तो नहीं है ? (नहीं तो मैं जान

बृहत्कर ऐसा क्यों करता ?) ॥३॥ ( जो कुछ भी हो, तुम चाहो तो )  
 विपकी अमृत पर्व अग्नि को धरफ बना सकते हो और बिना ही जहाजों के  
 संसार-सागर से पार कर सकते हो । तुम-सरीखा कृपालु और परम हित-  
 कारी स्वामी हूँ इने पर भी कहीं नहीं मिलेगा । ( ऐसे स्वामी को पाकर भी  
 मैंने अपना काम नहीं बनाया तो फिर मेरे समान मूर्ख और कौन  
 होगा ? ) ॥४॥ इसी यात्रा को हृदय में जानकर, हे रघुनाथजी ! मैं सब छोड़-  
 छाड़कर तुम्हारे भरोसे आ पड़ा हूँ । तुलसीदासका यह विपत्तिरूपी  
 जाल तुम्हारे ही कांटे कटेगा । ॥५॥

[ १८८ ]

मैं तोहि अब जान्यो संसार ।

बाँधि न सकहि मोहि हरिके बल, प्रगट कपट-आगार ॥ १ ॥

देखत ही कमनीय, कष्ट नाहि न पुनि किये विचार ।

ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार ॥ २ ॥

तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार ।

महामोह-भृगजल-सरिता महँ बोरयो हौं बारहि बार ॥ ३ ॥

सुनु खल ! छल-बल कोटि किये बस होहि न भगत उदार ।

सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार ॥ ४ ॥

तासों करहु चातुरी जो नहि जानै मरम तुम्हार ।

सो परि दूरै मरै रजु-अहि तै, बूझै नहि व्यवहार ॥ ५ ॥

निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार ।

तुलसिदास प्रभुके दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार ॥ ६ ॥

मायार्थ—अरे (मायावी) संसार ! अय मैंने तुझे (यथार्थ) जान लिया, तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है, पर अय मुझे भगवान्‌का थल मिल गया है इससे तू (अपने कपटजालमें) मुझको नहीं धाँच सकता, (परमात्माके थलका आश्रय लेते ही परमात्माकी मायासे बना हुआ संसार सर्वथा नष्ट गया, इसलिये अय मैं संसारके मायार्थी फन्देमें नहीं आ सकता) ॥१॥ तू देखनेमात्रको ही सुन्दर है, पर विचार करनेपर तो कुछ भी नहीं है, वस्तुतः तेरा अस्तित्व ही नहीं है। जैसे केलेके पेड़को देखो, उमनेसे कभी गूदा निकलता ही नहीं (कितना ही छील्लो, छिलका-ही-छिलका निकलता जायगा। यही दशा संसारकी है ॥२॥ अरे, तेरे लिये मैं अनेक जन्मोंमें भटकता फिरा, अनेक योनियोंमें गया, पर तेरा पार नहीं पाया। तू मुझे महामोहरूपी मृगतृष्णाकी नदीमें धार-धार डुवाता ही रहा ॥३॥ अरे दुष्ट ! सुन, तू चाहे करोड़ों प्रकारके छल-बल कर; पर भगवान्‌का परमभक्त तेरे बशमें नहीं हो सकता, तू अपनी (विपर्योकी) सेना-समेत यहाँ जाकर डेरा डाल, जिस हृदयमें धीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण# भगवान्‌का घास न हो (जिस भक्तके हृदयमें भगवान्‌का घास है वहाँ तेरा क्या काम ?) ॥४॥ जो तेरा भेद न जानता ही, उसीके साथ अपनी कपटकी चाल चल। वही रस्तीरूपी साँपसे डरकर मरेगा, जो उसके भेदको न जानता होगा ॥५॥ अरे शठ ! अपने हितकी बात सुन, जो तू कुटुम्ब-समेत अपनी सैर चाहता है तो हठ न कर। तुलसीदासके प्रभु श्रीरघुनाथजीके सेवकोंको छोड़कर तू यहाँ भाग जा जहाँ महंकार

● इससे सिद्ध है कि गोवार्देजी भीराम और श्रीकृष्णमें कोई भेद नहीं मानते थे, जो वास्तविक विद्वान्त है।

और काम रहते हों (जहाँ राम रहते हैं वहाँ अहंकार तथा काम नहीं;  
और जहाँ ये नहीं, वहाँ मायाका संसार कैसे रह सकता है?) ॥६॥

राग गौरी

[ १८९ ]

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।  
नाहिं तौ भव-वेगारि महुँ परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ॥ १ ॥  
बाँस पुरान साज सब अठकठ, सरल तिकोन खटोला रे ।  
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद\*मंद मोल विनु डोला रे ॥ २ ॥  
बिपम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे ।  
मंद विलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥ ३ ॥  
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाउँ बझाऊ रे ।  
जस जस चलिय दूरि तस तस निज वास न भेट लगाऊ रे ॥ ४ ॥  
मारग अगम, संग नाहिं संवल, नाउँ गाउँकर भूला रे ।  
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥ ५ ॥

भावार्थ—अरे भाई ! राम-राम, राम-राम कहते चलो, नहीं तो कहीं  
संसारकी वेगारमें पकड़े जाओगे तो फिर छूटना अत्यन्त कठिन हो  
जायगा । (राजाकी वेगारसे दो-चार दिनोंमें छूटा जा सकता है, पर  
संसारका जन्म-मरणका चक्र तो ज्ञान न होनेतक सदा चलता

\* 'करमचन्द' जुरे प्रारम्भके लिये श्यगोक्ति है । 'बड़ी-बड़ी बातें बनाता है,  
अपने करमचन्दकी करतूत तो देख' लोग ऐसा कहा करते हैं ।

ही रहेगा । यदि राम-राम जपना चला जायगा, तो मायाजन्म विषयरूपी शत्रु तुझे बेगारमें न पकड़ सकेंगे । क्योंकि रामके नामसे रामकी माया नहीं चलती ) ॥१॥ कुटिल कर्मचन्दने ( हमारे पूर्व-जन्म कृत पाप-कर्मोंके प्रारम्भने ) विना ही मौलके ( संसार-चक्रकी कर्म-नुसार स्वभाविक गतिके अनुसार ) ऐमा घुरा खटोला ( मज्जनाही तामसप्रधान मनुष्य-शरीर ) हमें दिया है कि जिसके पुराना तो बौद्ध ( अनादिकालीन अविद्या-मोह ) लगा है, जिसके साज सब अटसंठ हैं ( चित्तकी तामस विषयाकार वृत्तियाँ हैं, जिनके कारण शरीरमें बुरे कर्म होते हैं—मनुष्य कुमार्गमें जाता है ) जो सीधा तिकोन है ( केवल अर्थ-काम और सकाम धर्मकी प्राप्तिमें ही लगा हुआ है, जिसे मोक्षका ध्यान ही नहीं है ) ॥२॥ जिसके ( उठाकर चलनेवाले ) कहार विषम हैं और कामके मदमें मतवाले हो रहे हैं ( शरीरको चलानेवाली पाँच इन्द्रियाँ हैं, कहारोंकी जोड़ी होनी चाहिये, पाँच होनेसे जोड़ी नहीं है इसीलिये विषम हैं, एक-से नहीं हैं और पाँचों ही इन्द्रियाँ विषय-भोगोंके पीछे मतवाली हो रही हैं । कुकर्मोंके कारण जब शरीर और मन ही तामस विषयाकार हैं तब इन्द्रियाँ विषयोंसे हटी हुई कैसे हों ? ) और वे पाँच बटोरकर—समान पैर रखकर नहीं चलते । ( इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंकी ओर दौड़ती हैं ) इससे कमी ऊँचे कमी नीचे चलनेसे घके और झटके लग रहे हैं, इस खींच-तानमें बड़ा ही दुःख हो रहा है । ( कमी स्वर्ग या कीर्ति आदिकी इच्छासे धर्म-कार्यमें, कमी भोगोंकी प्राप्तिके लिये संसारके विविध व्यवसायोंमें, कमी कामयश होकर स्त्रियोंके पीछे । सो भी समानभावसे नहीं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन अपने-अपने विषयों-

द्वारा कमी ऊँचे और कमी नीचे जाती हैं, फलस्वरूप जीव महान् क्रेश पाता है) ॥३॥ रास्तेमें काँटे बिछे हैं, कंकड़ पड़े हैं, ( विपैली ) वेलें लपेटती हैं और झाड़ियाँ उलझा लेती हैं, इसप्रकार जगह-जगह रुकना पड़ना है । ( परमात्माको भुलाकर सांसारिक विषयोंके घने जंगलमें दौड़नेवाली इन्द्रियोंको विषय-नाशरूपी काँटे, प्रतिकूल विषयरूपी कंकड़, घर-परिवारकी ममत्तारूपी लपेटनेवाली वेलें और कामनारूपी उलझन है, जिनसे पद-पदपर रुककर दुःख भोगते हुए चलना पड़ता है । ) फिर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों-ही-न्यों अपना घर दूर होता चला जा रहा है । ( संसारके भोगोंमें ज्यों-ज्यों मन फँसता है त्यों-ही-त्यों भगवत्-प्राप्तिरूप निज-निकेतन दूर होता जाता है ) और कोई राह बतानेवाला भी नहीं है । ( विषयी पुरुष सन्तोंका संग ही नहीं करते, फिर उन्हें सीधा परमार्थका रास्ता कौन बताने ? संगवाले तो उलटा ही मार्ग बतलाते हैं ) ॥४॥ मार्ग बड़ा कठिन है, ( विषयोंके झाड़-झंझाड़ों और पहाड़-जंगलोंसे परिपूर्ण है ) साधमें ( भजनरूपी ) राह-सर्च नहीं है, यहाँ-तक कि अपने गायिका नामतक भूल गये हैं ( भूलकर भी परमात्माका नाम नहीं लेते और परमात्म-स्वरूपपर विचार नहीं करते, अतएव भगवानकी कृपा बिना इस शरीरके द्वारा तो परमपदरूपी घर पहुँचना असम्भव ही है ), इसलिये हे श्रीरामजी ! अब आप ही कृपा करके इस तुलसीदासके ( जन्म-मरणरूपी ) संसार-भयको दूर कीजिये ॥५॥

[ १९० ]

सहज सनेही रामसों तैं कियो न सहज सनेह ।

ताते भव-भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥१॥

ज्यों मृग मृकुर विलोकिये अरु चित न रहै अनुहारि ।  
 त्यों सेवतहुँ न आपने, ये मातु-पिता, मुत-नारि ॥२॥  
 दै दै मुमन तिल वासिकै अरु खरि परिहरि रस लेत ।  
 म्यारथ हित भूतल भरे, मन मेचक, तन सेत ॥३॥  
 करि वीत्यो, अब करतु है, करिवे हित मीत अपार ।  
 कवहुँ न कोउ रघुवीर सो नेह निवाहनिहार ॥४॥  
 जासों सब नातो फुरै, तासों न करी पहिचानि ।  
 ताते कछु समुझ्यो नहीं, कहा लाभ कह हानि ॥५॥  
 साँचो जान्यो झूठको, झूठे कहँ साँचो जानि ।  
 को न गयो, को जात है, को न जैह करि हितहानि ॥६॥  
 वेद कब्यो, धुघ कहत हैं, अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि ।  
 तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हियकी आँखिन हेरि ॥७॥

भावार्थ—तूने स्वभावसे ही स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्र जीसे स्वाभाविक स्नेह नहीं किया। इसीसे तू संसारी हो गया है (जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा है), परन्तु अब भी यह शिक्षा सुन ॥१॥ जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है, पर वह मुख वास्तवमें दर्पणके अन्दर नहीं होता, वैसे ही ये माता, पिता, पुत्र और स्त्री सेवा करते हुए भी अपने नहीं हैं (मायारूपी दर्पणके साथ तादात्म्य होनेसे ही इनमें अपना भाव दीखता है) ॥२॥ (संसारका सम्बन्ध तो स्वार्थका है) जैसे तिलोंमें फूल रख-रगकर सुगन्धमय बनाते हैं किन्तु तेल निकाल लेनेपर खलीको व्यर्थ समझ-  
 वैसे ही सम्यन्धियोंकी दशा है (अर्थात् जबतक स्वार्थ-





जाको मन जासों बँधयो, ताको सुखदायक सोइ ।  
 सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कांइ ॥४॥  
 सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि ।  
 केहि दिवान दिन दीन को आदर-अनुराग बिसेखि ॥५॥  
 खग-सबरी पितु-मातु ज्यों माने, कपि को किये मीत ।  
 केवट मेंटयो भरत ज्यों, ऐसो को कहु पतित-पुनीत ॥६॥  
 देइ अमागहिं भागु को, को राखै सरन सभौत ।  
 वेद-विदित विरुदावली, कवि-कोविद गावत गीत ॥७॥  
 कैसेउ पाँवर पातकी, जेहि लई नामकी ओट ।  
 गाँठी बाँध्यो दाम तो, परख्यो न फेरि खर-खोट ॥८॥  
 मन मलीन, कलि किलबिपी होत सुनत जासु कृत काज ।  
 सो तुलसी कियो आपुनो रघुवीर गरीब-निवाज ॥९॥

, भावार्थ—सच्चे स्नेही तो केवल एक कोशलेंद्र श्रीरामचन्द्रजी ही हैं ।  
 प्रेमका कृतज्ञ रामजीके समान कोई दूसरा दयालु नहीं है ॥१॥ इस शरीर-  
 से सम्बन्ध रखनेवाले सभी स्वार्थी हैं, देवता ध्ययहारमें घतुर हैं (जिनकी  
 सेवा करोगे, उतना ही फल देंगे । और यदि कुछ बिगड़ गया, तो सारा  
 किया-कराया ध्यय कर देंगे) । दुखी, नीच और अनाथका हित करनेवाला  
 श्रीरघुनाथजीके समान दूसरा कौन है ? (कोई भी नहीं) ॥२॥ (अथ प्रेमियोंकी  
 दृष्टा देखिये ) राग अथवा संगीतका स्वर निर्दय होता है (उसीके  
 कारण बेचारा हिरण जालमें फँसकर मारा जाता है) । अग्नि सयके  
 साथ समान ध्ययहार करनेवाली है, ( बेचारे पतंगको उसीमें पड़कर



हैं) ॥७॥ जिसने उनके नाम ( राम ) का आश्रय लिया, चाहे वह कैम ही नीच और पापी क्यों न हो, उसे श्रीरामने इस तरह अपना लिया जैसे कोई ( मिले हुए ) धनको ( नुरन्त ) गाँठमें बाँध लेता है, और उसी तरह या छोटेपनको भी नहीं परखता ॥८॥ जो ऐसा भलिन मनवाट है कि जिसके कलियुगमें किये हुए कर्मोंको सुनकर सुननेवाले भी पापी हो जाते हैं, उस तुलसीदासको भी उन्होंने अपना दास मान लिया। श्रीरघुनाथजी ऐसे ही गरीबनिवाज हैं ॥९॥

[ १९२ ]

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेहु न नीच ।

स्वारथ-परमारथ कहा, कलि कुटिल विगोयो बीच ॥ १ ॥

धरम चरन आश्रमनिके पैपत पोधिही पुरान ।

करतव विनु बेप देखिये, ज्यों सरीर विनु प्रान ॥ २ ॥

वेद- विहित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।  
विदित

राम-प्रेम विनु जानिबो जैसे सर-सरिता विनु वारि ॥ ३ ॥

नाना पथ निरवानके, नाना विधान चहु भाँति ।

तुलसी तू भेरे कहे जपु राम-नाम दिन-राँति ॥ ४ ॥

भावार्थ—अरे नीच ! यदि श्रीजानकीनाथ रामचन्द्रजीसे तेरा प्रेम और माता नहीं है, तो तेरे स्वार्थ और परमार्थ कैसे मिश्र होंगे ? इस अवस्थामें तो कुटिल कलियुगने तुझको बीचमें ही टग लिया, (जिससे लोक-परलोक दोनों ही विगड़ गये) ॥१॥ ( भगवान्के प्रेमसे विहीन लोगोंके

लिये ) वर्ष और आश्रमके धर्म केवल पोथियों और पुराणोंमें ही लिखे पाये जाते हैं । उनके अनुसार कर्तव्य कोई नहीं करता, ऐसे कर्तव्यहीन कोरे भेप वैसे ही हैं जैसे बिना प्राणोंके शरीर हों । ( उनसे कोई लाम नहीं ) ॥२॥ सुनतं हैं कि वेदोंमें जितने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ( यज्ञ आदि ) साधन हैं, वे सब अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंको देनेवाले हैं; किन्तु बिना थीराम-प्रेमके उन सबका जानना-मानना वैसा ही है, जैसे बिना पानाके तालाब और नदियाँ । सारांश यह कि भगवत्-प्रेम-विहीन सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं ॥३॥ मुक्तिके अनेक मार्ग हैं और भाँति-भाँतिके साधन हैं, किन्तु हे तुलसी ! तू तो मेरे कहनेसे दिन-रात केवल राम-नामका ही जप किया कर ( नरा तो इसीसे कल्याण हो जायगा ) ॥४॥

[ १९३ ]

अजहुँ आपने रामके करतब समुझत हित होइ ।

कहँ तू, कहँ कोसलघनी, तोको कहा कहत सब कोइ ॥१॥

रीक्षि निवाज्यो कबहिँ तू, कब खीक्षि दई तोहिँ गारि ।

दरपन बदन निहारिकै, सुविचारि मान हिय हारि ॥२॥

विगरी जनम अनेककी सुघरत पल लगै न आयु ।

'पाहि कृपानिधि' प्रेमसों कहै को न राम कियो साधु ॥३॥

बालमीकि-केवट-कथा, कपि-भील-भालु-सनमान ।

सुनि सनमुख जो न रामसों, विहि को उपदेसहि ग्यान ॥४॥

का सेवा सुप्रीवकी, का प्रीति-रीति-निरपाहु ।

जासु बंधु बध्या न्याय ज्यों, सों सुनत सोहाव न काहु ॥५॥

## पिनय-पत्रिका

भजन बिभीषनको कहा, फल कहा दियो रघुराज ।  
राम गरीब-निवाजके बड़ी बाँह-बोलकी लाज ॥  
जपहि नाम रघुनाथको, चरचा दूसरी न चालु ।  
सुमुख, सुखद, साहिब, सुधी, समरथ, कृपालु, नवपालु ॥१०॥  
सजल नयन, गदगद गिरा, गहवर मन, पुलक सरीर ।  
गावत गुनगन रामके कहिकी न मिटी भव-मीर ॥८॥  
प्रभु कृतग्य सरबग्य हैं, परिहर पाछिली गलानि ।  
तुलसी तोसों रामसों कछु नई न जान-पहिचानि ॥९॥

भावार्थ—अब मी यदि तू अपनी (नीच करतूतोंको) और श्रीरामजीके (दयासे पूर्ण) करतव्योंको समझ ले, तो तेरा बल्याण हो सकता है; कहाँ तू (रामविमुख, विषयोंमें लगा हुआ जीव) और कहाँ (अद्वैतकी दयाके समुद्र) कोशलपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ! तुझे सब लोग क्या कहते हैं ? (कि यह रामका भक्त है । भक्त और भगवान्में कोई भेद नहीं होता । ऐसा कहलाना क्या तेरी करतूतोंका फल है ?) ॥१॥ अरे, जरा (वियेकरूपी) दर्पणमें (अपने मनरूपी) मुखको तो देख कि कब तो श्रीरामजीने प्रसन्न होकर तुझपर कृपा की है और कब गुस्सेमें आकर तुझे गालियाँ दी है ? (विचारनेसे तुझे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि श्रीरामने तो सदा कृपा ही की है, जो कुछ दोष है, सो तेरा ही है । भगवान् गुस्से होकर गालियाँ देने लगे तो निस्तार ही कैसे हो ?) फिर (अपनी करतूतोंके लिये) (न तो यह समझ कि मेरी करनीसे मैं भक्त कह-न उनपर दोषारोपण ही कर कि भक्त होनेपर भी ये मेरा



घाले और सभी बाहर-भीतरकी, आगे-पीछेकी बातोंको जाननेवाले हैं (उन्से तेरी कोई करनी छिपी नहीं है)। तुलसीदास ! रामजीसे तेरी कुछ नती जान-पहचान नहीं है। ( उनपर दृढ़ भरोसा रख ) ॥९॥

[ १९४ ]

जो अनुराग न राम सनेही सों ।

तौ लखो लाहु कहा नर-देही सों ॥१॥

जो तनु धरि, परिहरि सब सुख, भये सुमति राम-अनुरागी ।

सो तनु पाइ अघाइ किये अघ, अवगुन-उदधि अमागी ॥२॥

ग्यान-धिराग, जोग-जप, तप-मख, जग मुद-मग नहि धोरे ।

राम-प्रेम विनु नैम जाय जैसे मृग-जल-जलधि-दिलोरे ॥३॥

लोक बिलोकि, पुरान-बेद सुनि, समुझि-शुझि गुरु-ग्यानी ।

प्रीति-प्रतीति राम-पद-पंकज सकल-सुमंगल-खानी ॥४॥

अज्ञहूँ जानि जिय, मानि हारि हिम, होइ पलक महँ नीको ।

मुमिरु सनेहमहित हित रामहिं, मानु मतौ तुलसीको ॥५॥

भाषार्थ—यदि परम स्नेही श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेम नहीं है, तो नर-दासीर धारण करनेमें लाभ ही क्या हुआ ? (मगयाजमें भक्त्य प्रेम होना ही मोमनुष्य-जीवनका परम लाभ है) ॥१॥ जिस शरीरको धारण कर कुछ बुझियाले पुरुष शरीर संभारी सुनीको (वियपत्) त्यागकर श्रीरामजीके प्रेमी बनने हैं, उस (दुर्लभ) शरीरको भी पाकर, भरे महाकीर्ण भवाने ! तूने पेट भर-भरकर पाप ही किये ! ॥२॥ जगत्में मान, वैराग्य, योग,

मन, यज्ञ आदि मान्य (मोक्ष) के मागीची कमी नहीं है, किन्तु विना





कुचालोंको घला दिया है ॥२॥ जहाँ-जहाँ यह मन अपना दिन देता है, वहाँ नित्य नये दुःख बढ़ते ही जाते हैं। रुचिको अच्छी लगनेवायातें दूरसे ही डरकर भाग जाती हैं और जिनको मन नहीं चाहता वे ही अपार चीजें सामने आ जाती हैं। अर्थात् सुखके लिये चेष्टा करने भी अपार दुःख ही आते हैं ॥३॥ मन चिन्ताओंमें डूब रहा है, शरीरोगोंके मारे व्याकुल है, और घाणी झूठी तथा मलिन हो रही है (स असत्य, कठोर और कुवाच्य ही बोलती है)। किन्तु यह सब हे हुए भी हे नाथ ! आपके साथ इस तुलसीदासका सम्बन्ध और प्रेज्यों-का-र्यों बना हुआ है। ( धन्य हैं जो इस प्रकारके अघमके साथ प्रेमका सम्बन्ध स्थायी रखते हैं। ) ॥४॥

[ १९६ ]

काहेको फिरत मन, करत बहु जतन,

मिटै न दुख विमुख रघुकुल-धीर ।

कीजै जो कोटि उपाइ, त्रिविध ताप न जाइ,

कह्यो जो भुज उठाय मुनिवर कीर ॥ १ ॥

सहज टेव विसारि तुही धौं देखु विचारि,

मिलै न मथत धारि घृत विनु छीर ।

समुझि तजहि भ्रम, भजहि पद-जुगम,

सेवत सुगम, गुन गहन गँभीर ॥ २ ॥

आगम निगम ग्रंथ, रिपि-मुनि, सुर-संत,

सब ही को एक मत मुनु, मतिधीर ।

तुलसीदास प्रभु विनु पियास मरै पसु,  
जद्यपि हँ निकट सुरसरि-तीर ॥ ३ ॥

भावार्थ—अरे मन ! तू किसलिये बहुत-से प्रयत्न करता फिरता है ? जगतक तू धीरगुल-शिरोमणे रामजीसे विमुख है तबतक (दूसरे कितने भी साधनोंसे तेरा दुःख नहीं मिटेगा) । भगवद्विमुख करोड़ों उपाय क्यों न करे, पर उसके दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों ताप नष्ट नहीं हो सकते, यह बात मुनि-श्रेष्ठ शुकदेवजीने भुजा उठाकर कही है ॥१॥ अपने स्वभावकी देवको छोड़कर—श्रीराम-विमुखताकी आदत छोड़कर एकाग्र चित्तसे तू ही विचारकर देख कि कहीं पानीके मयनेसे, बिना दूधके घी मिल सकता है ? ( इसी प्रकार विषयोंमें रत रहनेसे कभी सुख नहीं मिल सकता ) । इस बातको समझकर भ्रमको छोड़ दे, और श्रीरामचन्द्रजीके उन युगल चरणोंका भजन कर, जो सेवासे मुलभ हैं और सद्गुणोंके गम्भीर वन हैं, अर्थात् जिन चरणोंकी सेवा करनेसे विवेक, वैराग्य, शान्ति, सुख आदि अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥ बुद्धि स्थिर करके शास्त्रों, वेदों, अन्य ग्रन्थों, ऋषियों, मुनियों, देवताओं और सन्तोंका जो एक निश्चित सिद्धान्त है, उसे सुन ( यह सिद्धान्त यही है कि सब आशाओंको छोड़कर श्रीभगवान्के शरण होना चाहिये ) । हे तुलसीदास ! यद्यपि गंगाका तट निकट है, तो भी बिना स्वामीके पशु प्यासा ही मरा जाता है ( इसी प्रकार यद्यपि भगवत्-प्राप्तिरूप परमसुख सहज ही मिल सकता है पर भगवान्की शरण हुए बिना वह दुर्लभ हो रहा है ) ॥३॥

[ १९७ ]

नाहिंन चरन-रति, ताहि तें सहां बिपति,

कहत श्रुति सकल मुनि मतिधीर ।

वसै जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग,

ताहि क्यों भ्रम निरखि रविकर-नीर ॥ १ ॥

सुनिय नाना पुरान, मिटत नाहिं अग्यान,

पड़िय न समुझिय जिमि खग कीर ।

बंधत चिनहिं पास सेमर-सुमन-आस

करत चरत तेइ फल विनु हीर ॥ २ ॥

कछु न साधन-सिधि, जानौं न निगम-विधि,

नहिं जप-तप, बस मन, न .समीर ।

तुलसिदास भरोस परम करुना-कोस,

प्रभु हरिहं बिपम भवभीर ॥ ३ ॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है, इसीसे मैं बिपतियोंको भोग रहा हूँ, (मेरा ही नहीं) वेदोंऔरसमस्तबुद्धिमान्मुनियोंका (भी) यही कहना है। क्योंकि जो हिरण चन्द्रमाकी गोदमें बैठा अमृतको स्वाद ले रहा है, उसे भला मृगतृष्णाके जलमें भ्रम क्यों होगा ? (जिम जीवने श्रीराम-पद-कमलोंके प्रेमानन्दका अनुभव कर लिया यह मिथ्या संसारी तुलोंमें क्यों भूलेगा ?) ॥१॥ जैसे पक्षी (तोता) पड़ता तो सय है, पर समझता कुछ नहीं है, वैसे ही बिना समझे अनेक पुराण सुननेसे अज्ञान हीं मिटता । ( अज्ञानो ) तोता बिना ही कन्देके स्वयं बंध जाता है,

आप ही चाँगली पकड़कर लटक रहता है; घट (मूल तोता) सेमरके फूलकी भाशा करता है; पर ज्यों ही उसमें चाँच मारता है, उसमें बिना गूदेका फल मिलता है अर्थात् रुईके सिवा उसमें खानेके लिये कुछ भी नहीं मिलता, तब पछताता है (इसी प्रकार मनुष्य विषयरूपी चाँगली पकड़कर आप ही बँधा रहता है तथा विषयोंसे सुखी होनेकी भाशासे उनके घटोरनेमें लगा रहता है, परन्तु विद्युद्भूते ही दुखी हो जाता है) ॥२॥ न तो मेरे पास कोई साधन है और न मुझे कोई सिद्धि ही प्राप्त है। न मैं वैदिक विधियोंको ही जानता हूँ, न मुझे जप-तप करना आता है और न प्राणायामसे ही मैंने मन घशमें किया है। इस तुलसीदासको तो करुणाके भण्डार भगवान् रामचन्द्रजीका ही एकमात्र मरोसा है। वही इसकी भयानक सांसारिक विपत्तिको दूर करेंगे, जन्म-मरणसे मुक्त करेंगे ॥३॥

राग भैरवी

[ १९८ ]

मन पछितैह अवसर वीते ।

दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते ॥ १ ॥

सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते ।

हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥ २ ॥

सुत-चनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सवही ते ।

अंतहुँ तोहिँ तजैगे पामर ! तू न तजै अवही ते ॥ ३ ॥

अप नाथहिँ अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ।

सुखै न कि काम अग्नि तुलसी कहूँ, विषय-भोगु बहु धी ते ॥ ४ ॥

मायार्थ—अरे मन ! (मनुष्य-जन्मकी आयुका यह) सुभवसरवीत जग  
पर तुझे पलताना पड़ेगा। इसलिये इस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर कर्म  
पचन और हृदयसे भगवान्के चरण-कमलोंका भजन कर ॥१॥ सहश्रवण  
और रावण आदि ( महाप्रतापी ) राजा भी धलयान् कालसे नहीं क  
सके, उन्हें भी मरना पड़ा। जिन्होंने 'हम हम' करते हुए धन और धान  
सँभाल-सँभालकर रखे थे, वे भी अन्त समय यहाँसे खाली हाथ ही चले  
गये ( एक फौड़ी भी साथ न गयी ) ॥२॥ पुत्र, स्त्री आदिको स्वार्थी समझ  
इन सबसे प्रेम न कर। अरे अधम ! जब ये सब तुझे अन्त समयमें छोड़  
हो देंगे, तो तू इन्हें अभीसे क्यों नहीं छोड़ देता ? ( इनका मोह छोड़कर  
अभीसे भगवान्में प्रेम क्यों नहीं करता ? ) ॥३॥ अरे मूर्ख ! (अज्ञान-निद्रामें)  
जाग, अपने स्वामी ( श्रीरघुनाथजी ) से प्रेम कर और हृदयसे ( सांसारिक  
विषयोंसे सुखकी ) दुराशाको त्याग दे, ( विषयोंमें सुख है ही नहीं, तब  
मिलेगा कहाँसे ? ) हे तुलसीदास ! जैसे अग्नि बहुत-सा घी डालनेसे नहीं  
बुझती ( अधिक प्रज्वलित होती है ), वैसे ही यह कामना भी  
ज्यों-ज्यों विषय मिलते हैं त्यों-ही-त्यों बढ़ती जाती है। ( यह तो सन्तोष-  
रूपी जलसे ही बुझ सकती है ) ॥४॥

[ १९९ ]

काहेको फिरत मूढ़ मन धायो ।



तजि हरि-चरन-सरोज सुधारस, रविकर-जल लय लायो ॥ १ ॥

त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो ।

गृह, पतिता, सुत, धंधु भये बहु, मातु-पिता जिन्ह जायो ॥ २ ॥



भोगोंकी प्राप्ति होगी, कामनाकी भग्नि उतनी ही अधिक मड़केगी) ॥३॥  
 जब विषयोंकी प्राप्ति नहीं हुई तब तुझे बड़ा दुःख हुआ, (उनके नाशसे  
 और उनके मिल जानेपर भी) बड़ी विपत्ति प्राप्त हुई, स्वप्नमें भी सुप्त नहीं  
 मिला। इसलिये यैदोंने इस विषयरूपी धनकी, दोनों ही प्रकारसे, भूतकी  
 आगके समान दुःखप्रद बतलाया है (मतलब यह कि विषयी लोगोंको न  
 तो विषयकी प्राप्तिमें सुप्त होता है, और न अप्राप्तिमें ही) ॥५॥ अरे ! तेरा  
 जीवन क्षण-क्षणमें क्षीण हो रहा है, इस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको तूने व्यर्थ  
 ही खो दिया। अतएव, हे तुलसीदास ! तू संसार की सुखकी आशा छोड़कर  
 केवल श्रीहरिका भजन कर। सावधान, कालरूपी साँप संसारको साँप  
 जा रहा है (न जाने, कब किस घड़ी तू भी कालका कलेवा हो जाय) ॥६॥

[ २०० ]

ताँबे सो पीठि मनहुँ तन पायो ।

नीच, भीच जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायो ॥१॥

अवनि-रवनि, धन-धाम, सुहृद-सुत, को न इन्हहि अपनायो ?

काके भये, गये संग काके, सब सनेह छल-छायो ॥२॥

जिन्ह भूपनि जग-जीति, बाँधि जम, अपनी बाँह बसायो ।

तेऊ काल कलेऊ कीन्हे, तू गिनती कब आयो ॥३॥

देखु बिचारि, सार का साँचो, कहा निगम निजु गायो ।

भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि, जेहि महंस मन लायो ॥४॥

भावार्थ—अरे जीव ! मानो तूने ताँबेसे मढ़ा हुआ शरीर पाया है !

( तभी तो कच्चे घड़ेके समान फूटनेवाले, पानीके बुद्बुदेके समान





गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध है रहे न राम-लय लाये ।

तुलसीदास यह अचसर बीते का पुनि कै पछिताये ॥५॥

भाषार्थ—मनुष्य-शरीर पानेसे क्या लाभ हुआ जब कि यह कमी, स्वप्नमें भी, मन, धारणा और शरीरसे दूसरेके काम नहीं आया ॥१॥ विषय-सम्यग्धी जो सुख स्वर्ग, नरक, घर और वनमें बिना ही गुलाये, आपसे आप आ जाता है, उस सुखके लिये, अरे मन ! तू अनेक प्रकारके उपाय कर रहा है ! संमज्ञानपर भी नहीं समझता ॥२॥ हे मूढ़ ! तूने अज्ञानके वश होकर परायी स्त्रीके लिये और दूसरोंसे धैर करनेके लिये मनमाने आचरण किये । गर्भमें महान् दुःख, दारुण कष्ट और विपत्ति भोगी थी उसे भूल गया ( यह नहीं सोचा कि इन मनमाने कु-कर्मोंसे फिर वही गर्भवासके दुःख भोगने पढ़ेंगे ) ॥३॥ डर, नाँद, मैथुन और भोजन आदितो संसारमें जन्म लेनेवाले सभी जीवोंमें एक-से हैं । परन्तु तूने तो देवताओंको भी दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर उससे भी भगवान्का भजन नहीं किया और अहंकार और घमण्डमें उसे छो दिया ॥४॥ जिनकी मेरे-तेरेकी भेदबुद्धि नष्ट नहीं हुई और शुद्ध अन्तःकरणसे जिन्होंने श्रीराममें चित्तको लीन नहीं किया उन्हें, हे तुलसीदास ! ऐसा यह (मनुष्य-शरीरका) सुअचसर निकल जानेपर फिर पछतानेसे क्या मिलेगा ! (इसलिये चेतकर अभी भगवान्के भजनमें लग जाना चाहिये ) ॥५॥

[ २०२ ]

काजु कहा नरतनु धरि सारथो ।

पर-उपकार सार श्रुतिको जो, सो धोखेहु न विचारयो ॥१॥



स्मरण नहीं किया ॥५॥ गूने मनसे, कर्मसे और ध्यानमें अपने (सबे) म्यामी, गुरु, पिता और मित्र उन धीरघुनायजीको मुला दिया । हे तुलसीदास ! भय तो यही माता है कि जिसने जटायु गायको ठार दिया था, यही तुझे भी अपनी शरणमें रखेंगे ॥५॥

[ २०३ ]

श्रीहरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान ।  
 जेहि सेवत पाइय हरि मुख-निधान भगवान ॥१॥  
 परिवा प्रथम प्रेम विनु राम-मिलन अति दूरि ।  
 जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ॥२॥  
 दुइज द्वैत-भति छाड़ि चरहि महि-मंडल धीर ।  
 विगत मोह-माया-मद हृदय बसत रघुवीर ॥३॥  
 तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद ।  
 गुन सुभाव त्यागे विनु दुरलभ परमानंद ॥४॥  
 चौथि चारि परिहरहु बुद्धि-मन-चित-अहंकार ।  
 विमल विचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥५॥  
 पाँचइ पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप ।  
 इन्ह कर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव-रूप ॥६॥  
 छठ पटवरग करिय जय जनकमुता-पति लागि ।  
 रघुपति-कृपा-चारि विनु नहीं बुताइ लोभागि ॥७॥  
 सातैं सप्तधातु-निरमित तनु करिय विचार ।  
 तेहि तनु केर एक फल, कीजै पर-उपकार ॥८॥



भवसागर कहँ नाव मुद्र संतनके चरन ।

तुलमिदास प्रयाम चितु मिलहिं राम दुखहरन ॥२०॥

भावार्थ—हे मन ! तू अभिमान छोड़कर भगवत्-रूपी श्रीगुरुके चरणारविन्दोंका भजन कर । जिनकी सेवा करनेसे आनन्दघन भगवान् श्रीहरिकी प्राप्ति हो जाती है ॥१॥ जैसे प्रतिपदा ( पक्षमें सवमें पहला दिन है ) उसी प्रकार ( सर्व साधनोंमें ) प्रथम प्रेम है । प्रेमके बिना श्रीरामजीका मिलना बहुत दूरकी बात है । यद्यपि वे बहुत ही निकट, सर्वके हृदयमें ही पूर्णरूपसे निवास करते हैं ॥२॥ धीरभावसे (अचञ्चल चित्तसे) द्वितीयाके समान दूसरा साधन यह है, कि द्वैत-बुद्धि ( ईश्वर और जीवमें भेद-बुद्धि ) छोड़कर ( समदृष्टिसे ) समस्त पृथ्वी-मण्डलमें ( निश्चिन्त होकर ) विचरण करना चाहिये । मोह, माया और घमण्डसे रहित हृदयमें सदा श्रीरघुनाथजी निवास करते हैं ॥३॥ तृतीयाके समान तीसरा उपाय यह है, कि परम पुरुष, लक्ष्मीकान्त श्रीमुकुन्द भगवान् तीनों गुणोंसे परे हैं । अतएव ( सत्व, रज और तम ) त्रिगुणमयी प्रकृतिका त्याग कर देना चाहिये । ऐसा किये बिना परमानन्दकी प्राप्ति दुर्लभ है ( जबतक पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तभीतक वह जीव है और तभीतक सुख-दुःखका भोक्ता है । इस प्रकृतिमेंसे निकलकर स्व-स्थ—परमात्मारूपी स्व-रूपमें स्थित होनेसे ही मोक्षरूप परमानन्द मिलता है ) ॥४॥ चतुर्थीके समान ( भगवत्-प्राप्तिका ) चौथा साधन यह है कि बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार—इनके समुदायरूप 'अन्तःकरण' का त्याग कर देना चाहिये ( जबतक शरीर है



साधन यह है कि जिमने हम मो दूरयाज़ेकी नगरी अर्थात् नौ छेदवाले शरीरमें रहकर अपने आत्माका कस्याण नहीं किया, यह अनेक योनियों भटकता हुआ नाना प्रकारके दारुण दुःखोंको प्राप्त होगा (इसलिए आत्माके कस्याणके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये) ॥१०॥ दशमोके समान दसवाँ साधन यह है, कि जिमने दसों इन्द्रियोंका संयम करना नहीं जाना, इन्द्रियोंको घशमें नहीं किया, उसके सारे साधन निफल हो जाते हैं और उस इन्द्रियोंके दास, अमंयमी मनुष्योंका भगवान्की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥११॥ एकादशीके समान ग्यारहवाँ साधन यह है कि मनको घशमें करके एक श्रीभगवान्को ही सेवा करना चाहिये। इसीसे (परमार्थरूपी एकादशी) अतका जन्म-मरणके नाशरूप (परम) फल मिलता है। अर्थात् यह भगवान्को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥ द्वादशीके दिन दान दिया जाता है, अतः बारहवाँ साधन यह है कि ऐसा (भगवत्-प्रीत्यर्थ निष्काम बुद्धिसे) दान देना चाहिये जिससे तीनों लोकोंसे भय न रहे (भगवत्प्राप्ति हो जाय)। उस द्वादशीरूपी बारहवें साधनका पारण यही है कि सदा परोपकारमें लगे रहना चाहिये। (इस दान और पारणसे) फिर शोक नहीं व्यापता ॥१३॥ त्रयोदशीके समान तेरहवाँ साधन यह है कि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति— इन तीनों अवस्थाओंको त्यागकर भगवान्का भजन करना चाहिये (भाव यह कि नित्य-निरन्तर, सोते-जागते, श्रीभगवद्-भजन ही करना चाहिये)। भगवान् मन, कर्म और वाणीसे जाननेमें नहीं आते, पर्योकि (वर्षमें जलकी भाँति) वे ही सबमें व्याप्त हैं और (स्वप्नके दृश्योंकी भाँति) स्वयं ही व्याप्य हो रहे हैं तथा असीम, अनन्त हैं (उनको तो घड़ी जान





सन्देहोंके नाश करनेवाले, दुःखोंके दूर करनेवाले और सुखके निधान केवल एक श्रीहरि ही हैं। चाहे जितने ही उपाय कर लो, सन्तोंकी कृपाके बिना वे नहीं मिल सकते (अतः सन्त-कृपा ही सर्व साधनोंमें प्रधान है) ॥१९॥ संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिये सन्तोंके पवित्र चरण ही नौका हैं। हे तुलसीदास ! ( इस नौकापर चढ़कर अर्थात् सन्तोंके चरणोंकी सेवा करनेसे ) दुःखोंके नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बिना ही परिश्रमके मिल जायेंगे ॥२०॥

राग कान्हरा

[ २०४ ]

जो मन लागे रामचरन अस ।

देह-गेह-सुत-वित्त-कलत्र महुँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥१॥

ढंढरहित, गतमान, ग्यानरत, विषय-विरत खटाइ नाना कस ।

सुखनिधान सुजान कोसलपति हूँ प्रसन्न, कहूँ, क्यों न होंहि बस ॥२॥

सर्वभूत-हित, निर्बलीक चित, भगति-प्रेम हृद नेम, एकरस ।

तुलसीदास यह होइ तयहिं जब द्रवै ईस, जेहि हतो सीसदस ॥३॥

भावार्थ—जो यह मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें बैठे ही लग जाय, जैसा कि यह बिना ही किसी प्रयत्नके स्वमायसे ही शरीर, घर, पुत्र, धन

१ 'कम' शब्द 'काम्यक' या 'काश्य' का अपभ्रंश मान्य होता है, कहेलक पीतकको और काम्य तोंका-गोंगा मिथी दूर धातुको कहते हैं, इन दोनोंके मेलसे ही लटारें बिगड़ जाती है ।



माचार्य—हे मन ! यदि तू भगवान्‌रूपी कल्पवृक्षका सेवन करे  
 चाहता है, तो विषयोंके विकारको छोड़कर साररूप श्रीराम-नाम  
 भजन कर और जो मैं कहता हूँ उसे श्रवण भी कर ( अर्थात्‌क कुछ विम  
 नहीं ) ॥१॥ समता, सन्तोष, निर्मल विवेक और सत्संग-इन चाँदों  
 हृदयपूर्वक धारणकर । काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान एवं राग  
 और द्वेषको विस्कुल हो छोड़ दे, इनका लेशमात्र भी न रहे ॥२॥ कानसे  
 भगवत्‌कथा सुन, मुखसे ( राम ) नाम जपा कर, हृदयमें श्रीहरिका ध्यान  
 किया कर, मस्तकसे प्रणाम तथा हाथोंसे भगवान्‌की सेवा किया कर।  
 नेत्रोंसे कृपासागर चराचर विश्वमय महाराज जानकीवल्लभ रामचन्द्रजी  
 के दर्शन किया कर ॥३॥ यही भक्ति है, यही वैराग्य है, यही ज्ञान है  
 और इसीसे भगवान्‌प्रसन्न होते हैं, अतएव तू इसी शुभ व्रतका आचरण  
 कर । हे तुलसीदास ! यही शिवजीका धतलाया हुआ मार्ग है । इस  
 ( कल्याणमय ) मार्गपर चलनेसे स्वप्नमें भी भय नहीं रहता ( मनुष्य  
 परमात्माको प्राप्तकर अभय हो जाता है ) ॥४॥

[ २०६ ] .

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति-सम विपति-निवारन ।  
 काको सहज सुभाउ सेवकवस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥  
 जन-गुन अल्प गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि विसारन ।  
 परम कृपालु, भगत-चिंतामनि, विरद पुनीत, पवितजन-चारन ॥२॥  
 सुमिरत सुलभ, दास-दुख मुनि हरि चलत तुरत, पटपीत सँभार न ।  
 साखि पुरान-निगम-आगम सब, जानत दुपद-सुता अरु धारन ॥३॥



आरत, अघम, कुजाति, कुटिल, खल, पतित, समीत, कहूँ जे समाहि न।  
 सुमिरत नाम बिबसहूँ बारक पावत सौ पद, जहाँ सुर जाहि न ॥२॥  
 जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर, विरत जे परम सुगतिहु लुमाहि न।  
 तुलसीदास सठ तेहि न मजसि कस, कारुणीक जो अनाथहिं दाहिने

• भावार्थ—भजन करने योग्य, सुख देनेवाला और शरणमें रखनेवाला  
 स्वामी श्रीरघुनाथजीके समान दूसरा कोई नहीं है। उन आनन्दघाम, दुःखोंके  
 नाश करनेवाले, शोकके हरनेवाले, लक्ष्मीरमण भगवान्के गुण गिनने-  
 गिनते कभी पूरे नहीं होते ॥१॥ जो दुखी, नीच, अम्यज, कपटी, दुष्ट,  
 पापी और भयभीत कहीं भी आश्रय नहीं पा सकने के भी विषय होकर  
 एक बार ही श्रीरामनाम-स्मरण कर उस (परम) पदपर पहुँच जाते हैं, जहाँ  
 देवता भी नहीं जा सकते ॥२॥ जिनके चरणरूपी कमलोंमें ऐसे वैराग्य-  
 सम्पन्न मुनिरूपी भ्रमर लुभाये रहते हैं, जिन्हें परमसुन्दर गति मोक्षतकका  
 लोभ नहीं है। हे शठ तुलसीदास ! तू उस अनाथोंपर सदा कृपा करने-  
 वाले (परम) करुणामय प्रभुका भजन क्यों नहीं करता ? ॥३॥

राग कल्याण

[ २०८ ]

नाथ सौ कौन चिनती कहि सुनावाँ ।

त्रिविध विधि अमित अवलोकि अघ आपने,

सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावाँ ॥१॥



यना फिरता है, परन्तु मन-ही-मन विषयोंका चिन्तन करता हुआ उन्हींसे ताकमें लगा रहता है) ॥२॥ मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि मेरे एक रोमर सौ करोड़ पापी निछावर किये जा सकते हैं, पर तो मैं अपनेको सन्तोषी गिनतीमें सबसे पहले गिनवाना चाहता हूँ, सन्त-शिरोमणि बननेका दावा रखता हूँ। मैं बड़ा ही असभ्य और नीच हूँ, परन्तु घमण्डरूपी पहाड़पर चढ़ा बैठा हूँ। इसीसे तो मूर्ख होनेपर भी अपनेको सर्वज्ञ और भक्त्येष्ट घतलाता हूँ ॥३॥ हे भगवन् ! कह नहीं सकता कि झूठ है या सच, पर कोई-कोई मेरे लिये यह कहते हैं कि 'यह रामजीका है' और मैं भी आपहीका कहलाया चाहता हूँ। हे देव ! इससे अब अपने बानेकी टाट रखकर इस तुलसीदासको अपना ही लीजिये (क्योंकि जब आपका कहलाकर भी दुष्ट ही रहूँगा तो आपके विरुद्धकी लाज कैसे रहेगी ?) अब टालमटोल न कीजिये ॥४॥

[ २०९ ]

नाहिनै नाथ ! अबलंब मोहि आनकी ।

करम-मन-वचन पन सत्य करुनाधिषे,

एक गति राम ! भवदीय पदत्रानकी ॥ १ ॥

कोह-मद-मोह-भमतायतन जानि मन,

चात नहि जाति कहि ग्यान-विग्यानकी ।

काम-संकल्प उर निरखि बहु चासनहि,

आस नहि एकहूँ आँक निरवानकी ॥ २ ॥





मनुष्य एवं राक्षसोंकी सेवा भी नहीं करित है। ये लोग तभी प्रसन्न होंगे जब इनके लिये इतना किया जाय, यद्यत्ता मांग दिया जाय और प्राणोंकी बलि नढ़ाया जाय। (यद्द मय मी मुद्रमे महीं हो मद्यत्त मगपय इन लोगोंकी कुशाकी भाशा करना भी व्यर्थ है) ॥३॥ यदि (तो मुद्र मरीने मनुष्यके लिये) परम दुर्लभ है; क्योंकि त्रिक मुक्तदेव तथा मुनिरूप भौरे भी आपके धरण-कमलोंके मधुर महत्त्व ही पीनेके लिये मद्यत्त प्याने ही बने रहने हैं (इन रमकी पीने-पीने अवधिमें नहीं मघाते तय मुद्र-जैमा मीन तो किस गिनतीमें है?) हाँ, आपके नाम भयदय ही पतिताको पावन करनेवाला तथा शान्ति (मोक्ष) देने वाला मुना जाता है। किन्तु चित्तमें अभिमानकी गाँठें पड़ी रहनेके कारण (राम-नामके साधनसे भी) मत्र फिर धम जाता है। (मैं इतना बड़ा समझदार और विद्वान् होकर मामूली राम-नाम से, इन अभिमानके मारे राम-नामसे भी यक्षित रह जाता हूँ) ॥४॥ हे महाराज! इन सब बातोंको देखते मेरा तो, यम, नरकमें ही जानेका अधिकार है, मेरे कर्मोंसे तो मैं घोर संसाररूपी अंधेरे कुपमें पड़ा रहने योग्य ही हूँ; किन्तु इतनेपर भी मुझे आपका ही बल है। यद्द तुलसीदास अपने मनमें गुरु, जटायु, गजेन्द्र और हनुमान्की जाति याद करके संसारके उस (जन्म-मरण) भयकी कुछ भी नहीं समझता (बन्धुज, पशु और पक्षियाँतकका उच्चार हो गया है तय मेरा क्यों न होगा? अर्थात् अवश्य होगा) ॥५॥

[ २१० ]

और कहँ ठौर रघुवंस-मनि ! मेरे ।  
पतित-पावन प्रनत-पाल असरन-सरन,  
पाँकुरे विरुद विरुदैत केहि केरे ॥१॥

समुझि जिय दोस अति रोस करि राम जो,  
 करत नहि कान विनती बदन फेरे ।  
 तदपि ह्वै निडर हौं कहां करुना-सिंधु,  
 क्योंज्य रहि जात सुनि बात विनु हरे ॥२॥  
 मुख्य रुचि होत बसिबेकी पुर रावरे,  
 राम ! तेहि रुचिहि कामादि गन धरे ।  
 अगम अपवरग, अरु सरग सुकृतैकफल,  
 नाम-बल क्यों बसौं जम-नगर नरे ॥३॥  
 कतहुँ नहि ठाउँ, कहँ जाउँ कोसलनाथ !  
 दीन वितहीन हौं, बिकल विनु डेरे ।  
 दास तुलभिहि वास देहु अब करि कृपा,  
 यसत गज गीध व्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

भावार्थ—हे रघुवंशमणि ! मेरे लिये (आपके चरणोंको छोंड़कर) और  
 इहाँ टौर है ? पापियोंको पवित्र करनेवाले, शरणागतोंका पालन करनेवाले  
 एवं बनाधोंको आश्रय देनेवाले एक आप ही हैं । आपका-सा घोंका याना  
 केम यानेवालेका है ? (किन्हींका भी नहीं) ॥१॥ हे रघुनाथजी ! मेरे अपराधों-  
 की मनमें समझकर, अन्यन्त क्रोधसे यद्यपि आप मेरी विनतीको नहीं सुनते  
 और मेरी ओरसे अपना मुँह फेरे हुए हैं, तथापि मैं तो निर्भय होकर, हे  
 दरुणाके समुद्र ! यही कहूँगा कि मेरी धान सुनकर (मेरी दीन पुकार  
 सुनकर) मेरी घोर देखे बिना आपने कैसे रहा जाना है ? ( करुणाके सागर-  
 के दीनकी आर्त पुकार सुनकर कैसे रहा जाय ? ) ॥२॥ ( यदि आप मेरी

मनोकामना पूछने हैं, तो सुनिये) मयमें प्रधान रुचि तो मेरी आपके पत्र-  
 धाममें जाकर निवास करने की है; किन्तु हे नाथ ! उस मेरी रुचिको काम-  
 मोच, लोभ और मोह भादिने घेर रफिया है ( इनके आक्रमणमें वह कामना  
 दब जाती है )। मोक्ष तो दुर्लभ है, स्वर्ग मिलना भी कठिन है, क्योंकि वह  
 केवल पुण्योंके फलसे ही मिलता है ( मैंने कोई उत्तम कर्म तो किये नहीं-  
 फिर स्वर्ग कैसे मिले ? ) अब रही यमपुरी ( नरक ) सो उसके समीप भी  
 आपके नामके बलसे नहीं जा सकता ( राम-नाम लेनेवालेको यनराज  
 अपनी पुरीके निकट ही नहीं आने देते ) ॥३॥ ( इससे ) अब मुझे कहीं भी रहने  
 के लिये स्थान नहीं रहा, आप ही बताइये कहीं जाऊँ ? हे कोशलनाथ ! मैं  
 निर्धन और दीन हूँ ( धनी होता, तो कहीं घर ही बनवा लेता ), आपका  
 स्थानके न होनेसे व्याकुल हो रहा हूँ। इसमें हे नाथ ! इस तुलसीदासकी  
 कृपाकर उसी गाँवमें रहनेकी जगह दे दीजिये जिसमें गजेन्द्र, जटापु-  
 व्याध ( वाल्मीकि ) आदि रहते हैं ॥४॥

[ २११ ]

कथहुँ रघुवंसमनि ! सो कृपा करहुगे ।  
 जेहि कृपा व्याध, गज, विप्र, खल नर वरे,  
 तिन्हहिँ सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥१॥  
 जोनि बहु जनमि किये करम खल विविध विधि,  
 अघम आचरन कछु हृदय नहि धरहुगे ।  
 दीनहित ! अजित सरवग्य समरथ प्रनतपाल  
 चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ॥२॥

मोह-मद-भान-कामादि खल-मंडली  
 सकल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ।  
 जोग-जप-जग्य-विग्यान ते अधिक अति,  
 अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥३॥  
 मंदजन-मौलिमनि सकल, माधन हीन,  
 कुटिल मन, मलिन जिय जानि जो डरहुगे ।  
 दासतुलसी वेद-विदित विरुदावली  
 विमल जस नाथ ! केहि मॉति बिस्तरहुगे ॥४॥

भावार्थ—हे रघुवंशमणि ! कभी आप मुझपर भी वही कृपा करेंगे, जैसेके प्रतापसे व्याध (वाल्मीकि), मजेन्द्र, ब्राह्मण अजामिल और अनेक हुए संसारसागरसे तर गये ? हे नाथ ! क्या आप मुझे भी उन्हीं पापियोंके समान समझकर मेरा भी उद्धार करेंगे ? ॥१॥ अनेक योनियोंमें जन्म लेकर मैंने नाना प्रकारके दुष्ट-कर्म किये हैं । आप मेरे नीचे आचरणोंकी गत तो हृदयमें मन्थार्येंगे ? हे दीनोंका हिन करनेवाले ! क्या आप किसीमें भी न जीते जाते, सबके मनकी धात जानने, सब कुछ करनेमें स्वमर्ग होने, और शरणागनोंकी रक्षा करने आदि अपने गुणोंका कीमत् स्थापने अनुकरण करेंते ? ( अर्थात् अपने इन गुणोंकी ओर देखकर, मेरे पापोंसे तर्ही धिना कर, मेरे मनकी धात जानकर अपनी सर्वशक्तिमत्तासे मुझे तरणमें पहुँचे हुएका उद्धार नहीं करेंगे ? ) ॥२॥ मेरे हृदयमें मज्जान, अहंकार, मान, काम आदि दुष्टोंकी जो मण्डली घस रही है, उसे परियारमहित समूल नष्ट करके क्या आप मेरे असह्य दुःखोंको दूर करेंगे ? और क्या



गिने ( न जाने इनके समान कितने पापियोंको अपना धाम दे दिया )  
है तुलसीदास ! बाते तो यह है कि जानकी-नाथ प्रभु रामचन्द्रजीने किस-  
किमको मुक्त नहीं कर दिया, ( जिनने शरण ली, उन्हींको मुक्ति दे दी,  
फिर मुझे क्यों न देंगे ? ) ॥३॥

[ २१३ ]

हरि-सम आपदा-हरन ।

नहि कोउ सहज कृपालु दुसह दुख-मागर-तरन ॥ १ ॥

गज निज बल अबलोकि कमल गहि गयो मरन ।

दीन बचन मुनि चले गरुड़ तजि मुनाभ-धरन ॥ २ ॥

दुपदसुताको लग्यो दुमासन नगन करन ।

'हा हरि पाहि' कहत पूरे पट विविध बरन ॥ ३ ॥

इहै जानि सुर-नर-मुनि-कोविद सेवत चरन ।

तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥ ४ ॥

भार्य—भगवान् श्रीहरिके समान विपत्तियोंका हरनेवाला,  
सहज ही कृपा करनेवाला और दुःसह दुःस्वरूपी समुद्रसे नारनेवाला  
दूसरा कोई नहीं है ॥१॥ जय गजराज भरना चल ( क्षीण हुआ )  
देखकर ( भेटके लिये ) कमलका फूल ले आरकी शरणमें गया तब  
उसके दीन बचन सुनकर मुदर्शनचक्र ले आप गरुड़को वहीं छोड़ नुरन्त  
ही (पैदल होइते हुए) चले आये ॥२॥ जय (मेरी सभामें) हुए दुःशासन  
द्रौपदीका चल उतारने लगा, तब कंचल उसके इतना कहनेपर ही कि  
'हाय ! भगवन्, मेरी रक्षा कीजिये' आपने विविध रंगोंकी साड़ियोंका ढेर  
लगा दिया ॥३॥ ( आपकी इन्ही दीनपारमलताकी ) जानकर देखता,

मनुष्य, मुनि और विद्वान् आपके घरणोंकी सेवा करते हैं। राजा नृगद उद्धार करनेवाले भगवान्ने किसको भ्रमय नहीं किया ? ( जो उन्हें शरणमें गया, उसीको भ्रमय कर दिया) ॥४॥

राग कल्याण

[ २१४ ]

ऐसी कौन प्रभुकी रीति ?

विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥ १ ॥

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ ।

भातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥ २ ॥

काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह ।

जगत-पिता विरंचि जिन्हके चरनकी रज लीन्ह ॥ ३ ॥

नेमतेँ सिंसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि ।

कियो लीन सु आपुमें हरि राज-सभा मैझारि ॥ ४ ॥

व्याध चित दै चरन मारयो भूढ़मति मृग जानि ।

सौ सदेह खलोक पठयो प्रगट करि निज यानि ॥ ५ ॥

कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।

प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥ ६ ॥

भावार्थ—( भगवान्के सिवा ) और किस स्वामीकी ऐसी रीति है

जो लिये पवित्र जीवोंको छोड़कर पामरोंपर प्रेम करता

॥१॥ राक्षसी पूतना स्तनोंमें विष लगाकर उन्हें ( भगवान् कृष्ण-

को ) मारने गयी थी, किन्तु कृपानु यादवेन्द्र श्रीकृष्णने उसे माताकी-सी गति प्रदान की ( उसका उद्धार कर दिया ) ॥२॥ आपने काममोहित गोपिपौं पर ऐसी अतुल कृपा की कि जगत्पिता ब्रह्माने भी उनके चरणों-की धूलि ( अपने मस्तकपर ) चढ़ायी ॥३॥ जो शिशुपाल नियमसे प्रति-दिन गिन-गिनकर गालियाँ देता था उसको आपने राजाओंकी सभामें (पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञमें) सबके देखते-देखते अपनेमें ही मिला लिया ॥४॥ मूर्ख बहेलियेने तो मृग समझकर आपके चरणमें निगाना लगाकर ( शण ) मारा, पर उसे भी आपने अपनी दयालुताकी वान प्रकट करके सदेह अपने परमधामको भेज दिया ॥५॥ ( इस प्रकारके जीवोंने ) जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों ही किये हैं उनके लिये तो क्या कही जाय ? ( क्योंकि उनका तो सद्गति पानेका कुछ-न-कुछ अधिकार ही था ) किन्तु उन्होंने प्रत्यक्ष पापमूर्ति तुलसीकी भी तो शरणमें रख लिया है ( इसीसे उनकी वान प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती है ) ॥६॥

[ २१५ ]

श्रीरघुवीरकी यह वानि ।

नीचहूँ साँ करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥ १ ॥

परम अधम निपाद पाँवर, कौन ताकी वानि ?

लियो साँ उर लाइ सुत ज्यो प्रेमको पहिचानि ॥ २ ॥

गीष कौन दयानु, जो विधि रच्यो हिंसा मानि ?

जनक ज्यो रघुनाथ ताकहँ दियो जल निज पानि ॥ ३ ॥



प्रहृति-मनित कृतानि मर्गा मकल अरगुन सानि ।  
 गात नाके दिपे कल अति रुचि बन्तानि बस्तानि ॥१॥  
 शतनिमर अरु गिणु विमीपन मग्न आयो जानि ।  
 मग्न ज्यो उठि गारि भेटत देह-दगा सुजानि ॥५॥  
 कौन शुभग शुभीत बानर, तिनहि शुभिरत हानि ।  
 दिपे ते शर मग्ना, पूजे मवन अरने आनि ॥६॥  
 राम मरुत कृपानु कोमल दीनदित दिनदानि ।  
 भवति जेमे प्रसुदि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥७॥

भावार्थ—धर्मपुनायत्रीकी जेगी ही भारत द्वे हि ये मनमें विष्णु  
 और अनन्य प्रेम समझकर नीचके साथ ही स्नेह करते हैं ॥१॥ (प्रमाणमुनि  
 शुद्ध निगद महान नीच और पापी था, उसकी क्या इज्जत थी? किन्तु  
 भगवान्ने उसका (अनन्य और विष्णु) प्रेम पहचानकर उसे पुत्रकी तरह  
 हृदयसे लगा लिया ॥२॥ जटायु गीघ, जिसे ब्रह्माने हिंसामय ही  
 बनाया था, कौन-भा दयालु था? किन्तु रघुनायत्रीने अपने पिताके  
 समान उसको अपने हाथसे जलाञ्जलि दी ॥३॥ शबरी समाधसे ही  
 मैली-कुचैली, नीच जातिकी और सभी अवगुणोंकी स्थानि थी। परन्तु  
 (उमकी विष्णु और अनन्य प्रीति देखकर) उसके हाथके फल खाद  
 यन्वान-यन्वानकर आपने यद्दे प्रेमसे खाये ॥४॥ राक्षस एवं शत्रु  
 विमीषणको शरणमें आया जानकर आपने उठकर उसे भारतकी भाँति  
 ऐसे प्रेमसे हृदयसे लगा लिया कि उस प्रेमविह्वलतामें आप अपने  
 शरीरकी सुध-बुध भी भूल गये ॥५॥ बन्दर कौनसे सुन्दर और

शील-स्वभावके थे ? जिनका नाम लेनेसे भी हानि हुआ करती है, उन्हें भी आपने अपना मित्र बना लिया और अपने घरपर लाकर उनका सब प्रकार आदर-सत्कार किया ॥६॥ ( इन सब प्रमाणोंमें सिद्ध है, कि ) श्रीरामचन्द्रजी स्वभावमें ही छुपातु, कोमल स्वभाववाले, गरीबोंके दिवू और सदा दान देनेवाले हैं । अतएव हे तुलसी ! तू तो कृटिलता और कपट छोड़कर ऐसे प्रभु श्रीरामजीका ही (विशुद्ध धर्म अनन्य प्रेमसे सदा ) भजन किया कर ॥७॥

[ २१६ ]

हरि तत्रि और भजिये काहि ?

नाहिर्न कोउ राम मो ममता प्रनत पर जाहि ॥ १ ॥

कनककमिपु बिरंचिको जन करम मन अरु पात ।

सुतहिं दुखवत विधि न परज्यो कालके घर जात ॥ २ ॥

संसु-सेवक जान जग, बहु बार दिये दम मीम ।

फरत राम-बिरोध मो मपनेहु न दटक्यो ईम ॥ ३ ॥

और देवनकी कहा कही, म्यारयहिके मीत ।

फरहु काहु न राखि लियो कोउ मरन गपउ मभीत ॥ ४ ॥

को न सेवत देत मपति लोकरु यह गीति ।

दासतुलसी दीनपर एक राम ही की प्रीति ॥ ५ ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीहरिजीं छोड़कर और किसीका भजन करें ?

श्रीरघुनाथजीके समान वेला कोई भी नहीं है जिसकी दीन शरणागतों-पर ममता हो ॥१॥ ( प्रभाव सुनिये ) हरिचरितानु प्रसादीका कर्म,

मन भीर वचनमं मक गा, किन्तु प्रदाने (उमके काटको जानने दुर मं  
 उमं पुत्र (प्रह्लाद) को ताड़ना देने समय नहीं रोका (और फलवत्तरं  
 यह यमलोक चला गया। यदि ये पहलेसे उमं रोक देंते तो बेबाग कं  
 मरता ? ॥२॥ मंगार जानता है कि रायण शिवजीका मक था और  
 उमने कां वार भयने मिर काट-काटकर शिवजीको अर्पित किये थे, किन्तु  
 जब यह भीरघुनाथजीके साथ पैर करने लगा तब आपने उसे स्वप्न  
 भी न रोका ( यह जानने थे कि धीरामजीके साथ पैर करनेसे यह माय  
 जायगा ) ॥३॥ (जब प्रयाजी और शिवजीका यह हाल है तब) और  
 देवताओंकी तो बात ही क्या कहाँ जाय ? ये तो स्वार्थके मित्र हैं ही। उनसे  
 किसने भी कर्मा भयमीन शरणागतकी रक्षा नहीं की ॥४॥ सेवा करनेसे  
 कौन धन नहीं देता है ? (सभी देते हैं)। यह तो दुनियाकी चाल ही  
 है। किन्तु हे तुलसीदास ! दीनोंपर तो एक भीरघुनाथजीका ही स्नेह  
 है। ( ये बिना ही सेवाके किये केवल शरण होते ही अपना लेते हैं।  
 देवताओंकी भाँति सयोगपूर्ण अनुष्ठानकी अपेक्षा नहीं करते ) ॥५॥

[ २१७ ]

जो पै दूसरो कोउ होइ ।

तौ हौं वाराहि वार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ॥ १ ॥

काहि ममता दीनपर, काको पतितपावन नाम ।

पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो घाम ॥ २ ॥

रहे संभु चिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।

सोक-सरि घुड़त करीसहि दई काहु न टेक ॥ ३ ॥

विपुल-भूपति-सदसिमहँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि' ।

सकल समरथ रहे, काहु न वसन दीन्हों ताहि ॥ ४ ॥

एक मुख क्यों कहाँ करुनासिंधुके गुन-गाथ ?

भक्तहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ! ॥ ५ ॥

आपसे कहुँ साँपिये मोहि जो पँ अतिहि धिनात ।

दासतुलसी और विधि क्यों चरन परिहरि जात ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि कोई दूसरा ( मुझे शरणमें रखनेवाला ) होता, तो मैं बार-बार रोकर अपना दुःख आपकी ही क्यों सुनाता ? ॥१॥ ( आपको छोड़कर ) दीनोंपर किसकी ममता है, पतितपावन किसका नाम है ? और महापापी भजामिलको ( पुत्रके धोखेसे आपका नारायण नाम लेनेपर ), किसने अपना परम धाम दे दिया ? ( ऐसे एक आप ही हैं और कोई नहीं है ) ॥२॥ शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक लोकपाल थे; पर शंकररूपी नदीमें डूबते हुए गजराजको किसीने भी नहीं बचाया ( आपहीको गरुड़ छोड़कर दौड़ना पड़ा ) ॥३॥ जब बहुतसे राजाओंकी समामें ( नरके अवतार ) अर्जुनकी स्त्री द्रौपदीने ( दुःशासनद्वारा सताये जानेपर ) कहा कि 'हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये'—उस समय यहाँ सभी समर्थ थे, पर किसीने उसे बच नहीं दिया ( आपने ही घत्खायतार धारणकर उस अवलाकी लाज रफ़्सी ) ॥४॥ करुणा-सागर ! आप करुणा-समुद्रके करुणापूर्ण गुणोंकी बचापै एक मुँहसे कैसे कहें ? हे कोशलाधीश ! आपने भक्तोंके लिये अवतार धारणकर क्या-क्या नहीं किया ? ( भक्तोंके हितके लिये सभी कुछ किया ) ॥५॥ यदि

आप मुझसे बहुत ही निराले हैं. तो मुझे किसी केनेके हाथ में  
 दीजिये तो आपके ही समान हो. (सही तो) सब मुझसे-सम  
 किसी तरह ही आपके धर्मों की छत्रछाया नहीं जाने लगा ? मैं य  
 कि मैं तो आपकी धर्मों की छाया में रहूँगा ॥१०

[ ३१८ ]

कषाई देगादरी हरि धाम ।

गमन गकल कलेग कनि-मन, गकल मंगल-कन ॥ १ ॥

गरद-मर सुंदर तरुनवर अरुन-धामिज धरन ।

लसि-लानिग लनिग करतल छवि अनूपम धरन ॥ २ ॥

गंग-जनक अनंग-अरि-प्रिय कपट-बटु बलि-छरन ।

विप्रनिय नृग पधिकके दुस-दोम दाकन दरन ॥ ३ ॥

सिद्ध-सुर-सुनि-धुंद-धुंदित मुग्द सब कहै सरन ।

मकन उर आनत जिनहि जन हीत वारन-वरन ॥ ४ ॥

कृपासिधु मुजान रघुवर धनत-आरति-हरन ।

दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! क्या कभी आप भयने उन पवित्र चरणोंका दर्शन  
 करायेंगे जो समस्त देवों और कलियुगके सभी पापोंके नाश करनेवाले  
 और सम्पूर्ण कल्याणके कारण हैं ? ॥१॥ जिन (चरणों) का रंग शब्द  
 क्रतुमें उत्पन्न, सुन्दर और तुरन्तके बिले हुए लाल-लाल कमलोंके  
 समान है, जिन्हें श्रीलक्ष्मीजी अपनी सुन्दर हथेलियोंसे दयाया करती हैं।

और जो अतुलनीय शोभामय है ॥२॥ जो गंगाके पिता हैं ( जिन चरणों-से गंगाकी उत्पत्ति हुई है ), कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीके प्यारे हैं, तथा जिन्होंने कपट-ब्रह्मचारीका रूप धारणकर राजा बलिको छला है, जिन्होंने ( गौतम ) ब्राह्मणकी स्त्री अहल्याको और राजा नृगको ( शापसे छुड़ाकर परम सुख दिया ) और हिंसक निपादके सारे दुःख और घोर पाप दूर कर दिये ॥३॥ सिद्ध, देवता और मुनियोंके समूह जिनकी सदा वन्दना किया करते हैं, जो सभीको सुख और शरण देनेवाले हैं, एक बार भी जिनका हृदयमें ध्यान करनेसे भक्त स्वयं तर जाता है तथा दूसरोंको तारनेवाला बन जाता है ॥४॥ हे कृपासागर सुचतुर रघुनाथजी ! आप शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हैं । यह तुलसीदास अब आपके उन चरणोंके दर्शनकी आशारूपी प्यामके मारे मर रहा है । ( शीघ्र ही अपने चरण-कमल दिखाकर इसकी रक्षा कीजिये ) ॥५॥

[ २१९ ]

द्वार हैं मोर ही को आजु ।

रटत रिरिहा आरि और न, कौर ही तें काजु ॥ १ ॥

कलि कराल दुकाल दारुन, सब कुभाँति कुसाजु ।

नीच जन, मन ऊँच, जँसी कोढ़मेंकी खाजु ॥ २ ॥

हहरि हियमें सदैव बूझयो जाइ साधु-समाजु ।

मोड़से कहँ कतहुँ कोउ, तिन्ह कबो कोसलराजु ॥ ३ ॥

भाग मुझसे बढ़न ही विनाश है, तो मुझे किमी केमेके हाथ की  
वीक्षणों जो भागके ही समान हो, (मर्दी तो) यह तुम्हारी ही  
विनी गहर भी भागके चरणों को छोड़कर क्यों जाने लगा? मत प  
कि है ना भागदीके चरणोंकी शरणमें रहेगा ॥६॥

[ २१८ ]

कचहि देखाइही हरि चरन ।

गमन मकल कलेम कलि-मल, मकल मंगल-करन ॥ १ ॥

मग्द-भव मुंदर तरुनवर अरुन-चारिज बरन ।

लच्छि-लालिन ललित करतल छवि अनूपम धरन ॥ २ ॥

गंग-जनक अनंग-अरि-प्रिय कपट-चट्टु बलि-छरन ।

विप्रतिय नृग बधिकके दुख-दोस दारुन दरन ॥ ३ ॥

मिद्व-सुग्-भृनि-चंद्र-चंद्रित मुखद सब कहै सरन ।

सकृत उर आनत जिनहि जन होत तारन-चरन ॥ ४ ॥

कृपामिधु सुजान रघुवर प्रनत-आरति-हरन ।

दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! क्या कमी भाव अपने उन पवित्र चरणोंका दर्शन  
करायेंगे जो समस्त क्लेशों और कलियुगके सभी पापोंके नाश करनेवाले  
और सम्पूर्ण कल्याणके कारण हैं ? ॥१॥ जिन (चरणों) का रंग शब्द  
श्रुतमें उत्पन्न, सुन्दर और तुरन्तके खिले हुए लाल-लाल कमलोंके  
समान है, जिन्हें श्रीलक्ष्मीजी अपनी सुन्दर हथेलियोंसे दबाया करती हैं,





दीनता-दारिद्र्य दलै को कृपावारिधि बाहु ।

दानि दसरथरायके, तू वानइत सिरवाहु ॥ ४ ॥

जनमको भूखो भिखारी हँ गरीबनिवाहु ।

पेट भरि तुलसिहि जेवाइय भगति-सुधा सुनाहु ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! आज सबेरेसे ही मैं आपके दरवाजेपर भाँ  
 बैठा हूँ । रँ-रँ करके रट रहा हूँ, गिड़गिड़ाकर माँग रहा हूँ, मुझे और  
 कुछ नहीं चाहिये । वस, एक कौर टुकड़ेसे ही काम धन जायगा ।  
 ( ज़रा-सी कृपादृष्टिसे ही मैं पूर्णकाम हो जाऊँगा ) ॥१॥ ( यदि भाग यह  
 कहें कि कोई उद्यम क्यों नहीं करता ? गिड़गिड़ाकर भीख क्यों माँगना  
 है, तो इसका उत्तर यही है कि ) इस भयंकर कलियुगमें ( उद्यम  
 साधनरूपी उद्यमका ) चढ़ा ही दारुण दुर्भिक्ष पड़ गया है, जितने उद्यम और  
 उपाय-साधन हैं, सभी चुरे हैं । कोई-सा भी निर्विघ्न पूरा नहीं होता, हमने  
 आपसे भीख माँगना ही मैंने उचित समझा है । ( कलियुगी ) मनुष्यों की  
 करतूत तो नीच है ( दिनरात विषयोंके लिये ही पापमें रत रहते हैं )  
 और उनका मन ऊँचा है ( चाहते हैं सच्चा सुख मिले, परन्तु सच्चा मोक्ष-  
 रूप सुख बिना भगवत्कृपा हुए मिलना नहीं ), कौड़की मात्र ( सुखलाने  
 समय सुख मिलता है, पर पीछे मथाद् निकलनेपर जलन पैदा हो जाती है  
 उसी ) के समान ( इन्द्रियोंके साथ विषयका संयोग होनेपर आरम्भमें तो  
 सुख भासता है, परन्तु परिणाममें महादुःख होता है । इन्द्रिये विषय केवल  
 दुःखदायी ही हैं, इन्हीं धानको नमहाकर मैंने किमी भी उद्यममें मन नहीं  
 रखा ) ॥२॥ हृदयमें डरकर कृपालु मन्त-समाजने पूछा कि कहिये,

रीखे (उद्यमहीनको) भी कोई शरणमें लेगा? सन्तोंने (एक स्वरसे)  
 तर दिया कि एक कोशलपति महाराज धीरामचन्द्रजी ही (ऐसा-  
 रणमें) रख सकते हैं ॥३॥ हे छुपाके समुद्र ! आपकी छोड़कर  
 और दृष्टिताका नाश कौन कर सकता है ? हे दशरथनन्दन !  
 का घाना रखनेवालोंमें आप श्रेष्ठ हैं ॥४॥ मैं जन्मका भूखा गरीब  
 ंगा, हे गरीबनिवाज ! आपके द्वारपर आकर पड़ा हूँ । वस, भय  
 लुलसीको भक्तिरूपी अमृतके समान सुन्दर भोजन पेटभर खिला  
 ये (अपने चरणोंमें ऐसी भक्ति दे दीजिये कि फिर दूसरी कोई  
 ना ही न रह जाय ) ॥५॥

[ २२० ]

करिय सँभार, कोसलराय !

और ठौर न और गति, अवलंब नाम विहाय ॥ १ ॥

बूझि अपनी आपनो हितु आप बाप न माय ।

राम ! राउर नाम गुर, सुर, म्बामि, मखा, सहाय ॥ २ ॥

रामराज न चले मानस-मलिनके छल छाय ।

कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय ॥ ३ ॥

लेत केहरिको बयर ज्यों भेक हनि गोमाय ।

त्वोंहि राम-गुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥ ४ ॥

अफनि याके कपट-करनच, अमिन अनय-अपाय ।  
 गुप्ती हरिपुर पसत होत परीछितदि पछिताय ॥ ५ ॥  
 कृपासिंधु ! बिलोकिये, जन-मनकी साँसति साय ।  
 सरन आयो, देव ! दीनदयालु ! देखन पाय ॥ ६ ॥  
 निकट बोलि न बरजिये, बलि जाऊँ, हनिय न हाय ।  
 देखिई हनुमान गोमुख नाहरनिके न्याय ॥ ७ ॥  
 अरुन मुख, धू पिक्कट, पिंगल नयन रोष-कषाय ।  
 धीर सुमिरि समीरको घटिई चपल चित चाय ॥ ८ ॥  
 पिनय सुनि विहँसे अनुजसों बचनके कहि माय ।  
 'भली कही' कस्यो लपन है हँसि, बने सकल बनाय ॥ ९ ॥  
 दर्ई दीनहिं दादि, सो सुनि सुजन-सदन बघाय ।  
 भिटे संकट-सोच, पोच-प्रपंच, पाप-निकाय ॥ १० ॥  
 पेखि प्रीति-प्रतीति जनपर अगुन अनघ अमाय ।  
 दासतुलसी कहत सुनिगन, 'जयति जय उरुगाय' ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे कोशलराज ! मेरी रक्षा कीजिये । आपके नामको छोड़  
 मुझे न तो कहीं और टौर-ठिकाना है, और न किसीका सहाय है  
 (मेरी तो बस, आपके नामतक ही दौड़ है) ॥१॥ आप स्वयं सम-  
 बूझकर अपने सेवकोंका ऐसा कल्याण कर देते हैं, जैसा (सगे) मा-  
 पिता भी नहीं करते (माता-पिता भी मोक्षमुख नहीं दे सकते) ।  
 धीरामजी ! आपका नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहाय  
 है नाथ ! आपके 'राम-राज्य' में मलिन मनवाले (कलिकाल

के कपटकी छाया भी नहीं पड़ सकती; किन्तु यह कायर कलिकाल उसी क्रोधके कारण मुझ भरे हुएको भी अपनी चोटोंसे घायल कर रहा है। (इसे इतना भी तो भय नहीं कि मैं 'रामराज्य' में बस रहा हूँ) ॥३॥ जैसे गौड़ मेढ़कको मारकर सिंहके बैरका बदला लेना चाहता है, वैसे ही यह मुझे आपका दास जानकर मुझपर गहरी चोट कर रहा है (दुःख तो इसको आपसे है, क्योंकि जिसका मन आपके राज्यमें बसता है, उसमें यह प्रवेश नहीं कर पाता; परन्तु आपपर तो इसका ज़ोर चलता नहीं, मुझ-सरीखे क्षुद्र दासको मता रहा है) ॥४॥ भगवान्के परमधाममें आनन्द-पूर्वक निवास करनेवाले महाराज परीक्षितके मनमें भी इसकी कपट-मरी करनूतों, असंख्य अनीतियों और (साधुओंके मार्गमें डाले गये) अनेक विभ्र-शास्त्राओंको सुनकर पछतावा हो रहा है (इसीलिये कि इसे पकड़कर हमने क्यों जीता छोड़ दिया ?) ॥५॥ हे कृपासागर ! तनिक कृपादृष्टि कीजिये, जिससे इस दासके मनकी पीड़ा शान्त हो जाय। हे दीनदयालो ! हे देव ! मैं आपके चरणोंका दर्शन करनेके लिये आपकी शरण आया हूँ ॥६॥ यदि आप (दयावश) उस (कलियुग) को पास बुलाकर रोकना नहीं चाहते, या उसकी 'हाय-हाय' की पुकार सुनकर उसे मारना नहीं चाहते, तो मैं आपकी बलैया लेता हूँ (आप तनिक हनुमान्जीको ही संकेत कर दीजिये, आपका इशारा पाकर) घे इसकी और वैसे ही देखेंगे, जैसे सिंह गायकं मुखकी ओर देखता है ॥७॥ (इस प्रकार कलियुगकी कुटिल करनीके कारण) जब हनुमान्जी लाल मुँह, टेढ़ी भौंहें और पीली आँखोंको क्रोधसे लाल कर लेंगे, तब पवनकुमार धीरधर

हनुमानजीका स्मरण कर इस चञ्चल चित्तवाले (कलि) का सारा बचम्पत हो जायगा (यह अपनी सारी शक्ति मूल जायगा) ॥८॥ त्रेतीय विनती सुनकर धीरघुनाथजी मुसकराये और अपने छोटे भाई लक्ष्मण इन बातोंका तात्पर्य समझाया (कि, देखो, तुलसी कैसा चतुर है। लक्ष्मणजीने हँसकर कहा कि ठीक ही तो कहता है। वस, इस प्रकारके सारी घात घन गयी ॥९॥ भगवान् धीरामचन्द्रजीने इस गरीबका भण्ड कर दिया। यह सुनकर सन्तोंके घर बघाईं बजने लगीं। दुःख, विन्त छल-कपट और पापके समूह सय नष्ट हो गये ॥१०॥ निर्गुण (धीरामजीकी अपने दासपर ऐसी भलौकिक (त्रिगुणमयी लौकिक प्रीति नहीं) परी और माया रहित प्रेम और विश्वास देखकर, हे तुलसीदास ! मुनिश्रेष्ठ कहने लगे कि 'विपुल कीर्तिवाले भगवान्की जय हो, जय हो' ॥११॥

[ २२१ ]

नाथ ! कृपा ही को पंथ चितवत दीन हीं दिनराति ।

होइ धीं केंहि फाल दीनदपालु ! जानि न जानि ॥ १ ॥

गुगुन, ग्यान-विगम-भगति, सु साधननिष्ठी पति ।

भजे विकल पिडोकि कलि अप-अवगुननिष्ठी धानि ॥ २ ॥

अति अनीति-शुनीति भइ सुई तरनि इ ते तानि ।

जाउं कहे ? बलि जाउं, कहें न टाउं, मति अह्लाति ॥ ३ ॥

मदिन न आपनो कोउ, बाप ! कठिन कुमोति ।

नान ! मीधिये तुलसी, मानि माल सुनाति ॥ ४ ॥

मावार्थ—हे नाथ ! मैं दीन दिनरात आपकी कृपाकी ही बात देखता रहता हूँ । हे दीनदयालो ! पता नहीं, आपकी यह कृपा मुझपर कब होगी ! ॥१॥ (देवीसम्पदाके) सद्गुण, धान, वैराग्य और भक्ति आदि सुन्दर साधनोंके समूह कलियुगको देखते ही व्याकुल होकर भाग गये । रह गये, पापों और दुर्गुणोंके समूह ॥२॥ चङ्ग-चङ्गे अन्यायों और अनाचारोंसे पृथ्वा सूर्यसे भी अधिक गरम हो गयी है ( यहाँ सिवा जलनेके शान्तिका कोई साधन ही नहीं रहा ) अब मैं कहाँ जाऊँ ? मैं आपकी बलैया ले रहा हूँ । मुझे और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है । मेरी बुद्धि बड़ी ही व्याकुल हो रही है ॥३॥ हे घापजी ! इस अपनी देहके सहित कोई भी अपना नहीं है ( किसका सहारा लूँ ) । सभी कठोर दुराचारी दिग्वायी देने हैं । हे धनश्याम ! यह तुलसीरूपी फूली-फली धानकी खेती सूखी जा रही है, अब भी मेघ बनकर ( कृपा-जलकी वर्षासे ) इसे सींच दीजिये ॥४॥

[ २२२ ]

बलि जाऊँ, और कासों कहाँ ?

सद्गुनसिंधु स्वामि सेवक-हित कहुँ न कृपानिधि-सो लहौँ ॥ १ ॥

जहँ जहँ लोम-लोल लालचवस निजहित चित चाहनि चहौँ ।

तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों मटाकि कुतरु-कोटर गहौँ ॥ २ ॥

काल-सुभाउ-करम विचित्र फलदायक मुनि सिर धुनि रहौँ ।

मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौँ ॥ ३ ॥

उचित अनाथ होइ दुखमाजन भयो नाथ ! किंकर न हौँ ।

अब रावरो कहाइ न बृक्षिये, सरनपाल ! साँसति सहौँ ॥ ४ ॥

महाराज ! राजीवविलोचन ! मगन-पाप-संताप हैं।

तुलसी प्रभु ! जब तब जेहि तेहि विधि राम निवाहे निखहाँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—प्रभो, बलिहारी! (मैं अपने दुःख) और किसे सुनाऊँ! बारों सद्गुरुओंका समुद्र, सेवकोंका कल्याण करनेवाला और रूपानिधान स्वामी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता ॥१॥ जहाँ-जहाँ लोभ और हाव-चश चञ्चल चित्तमें अपने कल्याणकी कामना करता हूँ, वहाँ-वहाँसे मैं इस तरह निराश हो लौट आता हूँ, जैसे सूर्यको देखते ही उल्लू भटकता हुआ आकर वृक्षके कोटरमें घुस जाता है (जहाँ जिसके पास जाता हूँ, वहाँ दुःखकी आग तैयार मिलती है) ॥२॥ जब यह सुनता हूँ कि काल, स्वभाव और कर्म विचित्र फल देनेवाले हैं, तब सिर धुन-धुन कर रह जाता हूँ, क्योंकि मेरे लिये तो ये तीनों सदा एक-से ही हैं, मैं तो सदा ही दुःसह और दारुण दाहसे जला करता हूँ ॥३॥ हे नाथ! मैं अबतक अपनेको अनाथ समझकर दुःखोंका पात्र बन रहा था सो उचित ही था, क्योंकि मैं आपका दास नहीं बना था; किन्तु हे शरणागत-रक्षक! अब आपका (दास) कहाकर भी मैं दुःख भोग रहा हूँ, इसका कारण समझ-में नहीं आ रहा है ॥४॥ हे महाराज! हे कमलनेत्र ! मैं पाप-सन्तापमें डूब रहा हूँ। हे प्रभो ! तुलसीदासका तभी निर्वाह हो सकता है, जब आप ही जिस-किसी प्रकारसे उसका निर्वाह करेंगे ॥५॥

[ २२३ ]

कपट्टुं करि जानिहौ ।

१५ गरीबनिवाज राज-मनि, विरद-लाज उर आनिहौ ॥ १ ॥

सील-सिंधु, सुंदर, सब लायक, समरथ, सदगुण-खानि हौ ।  
 पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु, प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ ॥ २ ॥  
 वेद-पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन-दानि हौ ।  
 कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी वार विसारे धानि हौ ॥ ३ ॥  
 आस्त-दीन-अनाथनिके हित मानत लौकिक कानि हौ ।  
 है परिनाम भलो तुलसीकी सरनागत-भय भानि हौ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! क्या कभी आप मुझे अपना समझेंगे ? हे राम !  
 आप गरीबनिवाज और राजाधिराज हैं । क्या आप कभी अपने विरुद्धकी  
 आजका मनमें विचार करेंगे? ॥१॥ आप शीलके समुद्र हैं, सुन्दर हैं, सब कुछ  
 रनेयोग्य हैं, समर्थ हैं और सभी सदगुणोंकी खान हैं । हे प्रभो ! आपने  
 रणागतोंका पालन किया है, कर रहे हैं और करेंगे । क्या हम (तुच्छ)  
 रणागतका भ्रम भी पहिचानेंगे ? ॥२॥ वेद और पुराण कह रहे हैं,  
 या संसार भी जानता है कि आप दीनोंपर दया करनेवाले और प्रति-  
 त्त उनमें कल्याण-दान देनेवाले हैं । वाध्य होकर कहना ही पड़ता है, मैं  
 आपकी बर्तिया लेता हूँ, आपने मानो मेरी याग अरनी आदतको ही भुला  
 दिया है ॥३॥ आप दीन, दुखियों और अनाथोंके हित होनेपर भी क्या  
 संसारका (यह) भय मान रहे हैं ? (कि.पेस पापीको अपनानेमें कहीं कोई  
 ल्यायी न कह दे ।) जो कुछ भी हो. तुलसीदासका तो अन्तमें कल्याण  
 तो होगा, क्योंकि आप शरणागतके भयको भ्रमन करनेवाले हैं ॥४॥

[ २२४ ]

पुवरहि कबहुँ मन लागिहै ?

इपय, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब न्यागिहै ॥ १ ॥



जानत गरल अमिय विमोहनम, अमिय गनत करि आगि है ।  
 उलटी रीति-प्रीति अपनेकी तजि प्रभुपद अनुरागिहै ॥२॥  
 आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम-प्रेम-पगि पागिहै ।  
 ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामिसों पाइहै जो मुँह माँगिहै ॥३॥  
 तू यदि विधि सुख-सयन सोइहै, जियकी जरनि भूरि मागिहै ।  
 राम-प्रसाद दासतुलसी उर राम-भगति-जोग जागिहै ॥४॥

मावार्थ-भरे मन ! क्या कर्मी तू श्रीरघुनाथजीसे भी लगेगा ? रे कुटिल ! तू कु-मार्ग, घुरी घाल, दुबुद्धि, घुरी कामनाएँ और छल-कपट सब छोड़ेगा ? ॥१॥ तू थड़े भारी अज्ञानके घरा होकर ( विषयरूपी ) विषको तो अमृत मान रहा है और ( भगवान्के भजनरूपी ) अमृतको भागके समान ( दुःखदायी ) समझ रहा है ! अपनी इस उलटी रीति और विषयोंकी प्रीतिको त्यागकर तू श्रीरामजीके चरणोंमें कब प्रेम करेगा ? ॥२॥ कब तू राम-नामके सुन्दर अक्षर और कोमल अर्थरूपी लड्डुओंको श्रीरघुनाथजीके प्रेमरूपी चाशनीमें पायेगा ? भाव यह कि क्या तू प्रेमपूरित हृदयसे कर्मी अर्थसहित श्रीराम-नामका जप करेगा ? जो तू इस तरह अपने स्वामीके गुणोंको गा-गाकर उन्हें रिझा लेगा, तो तुझे मुँह-माँगा पदार्थ मिल जायगा ॥३॥ इस प्रकार ( करनेसे ) तू ( मोक्षकी ) सुख-सेजपर सदाके लिये सो जायगा और तेरे मनकी ( अविद्याजनित ) बड़ी भारी जलन ( आत्यन्तिक रूपसे ) भाग जायगी । हे तुलसीदास ! श्रीरामजीकी कृपासे तेरे हृदयमें श्रीरामजीका प्रेमरूप भक्तियोग सिद्ध हो जायगा ॥४॥



(महज्या), भौल, पथी (जटायु), मृग (मारीच) और राक्षस (विनायक) इन सभोंमें किमंकं कर्म शुभ थे? (किन्तु भगवान्ने इन सबका उद्धार कर दिया) ॥३॥ मेरे लिये तो एक राम-नाम ही कल्पवृक्ष हो गया है, और यह छपातु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे हुआ है। (इसमें मैं मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है)। भय तुलसी इस अनुग्रहके कारण ऐसा मुनी और निश्चिन्त है, जैसे कोई बालक अपने माता-पिताके राज्यमें होता है ॥३॥

[ २२६ ]

भरोसा जाहि दूसरो सो करो ।

मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्याण करो ॥ १ ॥

करम उपासन, ग्यान, वेदमत, सो सब भाँति खरो ।

मोहि तो 'सावनके अंधाहि' ज्यों झूलत रंग हरो ॥ २ ॥

चाटत रह्यो खान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।

सो हौं सुभिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो ॥ ३ ॥

स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो-नरो ।

सुनियत सेतु पयोधि पपाननि करि कपि-कटक ठरो ॥ ४ ॥

प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो ।

मेरे तो भाय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥ ५ ॥

संकर साखि जो राखि कहीं कलु तौ जरि जीह गरो ।

अपनो भलो राम-नामाहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिसे दूसरेका भरोसा हो, सो करे। मेरे लिये तो इस कलियुगमें एक राम-नाम ही कल्पवृक्ष है, जिसमें कल्याणरूपी फल फला





है। भाव यह कि राम-नामसे ही मुझे तो यह भगवत्-प्रेम प्राप्त हुआ है ॥१॥ यद्यपि कर्म, उपासना और ज्ञान, ये वैदिक सिद्धान्त सभी सय—  
 —रामसे सचे हैं, किन्तु मुझे तो, भावनेके अन्वेषकी मौलिक, जहाँ देवता हैं  
 । इरा-ही-इरा रंग शीघ्रता है। (एक राम-नाम ही मूढ रहा है) ॥२॥  
 । चेकी नार (अनेक जूँटी) पत्तलोंको घाटता फिरा, पर कभी मेरा पेट  
 । मरा। आज मैं नाम-स्मरण करनेसे अमृत-रस परोसा हुआ देवता हूँ।  
 । ने अनेक देवमोग्य मोग मोग, परन्तु कहीं शक्ति नहीं हुई। पूर्ण, नित्य,  
 । आनन्द कहीं नहीं मिला। भव श्रीराम-नामको स्मरण करते ही मैं  
 । रहा है, कि मुक्तिका घाट मेरे सामने परोसा रक्का है अर्थात् प्रह्ला-  
 । दरूप मोक्षरत्न मेरा अधिकार ही हो गया। परेनी थालीके पदार्थ-  
 । जय चाँही तब स्तब्ध, इनी प्रकार मोक्ष तो जय होतूँ तमी मिल जाय।  
 । एतु मैं तो मुक्त पुरुषोंकी कामनाकी वस्तु-श्रीराम-प्रेम-रसका पान कर  
 । हाँ है।) ॥३॥ मेरे लिये राम-नाम स्वार्थ और परमार्थ दोनोंका ही  
 । लयक है, (मुक्तिरूपी स्वार्थ और भगवत्प्रेमरूपी परम अर्थ दोनों ही मुझे  
 । श्रीराम-नामसे मिल गये)। यह पान 'दायी है या मनुष्य' की-सी दुविधा  
 । तो नहीं है (क्योंकि मुझे तो प्राप्त है)। मैंने सुना है कि इसी नामके  
 । भावसे बन्दरोंकी सेना पत्थरोंका पुल बनाकर समुद्रको पार कर गयी  
 । यो ॥४॥ जहाँ जिनका प्रेम और विश्वास है, वहाँ उसका काम पूरा हुआ  
 । है (इसी सिद्धान्तके अनुसार) मेरे तो माँ-बाप ये दोनों अक्षर—'र' और  
 । 'म'—हैं। मैं तो इन्हींके आगे बालहटसे अड़ रहा हूँ, मचल रहा हूँ ॥५॥  
 । यदि मैं कुछ भी लिपाकर कदता होऊँ, तो भगवान् शिवजी साक्षी हैं, मेरी  
 । जीम जलकर या गलकर गिर जाय। (यह 'कवि-कल्पना' या अत्युक्ति नहीं

है, सर्वी स्थितिका वर्णन है) यही समझमें आया कि अपना कल्याण एक राम-नामसे ही हो सकता है ॥६॥

[ २२७ ]

नाम राम रावरोई हित मेरे ।

स्वारथ-परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टरे ॥१॥

जननी-जनक तज्यो जनमि, करम बिनु विधिहु सृज्यो अबडरे ।

मोहुँसों कोउ-कोउ कहत रामहि को, सो प्रसंग केहि केरे ॥२॥

फिरयाँ ललात विनु नाम उदर लागि, दुखउ दुखित मोहि हरे ।

नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं यपुर बहरे ॥३॥

साधत साधु लोक-परलोकहि, सुनि गुनि जतन पनेरे ।

तुलसीके अवलंब नामको, एक गाँठि कइ केरे ॥४॥

भावार्थ—हे रामजी ! आपका नाम ही मेरा तो कल्याण करनेवाला है । यह बात मैं हाथ उठाकर स्वार्थके और परमार्थके सभी संगी-साथियोंसे (परिवारके लोगोंसे और साधकोंसे) पुकारकर कहता हूँ (घोषणा कर रहा हूँ) ॥१॥ माता-पिताने तो मुझे उत्पन्न करके ही छोड़ दिया था, प्रह्लाने भी अज्ञाना और कुछ वेदवशात् बनाया था । फिर भी कोई-कोई मुझे 'रामका' (दास) कहते हैं, यह किस अभिप्रायसे कहते हैं ? (यह राम-नामका ही प्रताप है) ॥२॥ जब मैं राम-नामके कारण नहीं हुआ था तब मैं पेट भग्ने हो (द्वार-द्वारपर) लज्जान्ना फिरना था । मेरी और वैष्णवका दुःखको भी दुःख होता था (मेरी जान थी) । श्रीरामकी कृपाने पहले मेरे लिये जो यज्ञ और





होगा, तो यह इस बातको भी स्वीकार नहीं करता; यह कहता है कि यदि श्रीरामके मिलनेसे राम-नाम छोड़ना पड़े तो मुझे श्रीराम मिलनेकी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो उनका नाम ही सदा चाहिये ऐसे नाम-प्रेमीसे राम कितना प्रेम करते हैं, सो तो केवल राम ही जानें हैं; गोसाईंजी कहते हैं कि जो इस प्रकार राम-नामका मतवाला है उसका इस कराल कलिकालमें, आदि, मध्य और अन्त, तीनों कालोंमें (कल्याण होगा) ॥१॥ नामकी महिमा समझकर अभिमान लोभ, अज्ञान, क्रोध और काम सजुचा जाते हैं, सामने नहीं आते। वे सज्जन सदा राम-नामका जप करते रहते हैं, उनपर कहीं घृष भी छाव कर देती है (महान्-से-महान् दुःख भी सुखरूप बन जाते हैं) ॥२॥ यदि कोई कहे कि नामके प्रभावसे पत्थरमें कमल उत्पन्न हो गया, तो उसे भी सच ही समझना चाहिये (क्योंकि राम-नामके प्रभावसे असम्मव भी सम्मव हो जाता है) जिस नामको सुनने और स्मरण करनेसे भीलनी शबरी भी परम भाग्यवती तथा शील और पुण्यमयी बन गयी (उससे क्या नहीं हो सकता ?) ॥३॥ वाल्मीकि और अजामिलके पास तो कोई भी साधनकी सामग्री नहीं थी, किन्तु उन्होंने भी उलटे-पुलटे राम-नामके माहात्म्यसे घुँघचियोंसे जवाहरात जीत लिये (परम रत्न परमात्माको प्राप्त कर लिया) ॥४॥ नामकी शक्ति श्रीरघुनाथजीसे भी अधिक है, (क्योंकि श्रीरामजी इस नामसे ही वशमें होते हैं) इस राम-नामने प्रामीण मनुष्योंको चतुर नागरिक बना दिया (असभ्योंको परम पुनीत महात्मा बना दिया)। जिसे जानकर तुलसीदास-सरीखे बुरे जीव भी डंकेकी घोट अच्छे हो गये (किर कहनेको क्या रह गया ?) ॥५॥



[ २३० ]

अकारण को हित और को है ।

विरद 'गरीब-निवाज' कानको, भौंह जामु जन जेहै ॥१॥

छोटो-बड़ो चहत सब स्वारथ, जो विरंचि विरचो है ।

कौल कुटिल, कपि-भालु पालियो कौन कृपालुहि सोहै ॥२॥

काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि विछोहै ।

को तुलसीसे कुसेवक संग्रहो, सठ सब दिन साईं द्रोहै ॥३॥

भावार्थ—बिना ही कारण हित करनेवाला ( श्रीरामचन्द्रजीको छोड़ कर ) दूसरा कौन है? गरीबोंको निहाल कर देनेका विरद किसका है कि जिसकी ( कृपामयी ) भृकुटीकी ओर भक्त ताका करते हैं ॥१॥ छोटे या बड़े जो भी ब्रह्माके रचे हुए हैं वे सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, (बिना स्वार्थके कोई किसीका हित नहीं करता) । मला, भौल, चन्दर और रीछ आदिका पालन-पोषण करना ( श्रीरामजीके सिवा ) दूसरे किस कृपालु स्वामीको शोभा देता है? ॥२॥ ऐसा किसका नाम है जिसे आलस्य या क्रोधके साथ भी लेनेपर पाप और अवगुण दूर हो जाते हैं? ( श्रीराम-नाम ही ऐसा है ) । जिसने मूर्खतावश सदा अपने स्वामीसे द्रोह किया है, उस तुलसी-सरीखे नीच सेवकको भी अपना लिया ( इससे अधिक अकारण हित करना और क्या होगा? ) ॥३॥

[ २३१ ]

और मोहि को है, काहि कहिहीं ?

रंक-राज ज्यों मनको मनोरथं, केहि सुनाइ सुख लहिहीं ॥१॥



उसीमें परम सुख है) ॥३॥ इस दासके मनमें बस एक यही कामना कि यह सदा तुम्हारी जूती पकड़े रहे (शरणमें पड़ा रहे)। या तो मुझे ध्यान दे दो (कि हम तेरी यह कामना पूरी कर देंगे) अथवा इस बातके मनमें निश्चय कर लो कि हम तुलसीका यह प्रण कियाह देंगे ॥३॥

[ २३२ ]

दीनबंधु दूसरो कहें पावों ?

को तुम विनु पर-पीर पाइ है ? केहि दीनता सुनावों ॥१॥  
 प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक, जहँ-जहँ चितहिं दोलावों ।  
 इहै समुझि सुनि रहों मौन ही, कहि भ्रम कहा गवावों ॥२॥  
 गोपद बुढ़िबे जोग करम करों, चातनि जलधि यहावों ।  
 अति लालची, काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावों ॥३॥  
 तुलसी प्रभु जियकी जानत सब, अपनो कछुक जनावों ।  
 सो कीजै, जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावों ॥४॥

भावार्थ—(तुम-या) दीनबंधु दूसरा कहीं पाऊँगा ? हे भाग ! तुमको छोड़कर परमेश (भक्तके) दुःखमें तुलसी होगयाला दूसरा कौन है ? फिर अपनी दीनताका दूसरा किसके भाग रोना फिर ? ॥१॥ जहाँ जहाँ है अपने मनको दुःखाना है, वहाँ वहाँ कहीं ताँ वेगे शामी मिलने हैं जिनके दया नहीं है, और कहीं वेगे मिलने हैं जो दयालु तो हैं, पर भयानक (भगवत) हैं । यह गुन-गमनाकर बुध ही रह जाता है, क्योंकि वेगोंके स्वामते कुछ कहकर भरना मरम ही क्यों नाँउ ? (मेरे भी तुलसी भावना



## धिनय-पत्रिका

घमण्डमें मनवाली बुद्धि एवं करोड़ों बुरे-बुरे कर्म—इन सबके कारण परम पद और शान्ति कैसे मिल सकती है ? ॥२॥ सन्तों और गुरुओं से धा करने तथा वेद और पुराणोंके सुननेसे परम शान्तिहा ऐसा निश्चय हो जाता है जैसे मारंगी बजते ही राग पहचान लिया जाता है। हे तुलसी ! प्रभु रामचन्द्रजीका स्वभाव तो अवश्य ही कल्पवृक्षके समान है ( जो उनसे माँगा जाता है, वही मिल जाता है ) किन्तु, साथ ही वह पेसा है, जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब । जिस प्रकार अच्छा या बुरा जैसा मुँह बनाकर दर्पणमें देखा जायगा, वह वैसा ही दिखायो देगा; इसी प्रकार भगवान् भी तुम्हारी भावनाके अनुसार ही फल देने ॥३॥

[ २३४ ]

जनम गयो बादिहिं बर वीति ।

परमारथ पाले न परयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥

खेलत खात लरिकपन गो बलि, जौवन जुवतिन लियो जीति ।

रोग-वियोग-सोग-श्रम-संकुल बड़ि-बय बृथहि अतीति ॥२॥

राग-रोष-इरिषा-बिमोह-बस रुची न साधु-समीति ।

कहे न सुने गुनगन रघुबरके, भइ न रामपद-प्रीति ॥३॥

हृदय दहत पछिताय-अनल, अब, सुनत दुसह भवभीति ।

तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि विरदकी रीति ॥४॥

भावार्थ—सुन्दर ( मनुष्य ) जीवन ध्यर्थ ही घात गया । तनिक भी परमार्थ पल्ले नहीं पड़ा । दिनों-दिन अनीति बढ़ती ही गयी ॥१॥ लड़कपन तो खेलने-खाने घात गया, जवानीको स्त्रियोंने जीत लिया और





घमण्डसे मतवाली बुद्धि एवं करोड़ों बुरे-बुरे कर्म—इन सबके कारण परम पद और शान्ति कैसे मिल सकती है ? ॥२॥ सन्तों और गुरुओं से सेवा करने तथा वेद और पुराणोंके सुननेसे परम शान्ति प्राप्त हो निश्चय हो जाता है जैसे सारंगी बजते ही राग पहचान लिया जाता है हे तुलसी ! प्रभु रामचन्द्रजीका स्वभाव तो अवश्य ही करारवृक्षके समान है ( जो उनसे माँगा जाता है, वही मिल जाता है ) किन्तु, साथ ही वह ऐसा है, जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब । जिस प्रकार अच्छा या बुरा जैसा मुँह बनाकर दर्पणमें देखा जायगा, वह वैसा ही दिखायी देगा, ऐसे प्रकार भगवान् भी तुम्हारी भावनाके अनुसार ही फल देंगे ॥३॥

[ २३४ ]

जनम भयो बादिहिं घर भीति ।

परमारथ पाले न परयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौवन जुवतिन लियो जीति ।

रोग-वियोग-सोग-श्रम-संकुल बड़ि बय शृथहि अतीति ॥२॥

राग-रोष-इरिषा-विमोह-बस रुची न साधु-समीति ।

कहे न सुने गुनगन रघुवरके, भइ न रामपद-प्रीति ॥३॥

हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दूमइ भवभीति ।

तुलसी प्रभु ते होइ सो कीजिय गम्यसि विरदकी रीति ॥४॥

भावार्थ—मुन्दर ( मनुष्य ) जीवन व्यर्थ ही बीत गया । मनुष्य भी परमार्थ पालने नहीं पढ़ा । दिनों-दिन भगीति बढ़ती ही गयी ॥१॥ लड़कपन से खेलने-खाने बीत गया, जवानपन में श्रमोंसे जीवन व्यर्थ और



## यिनय-पत्रिका

है और उनको भगवान्‌में भी अधिक समझ रक्खा है ॥२॥  
लिये निरन्तर करोड़ों उपाय करने-करते कर्माँ पैर नहीं दुभे (दिन  
विषय-भोगोंके सुखोंमें इधर-उधर मटकता फिरा) । हृदय राम्‌के उ  
भाँति सदा मैला ही बना रहा, कर्माँ निर्मल अथवा स्थिर नहीं हुआ  
इस दीनताकी दूर करनेके लिये अगणित उपाय मनमें मोवे-  
तुलसी ! चिन्तामणि ( श्रीरघुनाथजी ) को पहचाने बिना कि  
चिन्ता नहीं मिट सकती ( परमात्माका और उनकी सुहृद्ताका  
होनेसे ही चिन्ताओंका नाश होगा ) ॥३॥

[ २३६ ]

जो पै जिय जानकी-नाथ न जाने ।  
ताँ सब करम-धरम श्रमदायक ऐसैह कहत सयाने ॥१॥  
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगविद वेद-पुरान बखाने ।  
पूजा लेत, दैत पलटे सुख हानि-लाम अनुमाने ॥२॥  
काको नाम घोखेह सुमिरत पातकपुंज पराने ।  
विप्र-बधिक, गज-गीघ कोटि खल कौनके पेट समाने ॥३॥  
मेरु-से दोष दूरि करि जनके, रेनु-से गुन उर आने ।  
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि मजहि न अजहुँ अयाने ॥४॥

भावार्थ—अरे जीव ! यदि तूने श्रीजानकीनाथ रघुनाथजीके  
( तत्त्वसे ) नहीं जाना तो तेरे सब कर्म, धर्म केवल परिश्रम ही देनेवाले  
हैं । ( उनसे कोई असली लाभ नहीं होगा ) बुद्धिमान् पुरुषोंने ऐसा ही  
कहा है । ( श्रीरामचन्द्रजीको तत्त्वसे जान लेनेमें ही सारे कर्म-धर्मोंकी



बाद-विवाद, स्वाद तजि मजि हरि, सरस चरित चित लावहि ।

तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥१॥

भावार्थ—अरी जीम ! तू श्रीरामजीका गुणगान क्यों नहीं करतें दिन-रात दूसरोंकी निन्दा कर क्यों व्यर्थ हो आसक्ति बढ़ा पा है ? ॥१॥ मनुष्यके मुखरूपी सुन्दर और पवित्र मन्दिरमें बसकर क्यों उलजा रही है ? ( विषयकी बातें छोड़कर श्रीराम-नाम क्यों नहीं लेती ? चन्द्रमाके पास रहती हुई भी अमृतको छोड़कर क्यों भृगुवृष्णाके जल लिये दौड़ रही है ? ( श्रीराम-नामरूपी अमृतका पान क्यों नहीं करती ? ) ॥२॥ संसारके भोगोंकी बातें कलियुगरूपी कुमुदिनी ( विकसित करनेके ) लिये चाँदनीके सदृश है, उसे गूब कान लगाकर प्रेमपूर्वक सुना करती है । अरी जीम ! उस विषय-चर्चाको रोककर धीहरिके सुन्दर यशका गान कर, जिससे कानोंका कलंक दूर हो ( विषयोंकी बातें निरन्तर सुनते-सुनते कान कलंकी हो गये हैं, उनका यह कलंक भगवत्कथाके ध्वज करनेसे ही दूर होगा ) ॥३॥ बुद्धिरूपी सुवर्ण और युक्तिरूपी सुन्दर मणियोंका रच-रचकर एक द्वार तैयार कर और उन द्वारको शरणागतोंको मुक्त देनेवाले सूर्यकुलरूपी कमलके ( प्रकृति करनेवाले ) सूर्य महाराज रामचन्द्रजीको पहिना । ( विगुञ्ज बुद्धि और उन्नत युक्तियोंद्वारा निश्चय करके धीहरिका नाम-गुण-कीर्तन कर ) ॥४॥ याद-विषाद तथा म्यादको छोड़कर धीहरिका भजन कर और उनही रमणीली छीलामें ली लगा । यदि नृपेक्षा करेगी तो तुलसीदास संसार-सागरमें पार हो जायगा ( जन्म-मरणमें मुक्त हो जायगा ) और नृपेक्षा तीनों शोकोंमें पवित्र ज्ञानिको प्राप्त होगी ॥५॥



उतपति पांडु-सुतनकी करनी सुनि सतपंथ दरयो ।  
 ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि-सुनि लोक तरयो ॥२॥  
 जो निज धरम वेद-बोधित सो करत न कछु बिसरयो ।  
 बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उधरयो ॥३॥  
 ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जरयो ।  
 अजर-अमर, कुलिसहुँ नाहिंन बध, सो पुनि फेन मरयो ॥४॥  
 विप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं विगरयो ।  
 उनको कियो सहाय बहुत, उरको संताप हरयो ॥५॥  
 गनिका अरु कंदरपतें जगमहँ अघ न करत उपरयो ।  
 तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धरयो ॥६॥  
 केहि आचरन भलो मानें प्रभु सो तौ न जानि परयो ।  
 तुलसिदास रघुनाथ-कृपाको जोवत पंथ खरयो ॥७॥

भावार्थ—जिसे धीहरिने दृढ़तापूर्वक हृदयमें लगा लिया, वही गुनील है, पवित्र है, वेदका ज्ञाता है और समस्त विद्या एवं साधुगुणों में भरा हुआ है (जिसका भगवान् कृपा करते हैं, वारं साधुगुण भगवान् की वढ़ानेके लिये उसके भग्दर भाग ही भा जाते हैं) ॥१॥ पाण्डुके पुत्र की उगमि और उनकी करतुतको सुनकर सम्मार्गिक हर गया था; किन्तु ये ही धीहरि-कृपाने, तीनों लोकोंमें पूजनीय हो गये और उनका पतिपतन गुन सुनकर योग तर गये ॥२॥ जिस राजा भूगने वेद विदित स्वधर्मके पालनमें लजिक भी कगर मही की थी और जो विना ही विदित होयके गिरगिट होकर नृत्तमें पड़ा हुआ था, उगही भागने हाय पकड़कर





## विनय-पत्रिका

भावार्थ—हे रामजी ! जिसपर आप प्रसन्न हो गये, वह पुण्यात्मा है और वही पवित्र है। वेदया ( विंगला ), गीघ ( जटा ) चहेलिया ( वाल्मीकि ) जो परम धाम वैकुण्ठको चले गये, उन् प्रयागमें जाकर तप किया और कण्डोंको आगमें जलकर मरे राजा नृग कभी वेदोक्त मार्गसे नहीं डिगा था, किन्तु संसार है, उसने कितने दुःख भोगे ( गिरगिटकी योनि पाकर हज़ार कुपमें पड़ा सड़ता रहा ! ) और वह हाथी कहाँका दीक्षित था, एक धार याद करते ही आप अपने दाहन गरुड़को छोड़कर सुचक लिये दौड़े आये ? ॥२॥ देवता, मुनि और ब्राह्मणोंके ऊँचे छोड़कर आपने गोकुलमें एक गोप ( मन्दजी ) के घरमें जन्म कि कौरव-पति राजा दुर्योधनके पेश्वर्यकी ठुकराकर आपने ( विदुरके घर जाकर ( साग-भाजीका ) भोजन किया ॥३॥ भगवान् अनन्य प्रेमी मतोंके साथ बहुत भला मानते हैं। हम अनन्य प्रेम की रीति कुछ-कुछ आपने भर्जुनको धतापी थी। हे तुलसीदास रामजी तो सरल स्वाभाविक विगुरु प्रेमके भपीन हैं, नृगों कि गाधन हैं वे ठेठे हैं, जैन पानीकी बिकनाई ! ( पानी पड़नेपर, पं देरके जिये शरीर बिकना-सा मालूम हांता है, पर गूबनेपर फिर क का-र्यों रूपा हो जाता है। इसी प्रकार दूररे गाधनोंगे कामना पूर्ति होनेपर शरीरक गूब तो मिलता है, परन्तु नृगरी कामना उन् ही मिट जाता है ) ॥५॥



परन्तु जब उन सबका काम पढ़ा, तब आप सन्त-समाजकी भी छोड़कर (उनकी सहायताके लिये) वहाँसे चल दिये ॥३॥ आज भी इस मारे दरवाजेपर ऐम्मेंका ही अधिक आदर है और न जानें कितने पापें नित्य पवित्र बनाये जाते हैं। ऐसा होते हुए भी अथक मेरी मुर्तई क्यों नहीं हुई? क्या मैं कम पापी हूँ? संसारमें जितने दुष्ट हुए हैं, हैं और होंगे, वे सब तो मेरे पसंगमें भी पूरे न होंगे ॥४॥ अथक तो मैं आपके करतबकी ओर टक लगाये देख रहा था, (बाट देखता था कि मेरा भी उद्धार कर्मा कर देंगे)। परन्तु आपने इधर कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिये बस, अब तुलसीदास आपके नामका पुतला\* बाँधेगा, क्योंकि मुझसे अब इतना उपहास सहन नहीं होता ॥५॥

[ २४२ ]

तुमसम दीनबंधु, न दीन कोउ मोसम, सुनहु नृपति रघुराई ।  
मोसम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुमसम हरि ! न हरन कुटिलारै ॥१॥  
हैं मन-वचन-करम पातकरत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई ।  
हैं अनाथ, प्रभु ! तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥२॥  
हैं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम-पुराननि गाई ।  
हैं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा विसराई ॥३॥

\* जब मर्तीको खेल दिखानेपर कुछ नहीं मिलता, तब वे करदेका पुतला बनाकर बौसपर लटकाये हुए कहते फिरते हैं कि देखो यह कैसा अनुदार है। इससे लजित होकर उनको कुछ-न-कुछ दे ही देता है। इसी तरह मैं भी एक पुतला बनाकर लिये फिरेगा। लोग पूछेंगे, तो यही उत्तर दूँगा कि यह अबोधपाथिव मराठवा थीरामचन्द्रजी हैं ! इससे आपको लाज लगेगी तब आप ही अपनायेंगे।



जननि-जनक, सुत-दार, बंधुजन मये बहुत जहँ-जहँ हों जायो ।  
 सब स्वारथहित प्रीति, कपट चित, काहू नहिं हरिमजन सिखायो ॥२१॥  
 सुर-मुनि, मनुज-दनुज, अहि-किन्नर, मैं तनु धरि सिर काहि न नायो ।  
 जरत फिरत त्रयताप पापबस, काहु न हरि ! करि कृपा जुड़ायो ॥२२॥  
 जतन अनेक किये सुख-कारन, हरिपद-विमुख सदा दुख पायो ।  
 अथ थाक्यो जलहीन नाब ज्यों देखत विपति-जाल जग छायो ॥२३॥  
 मो कहँ नाथ ! वृक्षिये, यह गति सुख-निधान निज पति बिसरायो ।  
 अथ तजि रोप करहु करुना हरि ! तुलसिदास सरनागत आयो ॥२४॥

भावार्थ—यही जानकर मैंने (सब ओरसे हटाकर) आपके चरणों  
 चित्त लगाया है कि हे नाथ ! आपके समान, बिना ही कारण, हित  
 करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं ॥१॥ जहाँ-  
 जहाँ (जिस-जिस योनिमें) मैंने जन्म लिया, वहाँ-वहाँ मेरे बहुत-से पिता-  
 माता, पुत्र-स्त्री और भाई-बंधु हुए । परन्तु वे सभी स्वार्थ-साधनके लिये  
 मुझसे प्रेम करते रहे, उनके मनमें छल-कपट रहा । इसीलिये किसीने भी  
 मुझे श्रीहरिका भजन नहीं सिखाया (सभी संसारमें फँसे रहनेकी शिक्षा  
 देते रहे, भगवद्भजनका उपदेश नहीं दिया) ॥२॥ शरीर धारण कर मैंने (मपनी  
 भलाई करनेके लिये) देवता-मुनि, मनुष्य-राक्षस, सर्प-किन्नर आदि किसको  
 सिर नहीं नवाया ? (सभीके चरणोंमें सिर रख-रखकर खुशामद की) किन्तु,  
 हे हरे ! आपके फलस्वरूप तीनों तापोंसे जलते फिरते हुए मुझको किसीने  
 किया । (मोक्ष-प्रदान कर संसारका ताप कोई नहीं  
 ॥३॥ मैंने सुखके लिये बहुत-से साधन किये, पर भगवच्चरणोंसे





शीतल मधुर पिपूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।  
 बहु माँतिन श्रम करत भोहबस, वृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥२॥  
 करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।  
 वृषांत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि त्रिकल अकास निचोयो ॥३॥  
 तुलसीदास प्रभु ! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछु नहिं गोयो ।  
 दासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न भाय ! नींद भरि सोयो ॥४॥

भावार्थ—इस मूल मनने मुझको खूब ही छकाया । हे करुणामय !  
 मुनिये, इसीके कारण मैं बारम्बार जगत्में जनम-जनमकर दुःखसे रोता  
 फिरा ॥१॥ शीतल और मधुर अमृतरूप सहजसुख (प्रज्ञानन्द) जो अत्यन्त  
 निकट ही रहता है, (आत्माका स्वरूप ही सत्, चित्, ध्यानन्दघन है) मैंने  
 इस मनके फेरमें पड़कर उसे यों भुला दिया, मानो वह बहुत ही दूर हो ।  
 मोहयश अनेक प्रकारसे परिश्रम कर मुझ मूलने ध्यर्थ ही पानीको  
 बिलोया (पिपयरूपी जलको मथकर उससे परमानन्दरूपी घी  
 निकालना चाहा) ॥२॥ यद्यपि मनमें यह जानता था कि कर्म कीचड़  
 है, (उसमें पड़ते ही सब ओरसे मलिनता छा जायगी) फिर भी चित्तको  
 उर्मांमें सानकर (प्यास बुझानेके लिये) मैं कुटिल, मलसे ही मलको  
 धोया चाहता हूँ । प्यास लग रही है, पर मैं ऐसा दुष्ट हूँ कि धीगंगाजीको  
 छोड़कर बार-बार व्याकुल हो आकाश निचोड़ता फिरता हूँ (सबे सुखकी  
 प्रातिके लिये दुःखरूप विषयोंमें भटकता हूँ) ॥३॥ हे नाथ ! मैंने अपना एक  
 भी दोष भापसे नहीं छिपाया है, भतः भय इस तुलसीदासपर कृपा कीजिये ।  
 मुझे बिछीना पिछाने-पिछाने ही सारी रात बीत गयी, पर हे नाथ ! कभी



नींदभर नहीं सोया । ( सुख-प्राप्तिके उपाय करते-करते ही जीवन बी गया, आपको प्राप्तकर पूर्णकाम हो, योगरूप सुखकी नींदमें कमी न सो पाया । अथ तो कृपा कीजिये ) ॥४॥

[ २४६ ]

लोक-वेद हूँ विदित बात सुनि-समुक्ति

मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति ।

छोटे-बड़े, खोटे-खरे, मोटेऊ दूबरे,

राम ! रावरे निवाहे सबहीकी निबहति ॥१॥

होती जो आपने बस, रहती एकही रस,

दुनी न हरप-सोक-साँसति सहति ।

घहतो जो जोई जोई, लहतो सो सोई सोई,

केहू भाँति काहूकी न लालसा रहति ॥२॥

करम, काल, सुमाउ गुन-दोष जीव जग मायाते,

सो समै भाँह चकित चहति ।

ईसनि-दिगीसनि, जोगीसनि-भुनीसनि हू,

छोड़ति छोड़ाये तें, गहाये तें गहन ॥३॥

मतरंजको सो राज, फाठको मर्ब समाज,

मदाराज याजी रची, प्रथम न हति ।

तुलसी प्रसूके हाथ हारियो जीतियो नाथ !

यद् देव, यद् सुग सारदा कहति ॥४॥



राम जपु जीह ! जानि, प्रीति सों प्रतीत मानि,  
 रामनाम जपे जैह जियकी वरनि ।  
 रामनामसों रहनि, रामनामकी कहनि,  
 कृष्टिह कहे भक्त-नोक-नंकट-हरनि ॥ १ ॥  
 रामनामको जपे सुख-सुख बनराज,  
 कहे कहे ह्याह कही आपनी करनि ।  
 रामनामको जपे कस्योह मुगति हेतु,  
 उख नशर संसु सहित धरनि ॥ २ ॥  
 रामनामको जपे अयाध-अपराध-निधि,  
 कहे कहे जरा जपे पूजे मुनि अमरनि ।  
 रामनामको जपे, मोक्षो सिधु घटजहुँ नाम-बल,  
 इत्यो हिय, खारो भयो भूसुर-हरनि ॥ ३ ॥  
 रामनामको जपे अपार, सैष-सुक धार-धार  
 नति-अनुसार मुध वेदह धरनि ।  
 रामनामको जपे तुलसीको कामतरु,  
 रामनाम है विमोह-तिमिर-हरनि ॥ ४ ॥

राम-नाम-है-जीभ ! राम-नाम-हा-जप-कर, राम-नाम-के-  
 (तल्प-को) जप-कर । एक-राम-नाम-के-जप-से-तेरे-हर-पके-  
 राम-नाम-के-पर-पल-हो-भीर-राम-नाम-ही-

साधन किया कर। (एक प्रकार नाम की साधनागति) बुद्धि लालियुगके पापों, दुःखों और संकटोंको हरनेवाली है ॥१॥ राम-नामके प्रभावमें पनेश (मर्यादामें) पूजे जाते हैं। गणेशजीने अपनी करनीको भयं कहा है, कुछ छियाकर नहीं रखता। यह राम-नाम सांसारकी ममद्रका पुल है (हयर घड़कर मल-जन सहज ही मयमागरमें भर जाते हैं)। काशीमें भगवान् शंकर भी पार्यतीके महित जीयोंको मोक्ष देनेके लिये राम-नामको बपा करते हैं ॥२॥ घान्मीकि ध्यायके मनस्त पाप घं, किन्तु उलटा नाम 'मरा-मरा' जपर ये ऐं हो गये कि मुनियों और देवताओंने भी उनकी पूजा की। भगन्त्य क्रिने भी इसी राम-नामके चलपर पिन्याचल-पर्वतको रोक लिया एवं ममद्रको मुग्घा दिया था। पीछे यह ममद्र उन्हीं शासन (भगन्त्य) के मयमें हृदयमें हार मानकर मारा हो गया ॥३॥ राम-नामकी ध्यार महिमा है। शेर, शुकदेव, घेद और पण्डितोंने धार-धार अपनी बुद्धिके अनुसार ह्यका धर्षण किया है। राम-नाममें प्रीति (मिना तुलसीदासके लिये कामधेनु और करपयूष ही है (उसे तो इसी राम-नामसे मनचाहा दुर्लभ पद मिला है)। अधिक कथा, यह राम-नाम ममानके अन्धकारको दूर करनेके लिये साक्षान् मूर्य है ॥४॥

[ २४८ ]

पाहि, पाहि राम ! पाहि, राममद्र, रामचंद्र !

मुजस थवन मुनि आयो हौं सरन ।

दीनवन्धु ! दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख

दारुन दुसह दर-दुरित-हरन ॥ १ ॥

## विजय-गणिका

जब जब जग-जाल व्याकुल करम काल,  
राज सल भूय मये भूतल-भरन ।  
तब तब ननु धरि, भूमि-भार दूरि करि  
घापे घुनि, सुग, साधु, आश्रम, चरन ॥ २ ॥  
वेद, लोक, मय सासी, काहूकी रती न राखी,  
रावनकी बंदि लागे अमर मरन ।  
ओक दे बिमोक किये लोकपति लोकनाथ  
रामराज मयो धरम चारिहु चरन ॥ ३ ॥  
सिला, गुह, गीष, करि, मील, मातु, राविचर,  
म्याल ही कृपालु कीन्हे तारन-तरन ।  
पील-उदरन ! सीलसिंधु ! ढील देखियतु  
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! हे कल्याणस्वरूप रघुनाथजी ! रक्षा कीजिये,  
रक्षा कीजिये । आपका सुयश सुनकर शरण आया हूँ । हे दीनदन्धी !  
आप दीनता, दरिद्रता, सन्ताप, दोग, दारुण दुःख और असहनीय भय तथा  
पापोंको नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥ जय-जय साधु (सन्त और गौ-ब्राह्मण)  
काल और कर्मके बश हो जगज्जालमें फँसकर व्याकुल हुए और सब दुष्ट  
राजा पृथ्वीपर भारस्वरूप हुए, तब-तब आपने अघतार-शरीर धारण  
कर (दुष्टोंका संहार कर) पृथ्वीका भार दूर कर दिया और मुक्ति  
देवता, सन्त एवं वर्णाश्रम-धर्मकी पुनः स्थापना की ॥ २ ॥ वेद और संसार  
दोनों ही इसके साक्षी हैं कि जब रावणने किसीकी भी प्रतिष्ठा नहीं



जब जब जग-जाल व्याकुल करम काल,

सब खल भूप-मये भूतल-भरन ।

तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि

थापे मुनि, सुर, साधु, आश्रम, बरन ॥ २ ॥

वेद, लोक, सब साखी, काहूकी रती न राखी,

रावनकी बंदि लागे अमर मरन ।

ओक दै बिसोक किये लोकपति लोकनाथ

रामराज भयो धरम धारिहु चरन ॥ ३ ॥

सिला, गुह, गीघ, कपि, भील, मालु, राविचर,

ख्याल ही कृपालु कीन्हे तारन-तारन ।

पील-उद्धरन ! सीलसिंधु ! डील देखियहु

तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! हे कल्याणस्वरूप रघुनाथजी ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये । भावका सुवश सुनकर शरण भाया हूँ । हे वीरनाथी ! भाव शून्यता, दूरिद्रता, मन्ताप, दोष, दाहण पुनः भीर भगवन्गीप मय तथा पापोंकी नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥ जब-जब साधु (सन्त भीर गी-व-व-व) काल भीर कर्मके यश हो जगज्जालमें पै-मकर व्याकुल हुए भीर तब तब राजा पृथ्वीपट मारम्भकव हुए, तब-तब आपने भयतार-शरीर धाक कर (दुष्टोंका संहार कर) पृथ्वीका भार दूर कर दिया और तुम्हें देवता, सन्त एवं वर्णाश्रम-धर्मकी पुनः स्थापना की ॥ २ ॥ वेद और संतर्न दोनों ही हस्तके स्वाधी हैं कि जब शयणमें किसीकी भी प्रतिज्ञा नहीं

इन्हें ही और देवतागण उसके कैदखानेमें पड़े-पड़े मरने लगे, तब हे भगवन् (आपहीने उन लोक-पतियोंको—इन्द्र, कुबेर आदिकी आश्रय देकर शंकरहित किया और उन्हें फिरसे अपने-अपने लोकोंका स्वामी बनाया, और हे रामजी ! आपके राज्यमें धर्म चारों चरणोंसे युक्त (धर्मराज्य) हो गया ( सत्य, तप, दया और दान विकसित हो उठे ) ॥३॥ हे कृपालो ! आपने लीलापूर्वक ही अहल्या, निपाद, जटायु, घन्द्र, भील, भालु और राक्षसोंको तरण-तारण कर दिया, ( उन्हें तां तार ही दिया, परन्तु दूसरोंको तारनेकी शक्ति भी उनको दे दी । जिस किर्माने उनका संग या अनुकरण किया, वह भी तर गया । ) हे गजराजके उद्धारक ! हे शीलकं भगवन् ! इस तुलसीपर जो आपकी ओरसे कुछ ढील-मी दिखायी देती है, इसमें वह मारे श्लानिके गला चाहता है । अतएव कृपाकर इसका भी शोष ही उद्धार कीजिये ॥४॥

[ २४९ ]

मली भौति पहिचाने-जाने साहिब जहाँ लीं जग,  
 जूड़े होत धारे, धारे ही गरम ।  
 प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीतिके मलीन,  
 मायाधीन सब किये कालह करम ॥१॥  
 दानव-दनुज बड़े महामूढ़ मूढ़ चढ़े,  
 जीते लोकनाथ नाथ ! बलनि भरम ।  
 शीति-शीति दिये घर, खीति-खीति घाने घर,  
 आपने निदानेकी न काहको सरम ॥२॥



## चिनय-पत्रिका

सेवा-सावधान तू सुजान समर्थ साँचो,  
सदगुन-धाम राम ! पावन परम  
सुरुख, सुमुख, एकरस, एकरूप, तोहि  
चिदित बिसेपि घटघटके मरम  
तोसो नतपाल न कृपाल, न कैंगाल मो-सो  
दयामे बसत देव सकल धरम  
राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माँह,  
तुलसी बिकल, बलि, कलि-कुषरम

भावार्थ—जगत्में जहाँतक मालिक हैं, उनको मैंने म  
समझ और पहचान लिया है। ये थोड़ेमें ही प्रगल्भ हो  
और थोड़ेमें ही गरम हो उठते हैं। म तो ये प्रेमके निधानमें ही  
और न नीति ही जानते हैं। उनकी चालें सप बुरी हैं, क्योंकि का  
और मायाने उन्हें अपने अधीन कर रक्खा है ॥१॥ हे माय !  
पलकें धमगे चढ़े-पड़े वैश्य दानय भादि महामूलं बनकर (गवके)  
चढ़ गये थे और उन्होंने लोकपाप्योंको भी जीत लिया था। इनमें  
इनके मालिकोंने (देयताओंने) पहलें तो (इनके मय) गर पीठ  
कर (मनमाने) घर दिये, गर पीछेगे जागत ही होकर इनके।  
स्वाहा करा दिया ! (भापकी प्रार्थना करके) भाते के  
विगाड़ने रामय किन्हीको भी शर्म न भायी ॥२॥ हे रामजी ! मा  
... भी भाव ही मल्लीमौति पहचानने हैं, क्योंकि भाव ही  
... ध्यान और परमपवित्र हैं। भाव नवराज का



रीति सुनि रावरी प्रतीति-प्रीति रावरे सों,  
 डरत हों देखि कलिकालको कहरु।  
 कहेही वनैगी कै कहाये, बलि जाउँ, राम,  
 'तुलसी ! तू मेरो, हारि हिये न हररु' ॥१॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि मुझे कहीं कोई दूसरा स्वामी या ( भाग्य के लिये ) स्थान मिल जाता, तो मैं बार-बार आपको पुकारता अप्रसन्न न करता । हे महाराज रामचन्द्रजी ! मुझ-सरीखे भालसियों और अभागोंको तो आपने ही पाला-पोसा है । अतएव हे कृपालो ! आप ही मेरे राजा हैं और अयोध्या ही मेरे ( रहनेके ) लिये शहर है ॥१॥ न तो मैंने दिक्पाल, सूर्य, गणेश और पार्यतीहीकी प्रेमपूर्वक सेवा की है और न ( श्रद्धासहित ) ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी ही उपासना की है । मेरा तो योग-क्षेम एक राम-नामसे ही है । ( राम-नामसे ही मुझे तो भगवत्प्राप्ति और प्राप्त साधनकी रक्षा हुई है ) उन्हींसे मेरा भय है, उन्हींसे प्रेम है और उन्हींमें अनन्यता है । उसका भरोसा मेरे लिये भगवत्के समान है और दूसरे सब साधन विषयके समान हैं ॥२॥ हे भगवत्के नाथ ! मेरे मारपी घोर और घौकीदार सब भावहीके हाथमें हैं, इसमें उनकी शक्ति और किमते कई । ( भाग्य काम, क्रोध, लोभ, मोह भादि घोरोंकी प्रतिकर विषयक-वैराग्यरूपी घौकीदारोंको मर्त्य कर ब्रह्म ही मेरा राम नाम प्रेमरूपी घन बंध जायगा । ) हे महाराज ! जरा विचारिये, आपने अपने कामोंमें, देवताओंके कामोंमें और दीन-दुनियाँके कामोंमें क्या कमी देखी है ? फिर मेरे ही लिये क्यों इतना क्लेश ही रहा है ? ॥३॥ भागी



औरनिकी कहा चली ? एक बात भली भली,

राम-नाम लिये तुलसी हूँ से वरत ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे रामजी ! आपके स्वभाव, गुण, शीलकी महिमा जो प्रभावको श्रीशिष्यजी, हनुमान्जी, लक्ष्मणजी और भरतजीने ही (तत्त्वमें जाना है, ( इसीसे ) उनके हृदयरूपी सुन्दर-धामलेमें आपके प्रेमक रूपवृक्ष सुशोभित हो रहा है, जिसमें परमसुखरूपी सरस फूल-फल फूलते और फलते हैं । ( जो भगवान्के गुण-शीलकी महिमा जान लेता है, उसका हृदय भगवत्-प्रेमसे ही भर जाता है; और जिस हृदयमें भगवत्प्रेम भरा है, उसीमें परमानन्द निवास करता है ) ॥१॥ आप भगवत् स्वभावके वश होकर शिष्यजीको स्वामी, हनुमान्जीको मित्र और लक्ष्मण तथा भरतको अपना भाई मानते हैं और ये सब आपको अपना मालिक मानते हैं, प्रेममें सदा सावधान रहते हैं और डरा करते हैं ( कि कहीं प्रेमकी अनन्यता और विशुद्धतामें कमी न आ जाय । ) यदि स्वामी और सेवक दोनों इस रीतिसे प्रेम करते रहें, और ( प्रेमके ) शक्ति-नियमोंको सदा निगाहते रहें तो उनके (प्रेमकी) टेक कमी टल नहीं सकती और वह सीमाको पहुँच जाती है ॥२॥ शुकदेव, सनकादि, प्रह्लाद और नारद आदि भक्तगण कहते हैं कि परमविरक्त होनेसे ही धीरघुनाय जीकी महान् ( अनन्य विशुद्ध ) भक्ति मिलती है ( भोगोंसे परम वैराग्य उसीको प्राप्त होता है जो भगवान्को तत्त्वसे जान लेता है, भगवत् परमात्माके ) ज्ञान बिना भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। किन्तु यह ज्ञान, है नाथ ! आपके हाथमें है ( ज्ञान किसी साधनसे नहीं होता, यह तो



खाँग स्रधो साधुको, कुचालि कलिते अधिक,  
 परलोक फीकी मति, लोक-रंग-रई ।  
 बड़े कुसमाज राज ! आजुलौं जो पाये दिन,  
 महाराज ! केहू भौंति नाम-ओट लई ॥ ४ ॥  
 राम ! नामको प्रताप जानियत नीके आप,  
 मोको गति दूसरी न विधि निरमई ।  
 खीझिये लायक करतव फोटि फोटि कहु,  
 रीझिये लायक तुलसीकी निलजई ॥ ५ ॥

भायार्थ—हे मेरे बापजी ! मैंने अपने ही हाथों अपनी करनी बनुन  
 विगाड़ डाली है, आपकी बलैया लेता हूँ, इस लोभी और झुठे की बा  
 एक धार तो मुधार खीजिये । क्योंकि जिन-जिनके साथ आने भला  
 की, उमीकी धान धन गयी ( दया करके आज मेरी भी विगाड़ी बना  
 खीजिये ) ॥ १ ॥ शरीर रोगी है, मन घुरी-घुरी कामनाओंमें मलिन हो  
 गदा है और याणी दूमरोंकी निम्न करने और झुठ बोलने-बोलने मद्य हो  
 गयी है । ( जिन मन-मन-वचनमें साधन होने हैं, वे तीनों ही साधनमें  
 योग्य नहीं रहें, परन्तु ) साधनोंका यह नियम है कि पिता साथे वे निर  
 नहीं होने । इसमें ( भय तो ) हे कृपानिधि ! आपकी एक कृपा ही लेगी  
 भन्टी है, जो मेरी विगाड़ी धानको बना देगी । ( आपकी कृपाओंकी मुह  
 साधनहीनता मुधार हो सकता है ) ॥ २ ॥ भाव पात्रियोंको परिच करने  
 पाते, दुमियों और भनाओंके द्विगु, निराधारोंके साधार, शीनोंके दम्पु-  
 \* ( आभासिक ही ) दयालु हैं । किन्तु, मैं तो इनमेंसे एक भी नहीं हूँ ।





लाते पाले, पोपे तोपे आलमी-अमागी-अयी,  
 नाय ! पै अनायनिसों मये न उरिन ।  
 म्यामी समरय ऐमो, हां तिहारो जैसो-तसो  
 काल-चाल हेरि होति हिये घनी धिन ॥२॥  
 खीसि-रीसि, विहँसि-अनख, क्यों हूँ एक बार  
 'तुलसी तू मेरो', बलि, कहियत किन ?  
 जाहिँ घल निरमूल, होहिँ सुख अनुकूल,  
 महाराज राम ! रावरी साँ, तेहि छिन ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! मुझे अपनी ही शरणमें रनिये, क्योंकि (मुख-

सरीश्वंको) सदासे आप ही अपनाते आये हैं। यह सभी जानते हैं कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें आपके समान दयालु दूसरा कोई नहीं है। हे नाय ! आर्त शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला आपके सिवा दूसरा कौन है ? ॥१॥ आपने ही आलमी, अमागे और पापी लोगोंका लालन-पालन किया, उन्हें पाला-पोसा और प्रसन्न रक्खा; तिसपर भी हे नाय ! आप उनसे कमी उक्लण नहीं हुए। हे स्वामी ! आप तो समर्थ हैं, पर मैं (भला-बुरा) जैसा कुछ हूँ, आपहीका हूँ। कलिकालकी बाल देवकर मेरे हृदयमें बड़ी धिन हो रही है (यह शंका है कि कहीं यह दुष्ट आपके धरणोंकी ओरसे मेरे मनको फेर न दे।) ॥२॥ बलिहारी ! एक बार नाराजीसे अथवा राजीसे, मुसकराकर या अनखाकर किसी भी तरह इतना क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसी ! तू मेरा है' ? इतना कह देनेमात्रसे ही, हे महाराज रामचन्द्रजी ! मैं आपकी शपथ गाकर कहता हूँ, उसी क्षण मेरा सारा दुःख जड़से नाश हो जायगा और समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायेंगे ॥३॥

[ २५४ ]

राम ! रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।  
 सुजन-सनेही, गुरु-साहिब, सखा-सुहृद,  
 राम-नाम प्रेम-पन अधिचल चितु है ॥१॥  
 मत्कोटि चरित अपार दधिनिधि मथि  
 लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है ।  
 नामको भरोसो-बल चारिहु फलको फल,  
 सुमिरिये छाड़ि छल, मलो कृतु है ॥२॥  
 स्वारथ-साधक, परमारथ-दायक नाम,  
 राम-नाम सारिखो न और हितु है ।  
 तुलसी सुभाव कही, साँचिये परंगी सही,  
 सीतानाथ-नाम नित चितहु को चितु है ॥३॥

भाकार्य—हे थोरामजी ! आपका नाम ही मेरा माता-पिता, म्बजन-  
 मन्थन्धी, प्रेमी, गुरु, स्वामी, मित्र और अद्वैतुक हितकारी है । और  
 आपके नामसे जो मेरा अनन्य प्रेम है, वही मेरा अटल धन है ॥१॥  
 शिवजीने सौ करोड़ चरित्ररूपी अगाध दधि-सागरको मथकर उससे  
 राम-नामरूपी धी निकाला है । आपके नामका बल-भरोसा अर्थ, धर्म,  
 काम और मोक्ष चारों फलोंका (चरम) फल है । कपटमाय छोड़कर  
 एसीका स्मरण करना चाहिये । यही सपौनम यज्ञ है ॥२॥ आपका नाम

● गीतामें तो श्रीभगवानने अप-यज्ञको अपना स्वरूप ही बतलाया है—यज्ञानां  
 अपयज्ञोऽग्रिम ।

लाले पाले, पोणे तोणे आलमी-अमागी-अयी,  
 नाथ ! पे अनायनिगों भये न उरिन ।  
 म्यामी गमग्य गेमो, हा निहागं जैमो-तैमो  
 काल-चाल हेरि होति डिये घनी विन ॥१॥  
 स्वीसि-रीसि, चिडैमि-अनस, क्यों हूँ एक बार  
 'तुलसी तू मेरो', बलि, कहियत किन ?  
 जाहि घल निग्मूल, होहिं सुख अनुकूल,  
 महाराज गम ! गवरी मीं, तेहि छिन ॥२॥  
 मावार्थ-हे धीरामजी 'मुझे अपनी ही शरणमें रखिये, क्योंकि (तुम्हारे

मरीचोंको) मदासे आर ही अपनाते आये हैं। यह सभी जानते हैं कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें आपके समान दयालु दूसरा कौन नहीं है। हे नाथ ! आते शरणामनोंकी रक्षा करनेवाला आपके सिवा दूसरा कौन है ? ॥१॥ आपने ही आलमी, अमागे और पापी लोगोंका लालन पालन किया, उन्हें पाला-पोसा और प्रसन्न रक्खा; तिसपर मैं ही नाथ ! आप उनसे कभी उक्लण नहीं हुए। हे स्वामी ! आप तो समर्थ हैं, पर मैं (भला-बुरा) जैसा कुल हूँ, आपहीका हूँ। कलिकालकी चाल देखकर मेरे हृदयमें यही चिंत हो रही है (यह शंका है कि कहीं यह दुष्ट आपके चरणोंकी ओरसे मेरे मनको फेर न दे।) ॥२॥ बलिहारी ! एक बार नागजीसे अथवा राजासे, मुसकराकर या अनखाकर किसी भी तरह इतना क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसी ! तू मेरा है' ? इतना कह देनेमात्रसे ही, हे महाराज रामचन्द्रजी ! मैं आपकी शपथ माकर कहता हूँ, उसी क्षण मेरा सारा दुःख जड़से नाश हो जायगा और समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायँगे ॥३॥

[ २५४ ]

राम ! रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।  
 मुजन-सनेही, गुरु-माहिव, सखा-मुहद,  
 राम-नाम प्रेम-पन अविचल वितु है ॥१॥  
 सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि  
 लियो काड़ि वामदेव नाम-घृतु है ।  
 नामको भरोसो-बल चारिहू फलको फल,  
 सुमिरिये छाड़ि छल, मलो कृतु है ॥२॥  
 स्वारथ-साधक, परमारथ-दायक नाम,  
 राम-नाम मारिखो न और हितु है ।  
 तुलमी सुभाव कही, सोंचिये परंगी सही,  
 सीतानाथ-नाम नित चितहू को चितु है ॥३॥

भाषार्थ—हे श्रीरामजी ! आपका नाम ही मेरा माता-पिता, स्वजन-  
 मन्धी, प्रेमी, गुरु, स्वामी, मित्र और अहेतुक हितकारी है । और  
 आपके नामसे जो मेरा अनन्य प्रेम है, वही मेरा अटल घन है ॥१॥  
 अर्थात् जो सौ करोड़ चरित्ररूपी अगाध दधि-सागरको मथकर उमसे  
 राम-नामरूपी घी निकाला है । आपके नामका बल-मरोसा अर्थ, धर्म,  
 नाम और मोक्ष चारों फलोंका (चरम) फल है । कपटभाव छोड़कर  
 हमीका स्मरण करना चाहिये । यही सर्वोत्तम धर्म है ॥२॥ आपका नाम

• गीतामें तो श्रीभगवान्ने जप-यज्ञको अपना स्वरूप ही बतलाया है—यज्ञाना  
 जपज्ञोऽसि ।

रामी गार्भारिक श्याग्रोंका साधनेवाला एवं परमार्थ (मोक्ष) का प्रदान करनेवाला है। धीराम-नामके समान हित करनेवाला और कोई मोक्षदा है। यह बात मुन्दरीने श्यामायमे ही कही है, अतएव सचमुच ही इसर सही पढ़ेगा। जानकीरमण धीरामका नाम चित्तका भी चित् है ॥१॥

[ २१५ ]

राम ! रावरो नाम साधु-सुरतरु है ।  
 सुमिरे त्रिविध घाम \* हरत, पूरत काम,  
 सकल सुकृत सरसिजको सरु है ॥१॥  
 लाभहको लाभ, सुखहको सुख, सर्वस,  
 पतिव-पावन, डरहको डरु है ।  
 नीचेहको ऊँचेहको, रंकहको रावहको  
 सुलम, सुखद आपनो-सो घरु है ॥२॥  
 वेद ह, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कखो,  
 नाम-प्रेम चारिफलहको फरु है ।  
 ऐसे राम-नाम सों न प्रीति, न प्रतीति मन,  
 मेरे जान, जानिवो सोई नर खरु है ॥३॥  
 नाम-सो न मातु-पितु, मीत-हित, बंधु-गुरु,  
 साहिब, सुधी, सुसील, सुधाकरु है ।  
 नामसों निबाह नैहु, दीनको दयालु ! देहु,  
 दासतुलसीको, बलि, बड़ो बरु है ॥४॥

\* घाम=धर्म=ताप । अनेक प्रतियोंमें 'घाम' पाठ है । परन्तु घामका अर्थ 'जपोति' तक है । परन्तु 'ताप' कदापि नहीं । पाठान्तरकी तरह भी 'घाम' स्वीकार्य नहीं है ।



## विनाश विचार

कान्ही, कर्मन्ही कुमाँवति महत ॥  
कर्म विचार भार पवन न कहै कछु,  
गहन बड़ाई मर कहां ते लहत ?  
नाथन्ही मदिमा मुनि, रामुनि आपनी ओर,  
हरि हारि के हहरि हृदय दहत ॥२॥  
गना न, सुमेरकन, सुनिप न, प्रभु आर,  
माय-बाप तुही साँची तुलमी कहत ।  
मेरी ताँ थोरी ई, सुधरंगी विगारियी, बलि,  
राम ! रावरी साँ, रही रावरी चहत ॥३॥

मायार्थ—दे धीरामजी ! कहे विना तों रहा नहों जाता और देनेपर कुछ रस (मत्त) नहों रह जाता । (यात यह है कि) आप-सा थोड़ा भ्यामीका भाथय पाकर भी मैं आपका बुरा या मला सेवक क और कर्मके कारण असह्य दुःख भोग रहा हूँ ॥१॥ (व्याघ्र निपाद भाँ यदुपवनपर) विचार करता हूँ, पर कहीं कुछ भी रहस्य नहों मिल कि इन सब लोगोंने कहाँसे यदुपवन प्राप्त किया ? (सुना जाता है, आपने इनको दीन जानकर अपना लिया, जिसमें ये सब महान् पूज्य हो गे आपकी (पेंसी) महिमा मुन-समझकर जब अपनी दशाकी ओर देखत हूँ तो निराश हो जाता हूँ और घबराहटसे हृदय जलने लगता । (दीन और पतितोंको तारनेवाले होकर भी मुझ शरणागत दीनको अब तक क्यों नहों अपनाया ? यही सोचकर हृदयमें जलन होने लगती है और इसीसे मनमानी धातें कह बैठता हूँ) ॥२॥ (और कहीं भी किससे,

पॉकि) न तो मेरा कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है, न सुलक्षणा स्त्री है  
 |र न कोई नाथ है। मेरे तो माँ-बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच्चा वात  
 इ रहा है। मेरी तो थोड़ी-सी घात है, विगाही होनेपर भी सुधर जायगी;  
 न्नु, थलिहारी ! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ, मैं तो आपकी  
 त ही रखना चाहता हूँ ( कहीं आपका पतितपावन और शरणागत-  
 खल घाना न लज जाय ) ॥३॥

[ २५७ ]

दीनबन्धु ! दूरि किये दीनको न दूसरी सरन ।

आपको भले हैं सब, आपनेको कोऊ कहूँ,

सबको भलो है राम ! रावरो चरन ॥१॥

पाहन, पसु, पतंग, कोल, भील, निसिचर

काँच ते कृपानिधान किये सुवरन ।

दंडक-पुहुमि पाय परसि पुनीत भई,

उकठे विटप लागे फूलन-फरन ॥२॥

पतित-पावन नाम धाम हू दाहिनो, देव !

दुनी न दुसह-दुख-दूपन-दरन ।

सीलसिंधु ! तोसों ऊँची-नीचियौ कहत सोभा,

तोसो तुही तुलसीको आरति-हरन ॥३॥

भावार्थ—हे दीनबन्धो ! यदि आपने इस दीनको (अपनी शरणसे)  
 हटा दिया, तो फिर इसे और कहीं शरण न मिलेगी। क्योंकि अपनी





क्योंकि) न तो मेरा कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है, न सुलक्षणा स्त्री है और न कोई नाथ है। मेरे तो माँ-बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच्ची बात कह रहा है। मेरी तो थोड़ी-सी धान है, बिगड़ी होनेपर भी सुधर जायगी; किन्तु, बलिहारी ! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ, मैं तो आपकी धान ही रखना चाहता हूँ ( कहीं आपका पतितपावन और शरणागत-शर्मल दाना न लज जाय ) ॥३॥

[ २५७ ]

दीनबन्धु ! दूरि किये दीनको न दूसरी मरन ।

आपको भले हैं सब, आपनेको फोऊ कहूँ,

सबको भलो है राम ! राखरो चरन ॥१॥

पाहन, पमु, पतंग, कोल, भील, निसिचर

काँच ते कृपानिधान किये सुचरन ।

दंडक-पुहुमि पाय परसि पुनीत भई,

उकठे विटप लागे फूलन-फरन ॥२॥

पतित-पावन नाम घाम हू दाहिनो, देव !

दुनी न दुसह-दुख-दूपन-दरन ।

सीलसिंधु ! तोसों ऊँची-नीचियौ कहत सोभा,

तोसो तुही तुलसीको आरति-हरन ॥३॥

भावार्थ—हे दीनबन्धो ! यदि आपने इस दीनको (अपनी शरणसे) हटा दिया, तो फिर इसे और कहीं शरण न मिलेगी। क्योंकि अपनी

मलाई चाहनेवाले तो प्रायः मर्मी हैं, किन्तु अग्ने दामोदा ब्रह्म करनेवाला काँई विरला ही है। हे श्रीरामजी! सबका मला करनेवाले में आपके चरण ही हैं, (आपके चरणोंके आश्रयसे मने-बुरे सर्वात् कल्याण होता है) ॥१॥ पत्थरकी शिला (अहस्या), पशु (बन्दर, गंड) पशु (जटायु), कोल-मील, राक्षस (विभीषण) आदिको हे कृपानिधान आपने काँचसे सोना बना दिया (विपर्याये जिनको मुक्त कर दिया)। दण्ड धनकी भूमि आपके चरणोंका स्पर्श होते ही पवित्र हो गयी और उन्हें दुःस्वप्ने पेंड़ फिर फूलने-फलने लगे ॥२॥ आपका पतित-पावन नाम, जो मारने विमुक्त हैं उनका भी कल्याण करता है (शत्रुभावसे मजनेवाले भी तर जाते हैं) हे देव! संसारमें असह्य दुःखों और पापोंका नाश करनेवाला आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। आप शीलके समुद्र हैं, अतएव आपसे नीची-ऊँची बात कहनेमें भी शोभा ही है (अधिक क्या कहें)। तुलसीके दुःख दूर करनेवाले तो वस आन-सरीखे एक आप ही हैं (इसीसे शरण पड़ा हूँ) ॥३॥

[ - २५८ ]

जानि पहिचानि में बिसारे हौं कृपानिधान !

एतां मान डीठ हौं उलटि देत खोरि हौं ।

करत जतन जासौं जोरिबे को जोगीजन,

तासौं क्योंह जुरी, सो अमागो बैठो तोरि हौं ॥१॥

मोसे दोस-कोसको भुवन-कोस दूसरो न,

आपनी समुझि खूझि आयो टकटोरि हौं ।



## विनय-पत्रिका

दूसरा कोई भी नहीं है। इसलिये मुझ झूठे, लालची और उगरी द  
हटा दीजिये, नहीं तो मैं अमृत-सरीखा जल शूकरीकी तरह ग  
डालूँगा ( आपका भक्त कहाकर बुरे कर्म करूँगा तो आपके निर्मा  
कलङ्क लग जायगा) ॥३॥ (अतएव) या तो मुझे अच्छी तरह सु  
(अपनी शरणमें) रख लीजिये, नहीं तो मुझ नीचकी मार ही डालिये  
आप ही इन दोनों बातोंपर विचार कर लीजिये, अब मैं आपका  
न करूँगा। तुलसाने बार-बार लकीर खींचकर सच्ची यात बह दी  
आप भी धेरी करेंगे, तो मैं आपके नामकी महिमारूपी नौकाको डूब  
( मेरी दुर्दशा देखकर लोग आपके नामका विश्वास छोड़ देंगे )

[ २५९ ]

रावरी सुधारी जो बिगारी विगरीगी मेरी,  
कहाँ, बलि, वेदकी न, लोक कहा कहंगो ?  
प्रभुको उदास-भाउ, जनको पाप-प्रभाउ,  
हुँ भौंति दीनबन्धु ! दीन दुख दहंगो ॥१॥  
मैं तो दियो छाती पवि, लयो कलिकाल दधि,  
साँसति सहत, परबस को न सहंगो ?  
पाँकी बिरुदावली बर्नगी पाले ही कृपालु !  
अंत मेरो हाल हेरि यों न मन रहंगो ॥२॥  
करमी-धरमी साधु-सेवक, बिरत-रत,  
आपनी मलाई थल कहाँ कौन लहंगो ?  
तेरे मुँह फेरे मोगे कापर-कपूत-गूर,  
लटे लटपटेनि काँ कौन परिगहंगो ? ॥३॥

काल पाप फिरत दसा दयालु ! सचहीकी,  
तोहि बिनु मोहि कयहूँ न कोऊ चहँगो ।  
बचन-करम-हिये कहौं राम ! सौँह किये,  
तुलसी पै नाथके निवाहेई निबहँगो ॥४॥

भावार्थ—यदि आपकी सुधारी हुई मेरी बात मेरे बिगाड़नेसे बिगड़  
लगा तो, मैं तुम्हारी बलैया लेता हूँ, फिर वेदकी तो जाने दीजिये,  
नार क्या कहेगा ? ( वेदमें कुछ भी लिखा हो, संसार तो यही कहेगा  
तुलसी ही ईश्वर है, क्योंकि उसने रामजीकी बनार्या बातकी बिगाड़  
या।) प्रभुकी उदासीनता और मुझ दासके पापोंका प्रभाव, यदि ये दोनों  
लगे तो हे दीनबन्धी ! यह दीन दुःखके मारे जल मरेगा । ( मैं तो  
दासी ही हूँ ही, पर आप भी उदासीन हो जायँगे तो फिर मेरी बड़ी ही  
गे गति होगी) ॥१॥ मैंने तो अपनी छार्तापर घञ रख लिया है ( दुःख  
सहनके लिये तैयार हूँ, परन्तु पाप नहीं छोड़ता) क्योंकि कलियुगने मुझे  
दवा रक्खा है । इसीसे कष्ट सह रहा हूँ । ( मैं ही क्यों ) जो भी परतन्त्र  
होगा, उसे कष्ट सहने ही पड़ेगे । किन्तु हे कृपालु ! आपको तो अपनी  
बाँकी विरदावलीके वश होकर मेरी रक्षा करना ही पड़ेगी । (अभी न सही,)  
अन्य समय तो मेरा (पुरा) हाल देखकर आरका यह उदासीन साथ रह  
नहीं सकता (दयालु स्वभावसे मेरा दुःख देखा ही नहीं जायगा, तब  
ही ईश्वर बखाना होगा) ॥२॥ कर्मकाण्डी, धर्मात्मा, माधु, सुखक, विरक्त  
और विषयी जोय ये सब तो अपने-अग्ने भले कर्मोंके अनुसार कहीं कौर सा  
भयान पा ही जायँगे, परन्तु आपके मुँह केर लेनेसे (उदासीन हो जानेसे)  
मुझभरीसे कायर, कुपून, क्रूर, साधनहीन और पतित जीयोंकी कौन

## विनय-पत्रिका

भाष्य मेगा ? (कोई भी नहीं) ॥३॥ हे देवालो ! काल गकर ममीही पलटगी है, सभीके दिन कितने हैं, परन्तु भाषकों छोड़कर मुझे तो कोई नहीं चाहेगा (भाषके भाष्यको छोड़कर मुझे कहीं कोई स्थान मिलनेका) । हे धीरामत्री ! भाषही भाष्य गकर यवन, कर्म और कहता है कि यह तुलसी में नाथके ही निवाहे निभेगा ॥३॥

[ २६० ]

साहिब उदास भये दास खास खीस होत  
मेरी कहा चली ? हँ बजाय जाय रखो हँ ।  
लोकमें न ठाउँ, परलोकको भरोसो कौन ?  
हँ तो, बलि जाउँ, रामनाम ही ते लखो हँ ॥१॥  
करम, सुभाउ, काल, काम, कोह, लोभ, मोह  
ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गहो हँ ।  
छोरिवेको महाराज, बाँधिवेको कोटि भट,  
पाहि प्रभु ! पाहि, तिहुँ ताप-पाप दहो हँ ॥२॥  
रीक्षि-बूक्षि सबकी प्रतीति-प्रीति एही द्वार,  
दूधको जरथो पियत फूँकि फूँकि मद्यो हँ ।  
रटत-रटत लख्यो, जाति-पाँति-भाँति घट्यो,  
जूठनिको लालची चहौं न दूध-नद्यो हँ ॥३॥  
अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चलयो  
नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हँ ।  
तुलसी समुक्षि समुझायो मन बार-बार,  
अपनो सो नाथ हूँ सौँ कहि निरचह्यो हँ ॥४॥

मायार्थ—जब मालिक उदासीन हो जाता है तब खास नौकर भी  
 तबाह हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? मैं तो डंकेकी चोट  
 में बहा चला जा रहा हूँ। जब मेरे लिये इस लोकमें ही कहीं ठौर  
 नहीं है, तब परलोकका क्या भरोसा करूँ? हे श्रीगमजी! मैं आपकी  
 लीया लेता हूँ, मैं तो एक आपके नामहीके हाथ विक चुका हूँ (मेरा  
 पैर-परलोक तो उसीसे चनेगा) ॥१॥ कर्म, स्वभाव, काल, काम, क्रोध,  
 शर्म और मोहरूपी बड़े-बड़े प्राणियों और (साधनहीनतारूपी) धीर  
 सिद्धाने मुझको बड़े जोरसे पकड़ रक्खा है। हे महाराज! बाँधनेके  
 लिये करोड़ों पाँडा हैं, परन्तु बन्धनसे छुड़ानेके लिये तो केवल एक  
 आप ही हैं। अनपच हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मैं पापरूपी  
 जलों तापोंसे जल रहा हूँ (अपनी दुःखदृष्टिकी सुधा-बुष्टिसे इन तापोंको  
 जल कीजिये) ॥२॥ हे प्रभो! (दूरसे किसके पास जाऊँ?) सबकी रोग-  
 ज और प्राणि-विश्वाम एक आपके ही द्वारपर है। (आपके ही दिये हुए  
 अधिकारसे देवतागण आपके ही खजानेमें अपने संघकोंको कुछ दिया  
 करते हैं, परन्तु वे मुक्ति नहीं दे सकते। उन सबकी पूजा भी आपकी  
 ही पूजा होती है, क्योंकि सबके मूल आप ही हैं। मैं तो दूधका जला मट्टा  
 भी हूँ क-हूँ ककर पीता हूँ। भाव यह कि आपकी छाँड़कर दूधगँकों  
 मजनेसे कभी परमसुख और दिव्य-शान्ति नहीं मिली, इसलिये बहुत  
 मायवान होकर चलता हूँ। सुखके लिये देवताओंको पुकारते-पुकारते द्वार  
 गया, और जानि-पानि तथा घाल-चलन समीसे हाथ धो बैठ। इसलिये  
 अब मैं केवल आपके जूटनका ही लालची हूँ। मैं दूधसे नहीं नदाना  
 चाहता। भाव, मुझे स्वर्गके पार्वर्यकी इच्छा नहीं है, मैं तो केवल आपके



## विन्ध्य-पत्रिका

सम्पूर्ण में पढ़ें रहना चाहता है ॥३३॥ में और करी (दुसरे  
में कर) सुखमार्गीय भारती बाल मनकर भवता कन्याय न  
है । और यही ( भाषके शास्त्रमें ) में भारद्वाज पाकर भी मर  
(भाषके भक्तोंमें विद्वत्के भक्तोंमें निमित्त और निश्चित पड़ा है)  
समस्तकर भवने मनको पाठ-पाठ समझा दिया है और वह अ  
भी कहकर निश्चित हो गया है कि उसका निर्वाह :  
दागमें है ॥३४॥

[ २६१ ]

मेरी न बन बनाये मेरे कोटि कल्प लीं  
राम ! रावरे बनाये बन पल पाउ में ।  
निपट सयाने ही कृपानिधान ! कहा कहीं ?  
लिये घेर बदलि अमोल मनि आउ मैं ॥  
मानस मलीन, करतव कलिमल पीन  
जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ-चाउ मैं ।  
कुपथ कुचाल चल्थो, मयो न भूलिहू मलो,  
बाल-दसा हू न खेल्थो खेलत सुदाउ मैं ॥२॥  
देखा-देखी दंभ ते कि संग ते मई मलाई,  
प्रकटि जनाई, कियो दुरित-दुराउ मैं ।  
राग रोप <sup>दोष</sup> पोपे, गोगन समेत मन, <sup>दोष</sup>  
इनकी भगति कीन्ही इनही को भाउ मैं ॥३॥  
आगिली-पाछिली, अबहूँ की अनुमान ही तें  
वृक्षियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं ।

जग कई रामकी प्रतीति-प्रीति तुलसी ह,

शुटे-साँचे आसरो साहब रघुराउ में ॥४॥

भावार्थ—दे श्रीरामजी! मेरी सद्गति मेरे पनाये (साधनोंके द्वारा) हो सकती है। परन्तु आप करना चाहें तो पाप पलमें ही हो सकती है। हे रूपानिधान! मैं क्या कहूँ, आप तो स्वयं परम चतुर हैं, मैंने धनमोल मणिके समान आयुके बदलेमें (विषयरूप) घेर ले लिये। (जिम मनुष्य-जीवनको आपकी प्राप्तिमें लगाना चाहिये था उसे विषयोंमें लगाकर व्यर्थ खो दिया) ॥१॥ (जिससे मेरा) मन मलिन हो गया तथा कलियुगके कारण (कु) कर्म और भी पुष्ट हो गये, नित्य नये पाप बढ़ते गये। जीमसे भी आपका नाम नहीं जपा, सदा आर्य-वार्य ही बकता रहा। बुरे-बुरे मागीपर कुचालें ही चलता रहा। भूलकर भी मुझसे कभी किसीका भला नहीं हुआ। अरे! बचपनमें खेलते समय भी कभी अच्छा दण्ड हाथ नहीं लगा (भगवत्-सम्यन्धी खेल नहीं खेला) ॥२॥ हाँ, किसीकी देखा-देखी (भक्तिका स्वाँग दिखलानेके लिये) दम्भसे या सत्सङ्गके प्रभावसे कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उसे दिंडोरा पीटना हुआ कहता फिरा, और (मनसे चाह-चाहकर) जो पाप किये उन्हें छिपाता रहा। राग, द्वेष और क्रोधकी तथा इन्द्रियोंसमेत मनको सदा पालना-पोषता रहा। सदा राग, द्वेष और क्रोधके तथा मन-इन्द्रियोंके ही वशमें रहा। इन्हींकी भक्ति की और इन्हींसे प्रेम किया ॥३॥ मैंने अपनी बीती हुई, वर्तमान तथा भविष्यकी दशाका अनुमान करके यह समझ लिया है कि मैंने कभी कोई भला काम नहीं किया। किन्तु संसार कह रहा है कि—'तुलसी रामजीका है' और मुझे भी आपपर विश्वास और

प्रम है। भय खादे झूठ हो या भय, हे स्वामी धीरपुतापत्नी !  
भापके ही भागरे पड़ा है ॥३॥

[ २१२ ]

कसो न परत, बितु कहे न रसो परत,  
बड़ो मुस कइत बड़े सों, बलि, दीनता ।  
प्रभुकी बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,  
प्रभुकी पुनीतता, आपनी पाप-पीनता ॥१॥  
दुह ओर समुझि सकुचि सहमत मन,  
सनमुख होत सुनि स्वामी-समीचीनता ।  
नाथ-गुनगाय गाये, हाथ जोरि माथ नाये,  
नीचऊ निवाजे प्रीति-रीतिकी प्रबीनता ॥२॥  
एही दरवार है गरब तें सरब-हानि,  
लाम जोग-छेमको गरीबी-मिसकीनता ।  
मोटो दसकंध सो न दूबरो बिभीषन सो,  
बूझि परी रावरेकी प्रेम-पराधीनता ॥३॥  
यहाँको सयानप अयानप सहस सम,  
सूधौ सतमाय कहे मिटति मलीनता ।  
गीध-सिला-सथरीकी सुधि सब दिन किये  
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता ॥४॥  
सकल कामना देत नाम तेरो कामठरु,  
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता ।

करनानिधान ! परदान तुलसी पहत,  
सीतापति-भक्ति-गुरसरि-नीर-मीनता ॥५॥

भावार्थ—हे नाथ ! कुछ कदा भी नहीं जाता और कहे बिना रहता भी नहीं जाता। आपकी कहेया लेता हूँ (यद्यपि) यहाँके सामने अपनी परीची सुनानेमें बहुत सुख मिलता है। (तथापि कदाँ तो) प्रभुका महान् बड़पन और कदाँ मेरी छोटी-सी क्षुद्रता; कदाँ तो प्रभुकी पवित्रता और कदाँ मेरे पापोंकी अधिकता ॥१॥ इन दोनों ओरकी बातोंपर विचार करके मन संकोचके मारे सहम जाता है (कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं होती, और पीछे पड़ने लगते हैं), परन्तु स्वामीकी सुन्दर माधुना (शरणागत ईसा भी दीन-दीन-मलिन हो, आप उसको आदरके साथ अपना ही लेते हैं) को सुनकर यह मन फिर सम्मुख जाता है। हे नाथ ! आपके गुणोंकी गायामोंको मानेमें और हाथ जोड़कर मस्तक नवानेसे आपने नीचोंको भी निहाल कर दिया है (यह आपके प्रेमकी रीतिकी चतुरता है) ॥२॥ (स दरवारमें गर्वसे सर्वनाश हो जाता है और शरीरी एवं नश्रतासे ही गण-श्रेमकी प्राप्ति होती है। रावण-मरीखा तो कोई प्रतापी नहीं था, और विभीषणके समान कोई दीन-दुर्यन्ध नहीं था। परन्तु इस प्रसंगमें आपकी प्रेमकी पराधीनता ही (स्पष्ट) समझमें आती है। (शरणागत दीन विभीषणको लङ्काका राज्य और अपनी अनन्य भक्तिका दान कर दिया तथा रावणका सर्वनाश कर डाला) ॥३॥ यहाँ, अर्थात् आपके दरवारमें की हुई चतुरता हज़ारों मूर्खताके समान है। यहाँ तो सीधे-सादे सब्से भावसे अपना दोष स्वीकार कर लेनेमें ही सारी मलिनता मिट जाती है। यदि तू

प्रम है। मय पाद झूठ हो या नम्य, हे स्वामी  
 भाग्य ही भाग्य पद है ॥५॥

[ २६० ]

क्यों न परत, विनु कहे न ग  
 बढ़ी मुन कहत बढ़े मो  
 प्रभुकी बढ़ाई बढ़ी, आपनी छां  
 प्रभुकी पूर्णता, आप-  
 दूह आंग ममुशि महुचि म  
 मनमुम्य होत मुनि म  
 नाथ-गुनगाय गाये, हाथ जोरि  
 नीचऊ निवाजे प्रीति  
 एही दरवार है गरुष ते  
 लाभ जोग-छेमको र  
 मोटो दमकध सो न दूषरो र  
 वृशि परी रावरेक  
 यहाँको सयानप अयानप  
 सुधी मतभाय कहे  
 गीध-सिला-सवरीकी मुधि म  
 होइगी न साई सो  
 सकल कामना देत नाम  
 सुमिरत होत .. व

अपना स्वामी मानकर उसके साथ विशुद्ध प्रेम करनेका नियम लिया है और सुन्दर आचरणोंमें उसकी रुचि है ॥१॥ पाप और पुण्यके वश होनेके कारण मुझे समीके साथ रहना पड़ा, इसमें मैं अपनी और परार्थी दोनोंहीकी चालोंको परख चुका हूँ । हे माय ! मुझे अपनी भलाई या बुराईकी न तो कोई चिन्ता है, न डर है । (आपके शरण होनेपर भी यदि भले-बुरेकी चिन्ता लगी रही या भय बना रहा तो वह शरणागति ही कैसी ? स्वामीके शरण होते ही मैं निश्चिन्त और निर्मय हो गया हूँ ।) यह मैं श्रीसीतानाथजीकी शपथ खाकर सच-सच कह रहा हूँ ॥२॥ (बनावटी बात कहूँगा तो वह चलेगा ही नहीं, क्योंकि) आप ज्ञान और वाणीके स्वामी हैं । बाहर और भीतर दोनोंकी बात जाननेवाले हैं । आपके सामने मुँहकी और हृदयकी बात कैसे छिप सकती है ? तुलसी आपका है और आप तुलसीका हित करनेवाले हैं । इसमें मैं यदि (कुछ भी कपट) रखकर कहना हाऊँ तो मैं पीकी मफ्फी हो जाऊँ । माय, जैसे मफ्फी घीमें गिरकर तुरन्त मर जाती है, उसी प्रकार मेरा भी सर्वनाश हो जाय ॥३॥

[ २६४ ]

मेरो कबो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो ।  
 चारिह बिलोचन बिलोकु तू तिलोक मई  
 तेरो तिहु काल कहु को है हितु हरि-सो ॥१॥  
 नये-नये नेह अनुमये देह-गेह बसि,  
 परखे प्रपंची प्रेम, परत उधरि सो ।  
 सुहृद-समाज दगाबाजिहीको सौदा-सत,  
 जब जाको काज तब मिलै पाँप परि सो ॥२॥

## विनय-पत्रिका

विपुत्र सयाने, पहिचाने कंधां नाहीं नीके,

देत एक गुन, लेत कांठि गुन भरि सो ।

करम-धरम श्रम-फल रघुवर विनु,

राखको सो होम है, ऊसर कसो बरिसो ॥३॥

आदि-अंत-बीच भलो, भलो करै सबहीको

जाको जस लोक-वेद रक्षो है बगरि-सो ।

सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान,

कैसे कल परै सट ! बँठो सो बिसरि-सो ॥४॥

जीवको जीवन-प्राण, प्राणको परम हित

प्रीतम, पुनीतकृत नीचन, निदरि सो ।

तुलसी ! तोको कृपालु जो कियो कोसलपालु,

चित्रकूटको चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥

भावार्थ—अरे मत ! एक बार तू मेरी बात सुन ले । फिर तुझे जो अच्छा लगे सो करना । तू अपने चारों नेत्रों ( दो बाहरके और मन-बुद्धिरूप दो भीतरके ) से देखकर घटा कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें भगवान्के समान तेरा हित करनेवाला कहीं कोई है ? ॥१॥ शरीर-रूपी घरमें रहकर तूने (अनेक यानियोंमें) नये-नये (सम्बन्धियोंके) प्रेमका अनुभव किया और उनके कपट-भरे प्रेमको भी परख लिया । अन्तमें सबके प्रेमका भेद खुल गया । (जगत्के इन विषय-जनित सम्बन्धी) मिश्रोंका समाज क्या है ! यह दगाबाज़ीका सौदासूत (लेत-देनका व्यवहार) है । जय जिसका काम (स्वार्थ) होता है तय वह पैरोंपर गिरने लगता है (परन्तु काम निकल

बानेर कोई बात भी नहीं पूछता।) ॥२॥ देवता भी बड़े चतुर हैं, तूने  
 उनको मलीमूर्ति पहचाना है या नहीं? वे पहले करोड़गुणा लेते हैं  
 तब कहीं एकगुणा देते हैं। अब रहे कर्म-धर्म, सो वे भी श्रीरामके  
 (बाघार) बिना केवल परिश्रममात्र हैं। (जो भगवान्को छोड़कर, ईश्वरकी  
 परवा न कर केवल अपने सत्कर्मोंपर विश्वास करते हैं, उनके घे सत्कर्म  
 बहर ही नहीं सकते) उनका करना तो राखमें हथक करने या जसर  
 ज़मीनपर पानी बरसनेके समान (निष्फल) है ॥३॥ जो आदिमें, मध्यमें  
 और अन्तमें भले हैं और सभीका सदा कल्याण करते हैं, तथा जिनका  
 पशु लोक और घेदमें सर्वत्र फैल रहा है येने श्रीसीतानाथ रामचन्द्रजीके  
 समान शीलनिधान स्वामी दूसरा और कोई नहीं है। अरे दुष्ट! तू उसे  
 मूला-सा बैठा है, फिर तुझे कैसे कल पड़ रहा है ॥४॥ अरे! जो जीविका  
 शौचन, प्राणोंका परम हित्, अत्यन्त प्रिय और नीचोंको पवित्र करनेवाला  
 है, तू उसका निरादर कर रहा है। तुलसी! कोशलपति छपालु श्रीराम-  
 जीने तेरे लिये चित्रकूटमें जो लीला रची थी, (घाँड़ोंपर सवार हो सुन्दर  
 राजपूत वीरोंके वेशमें साक्षात् दर्शन दिये थे) उसे चित्तमें स्मरण कर ॥५॥

[ २६५ ]

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौ 'जन हौं सिय-पीको' ।

अदि अभाग जान्यो नहीं, जो न होइ नाथ सौं नातो-नेह न नीको ॥१॥

जल चाहत पावक लहौं, बिप होत अमीको ।

गलि-कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फइमन तरनि तमीको ॥२॥

जानि अंघ अंजन कहै धन-बाधिनी-धीको ।

नि उपचार बिकारको सुविचार करौं जब, तब मुधि बल हरै हीको ॥३॥



## बिनाय-पत्रिका

प्रभु सों कहत सकुचान हीं, परीं जनि फिरि फीकां ।  
निकट बालि, बलि, परजिये, परिहरै रुयाल अब तुलसिदास जड़ जी

मायार्थ—हे प्रभो ! मैं शरीरको पवित्र रक्ता हूँ, मनमें भी ( प्रेमके लिये ) रुचि है और मुँहसे भी कहना है कि मैं धींसीतानाय संयक हूँ। किन्तु समझमें नहीं आता कि किस दुर्भाग्यके कारण न साथ भोग सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध और प्रेम नहीं होता ॥१॥ मैं पानी च हूँ तो आग मिलती है और इसी प्रकार अमृतका जहर वन जा ( शान्तिके बदले अशान्तिकी जलन मिलती है और अमृतरूपी मत् अभिमानरूपी विष पैदा कर देते हैं। ) सन्तोंने कलियुगकी जो कुटिल च कही हैं वे सब ठीक हैं। मुझे सूर्य और रात्रिका कुछ भीज्ञान नहीं ( अर्थात् मैं ज्ञान और अज्ञानको यद्यार्थरूपसे नहीं पहचान सकता ) कलियुग मुझे अन्धा समझकर वनकी सिंहनीके घीका अ लगानेको कहता है, जब मैं यह विकार-भरा उपचार सुनकर उस विचार करता हूँ कि मुझे उसका घी कैसे मिले ? ( अज्ञानरूपी वन वासनारूपी सिंहनी रहती है। विषय उसका घी है। यह तो समीप जाते खा जायगी। विषयोंमें फँसे हुए जीवको ज्ञानरूपी नेत्र कैसे मिल सकते हैं। नय वह मेरे हृदयके बुद्धि-बलको हर लेता है ॥३॥ ( बुद्धि-बलके नष्ट हो जानेके मुझे कलियुगका बताया हुआ उपचार यानी विषय-भोग अच्छा लगत है और मैं उसीमें लग जाता हूँ। इसी विघ्नके कारण मैं आपके साथ सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध और प्रेम नहीं कर पाता ) आपसे कुछ कहना है, पर उसे कहते संकोच हो रहा है कि कहीं मेरी यात फिर फीकी न पड़ जाय ( खाली न चली जाय ) इससे मैं आपकी बलैया लेता हूँ, ( यात यह है

कि जरा अपने) पास बुलाकर इसे (कलियुगको) रोक दीजिये, जिससे यह तुलसी-सरीखे जड़ जीवोंका खयाल छोड़ दे ॥४॥

[ २६६ ]

ज्यों ज्यों निकट भयो चहाँ कृपालु ! त्यों त्यों दूर परयो हौं ।  
तुमचहुँ जुग रस एक राम ! हौं हूँ रावरो, जदपि अथ अबगुननि मरयो हौं ॥

पीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छरयो हौं ।  
हौं सुवरन कुवरन कियो, नृपतेँ भिखारि करि, सुमतितेँ कुमतिकरयो हौं ॥२॥

अगनित गिरि-कानन फिरयो, बिनु आगि जरयो हौं ।  
चित्रकूट गये हौं लखि कलिकी कुचालि सब, अब अपहरनि हरयो हौं ॥३॥

माथ नाइ नाथ सों कहौं, हाथ जोरि खरयो हौं ।  
बीन्हौं चोरजिय मारि है तुलसी सो कथा मुनि प्रभुसों गुदरि निबरयो हौं ॥४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान ! ज्यों-ज्यों मैं आपके निकट होना चाहता हूँ त्यों-ही-त्यों दूर होता चला जाता हूँ । हे रामजी ! आप चारों युगोंमें सदा एकरस हैं और मैं भी आपका रहा आया हूँ, यद्यपि मैं पापों और भवगुणोंसे भरा हूँ ॥१॥ आपसे अलग रहनेका मौका पाकर इस नीच कलियुगने मुझे बीचहीमें छलोंसे छल लिया (अज्ञानसे ही इसको जीवत्य प्राप्त हो गया ।) मैं सुवर्ण था, पर इसने कुवर्ण कर दिया। (नित्य आनन्दधनरूपसे दुःखप्रल जीवरूपमें परिणत कर दिया।) राजासे रंक बना डाला और भ्रातासे अज्ञानी कर डाला ॥२॥ तबसे मैं (अनेक योनियोंमें) अगणित पहाड़ों और जंगलोंमें भटकता रहा और बिना ही आपके (अज्ञानजनित दुःख-दायानलसे) जलता रहा । परन्तु अब मैं चित्रकूट गया, (और यहाँ आपका प्रेमपूर्वक मजन करने

लगा ) तब ( आपकी कृपासे ) मैं इस कलिकी सारी कुचालों तो समझ गया ( तथापि ) अब मैं अपने ही डरसे डर रहा हूँ ॥३॥ मैं हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़ा हुआ मस्तक नवाकर कह रहा हूँ कि पहचान हुआ चोर फिर जीवको (प्रायः) मार ही डालता है, ( कलियुग हुआ चोर है, यह दाँव देख रहा है ) इस बातको सुनकर तुम्हें अपने स्वामीसे विनय करके निश्चिन्त हो चुका ( अब भाव उचित समझकर उपाय कीजिये ) ॥४॥

[ २६७ ]

पन करि हौं हठि आजुतें रामद्वार परयो हौं ।  
 'तूमेरो' यह विन कहे उठिहौं नजनममरि, प्रभुकी सौं करि ।

द द धका जममट धके, टारे न टरयो हौं ।

हौं मचला लै छाड़िहौं, जेहि लागि अरयो हौं ।

तुम दया

प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध-भरयो हौं  
 ती मनमें अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि, कलि बिलोकि

भावार्थ—हे धीरामत्री ! आजतें मैं शर्याग्रह करनेकी आपके द्वारपर पहुँचा गया हूँ; जयनरु भाव यह न कहेंगे कि जयनरु मैं यहाँमें जीवनमर नहीं उठूँगा, यह मैं आपकी

॥३॥ ( यह न समझियेगा कि पुलिनके धके

) यमदूत मुझे धके मार-मारकर धके गये, मुझे



## यिनय-पत्रिका

लगा ) तब ( आपकी कृपासे ) मैं इस कालिका सारी कुचालें तो  
गया ( नयापि ) अब मैं अपने ही डरसे डर रहा हूँ ॥३॥ मैं हाथ जो  
प्रभुके सामने खड़ा हुआ मस्तक नवाकर कह रहा हूँ कि पर  
हुआ चोर फिर जीवको (प्रायः) मार ही डालता है; ( कलियुग पर  
हुआ चोर है, वह दाय देय रहा है ) इस बातको सुनकर तु  
अपने स्वामीसे यिनय करके निश्चिन्त हो चुका ( अब आर स्वयं  
उचित समझकर उपाय काँजिये ) ॥४॥

[ २६७ ]

पन करि हाँ हठि आजुते रामद्वार परयो हौं ।  
'तू मेरो' यह विन कहे उठिहौं न जनम मरि, प्रभुकी साँकारि निबरयो हौं ।  
दँ दँ घक्का जमभट थके, टारे न टरयो हौं ।  
उदरदुसह साँसति सही बहुवार जनभिजग, नरकनिदरि निकरयो हौं ।  
हौं मचला लै छाडिहौं, जेहि लागि अरयो हौं ।  
तुम दयालु, बनिहँ दिये, बलि, विलंब नकीजिये, जात गलानि गरयो हौं ।  
प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध-भरयो हौं ।  
तौ मनमें अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि, कलि बिलोकि इहरयो हौं ॥४॥

भावार्थ—हे धीरामजी ! आजसे मैं सत्याग्रह करनेकी प्रतिज्ञा करके  
आपके द्वारपर पहुँ गया हूँ; जयतक भाव यह न कहेंगे कि 'तू मेरा है'  
तयतक मैं यहाँसे जीवनभर नहीं उठूँगा, यह मैं आपकी शपथ साक्षर  
कह चुका हूँ ॥१॥ ( यह न समझियेगा कि पुलिसके घबरे शाफर  
उठ जाऊँगा ) यमदूत मुझे घबरे मार-मारकर धक गये, मुझे जबरन ली

नरकके द्वारसे हटाना चांहा, पर मैं वहाँसे उनके हटाये हटा ही नहीं  
 ( इतने अधिक पाप किये कि अनेक जीवन नरकमें ही रीते ! ) ।  
 संसारमें बार-बार जन्म लेकर ( माताके ) पेटकी असह्य पीड़ाको सहा,  
 पर कहीं नरकका निरादरकर वहाँसे निकला हूँ ॥२॥ जिस चीजके  
 लेये मचल गया हूँ और अड़ बैठा हूँ उसे लेकर ही छोड़ूँगा, क्योंकि  
 तब दयालु है, ( मेरा अड़ना देखकर अन्तमें ) आपको वह चीज देनी  
 ही पड़ेगी । मैं आपकी यत्नेया लेता हूँ ( जब देनी ही है, तब तुरन्त दे  
 गलिये ) देर न कीजिये । क्योंकि मैं ग्लानिके मारे गला जाता हूँ ।  
 लोग कहेंगे कि ऐसे दयालु स्वामीके द्वारपर धरना दिये इतने दिन  
 तित गये, इसलिये तुरन्त इतना कह दीजिये कि 'तुलसी मेरा है ।' यस,  
 तना सुनते ही मैं धरना त्याग दूँगा ) ॥३॥ मैं अपराधोंसे भरा हूँ,  
 न कारणसे यदि आपको स्वयंके सामने प्रकटमें कहते संकोच होता है  
 तो कृपाकर मनमें ही तुलसीको अपना लीजिये, क्योंकि मैं कलिको देखकर  
 डुन घबरा गया हूँ ॥४॥

[ २६८ ]

तुम अपनायो तब जानिहैं, जब मन फिरि परिहैं ।  
 यदि शुभाव विषयनि लग्यो, तैहिसहजनाथ मों नेह छाड़ि छल करिहैं १  
 सुतकी प्रीति, प्रतीति भीतकी, नृप ज्यों डर डरिहैं ।  
 अपने सोस्वारथ स्वामिसों, चहुँ विधिघातकज्यों एकटेकनेनहिं डरिहैं २  
 हरिहिं न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहैं ।  
 अनिलामदुखसुखसर्व समचितदित अनहित, कलि-कुचालिपरिहरिहैं ३

## पिनय-पत्रिका

सगा ) तब ( भापकी हंगामे ) मैं इस कत्रिकी मारी कुमालें को  
गया ( गयानि ) भय मैं भयने ही डरने हर रहा है ॥३॥ मैं हाथ जे  
प्रभुके सामने नका हुआ मन्त्रक नयाकर कह रहा है कि पर  
हुमा घोर फिर जीपको (मापः) मार ही डालना है: ( कलियुग पर  
हुमा घोर है, यह दाय देन रहा है ) इस बातको सुनकर तु  
भयने मारामे पिनय करके निश्चिन्त हो चुका ( मय मार स  
उचित समझकर उपाय कीजिये ) ॥३॥

[ २६७ ]

पन करि हों हठि आनुतें रामदार परयो हों ।  
'तूमेरो' यह बिन कहे उठिहों न जनम मरि, प्रभुकी साँकरि निबरयो हों ।  
दँ दँ घका जममट थके, टारे न टरयो हों ।  
उदर दुसह सौसति सही बहुबार जनमि जग, नरकनिदरि निकरयो हों ।  
हों मचला लँ छाड़िहों, जेहि लागि अरयो हों ।  
तुम दयालु, धनिहँ दिये, बलि, बिलंब न कीजिये, जातगलानि गरयो हों ।  
प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध-भरयो हों ।  
तौ मनमें अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि, कलि विलोकि इहरयो हों ॥

भावार्थ—हे धीरामजी ! आजसे मैं सत्याग्रह करनेकी प्रतिज्ञा कर  
आपके द्वारपर पड़ गया हूँ। जयतक भाव यह न कहेंगे कि 'तू' मेरा  
तयतक मैं यहाँसे जीवनमर नहीं उठूँगा, यह मैं आपकी शपथ सा  
कह चुका हूँ ॥१॥ ( यह न समझियेगा कि पुलिसके घके साकर  
उठ जाऊँगा ) यमदूत मुझे घके मार-मारकर थक गये, मुझे जबरदस्

नरकके द्वारसे हटाना चाँहा, पर मैं वहाँसे उनके हटाये हटा ही नहीं (इतने अधिक पाप किये कि अनेक जीवन नरकमें ही घाँते ! ) : संसारमें बार-बार जन्म लेकर ( मानाके ) पेटकी असह्य पीड़ाको सह्या, तब कहीं नरकका निरादरकर वहाँसे निकला हूँ ॥२॥ जिस चीजके लिये मचल गया हूँ और अड़ बैठा हूँ उसे लेकर ही छोड़ूँगा, क्योंकि शपथ दयालु हूँ, ( मेरा अड़ना देखकर अन्तमें ) आपको यह चीज देनी ही पड़ेगी । मैं आपकी बलैया लेता हूँ ( जय देनी ही है, तब तुरन्त दे लिये ) देर न कीजिये । क्योंकि मैं श्लानिके मारे मला जाता हूँ । लोग कहेंगे कि ऐसे दयालु स्वामीके द्वारपर धरना दिये इतने दिन मिल गये, इसलिये तुरन्त इतना कह दीजिये कि 'तुलसी मेरा है ।' बस, इतना सुनते ही मैं धरना त्याग दूँगा ) ॥३॥ मैं अपराधोंसे मरा हूँ, न कारणसे यदि आपको सबके सामने प्रकटमें कहते संकोच होता है तो कृपाकर मनमें ही तुलसीको अचना लीजिये, क्योंकि मैं कलिको देखकर डर घबरा गया हूँ ॥४॥

[ २६८ ]

तुम अपनापो तब जानिहीं, जब मन फिरि परिहै ।  
 १। हि सुभाव बिषयनि लग्यो, तेहि सहजनाथ सों नेह छाड़ि छल करिहै १  
 सुतकी प्रीति, प्रतीति मीतकी, नृप ज्यो डर डरिहै ।  
 २। पनो सोस्वार्थ स्वामिसों, चहुँ बिधिचातकज्यों एकटेकनेनिहिँटारिहै २  
 हरपिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै ।  
 ३। निलामदुरखसुखंसर्य समचितवहित अनहित, कलि-कृचालिपरिहरिहै ३



## द्वितीय-पत्रिका

प्रभु-गुण सुनि मन हरिपिहै, नीर नयननि बरिहै ।  
तुलसीदास मयो रामको, विश्वास, प्रेम लखि आनंद उमगि उर ।

भावार्थ—जय मेरा मन ( आपकी ओरकी ) फिर जायगा, मैं  
समझूँगा कि आपने मुझे अपना लिया । जब यह मन, जिस  
न्यायसे ही विषयोंमें लग रहा है, उसी प्रकार कष्ट छोड़कर  
साथ प्रेम करेगा ( जबतक प्रेमा नहीं होता तबतक मैं कैसे समझ  
मुझको आपने अपना दास मान लिया ) ॥१॥ जैसे मेरा वह मन  
प्रेम करता है, मित्रपर विश्वास करता है और राज-भयसे डरत  
वैसे ही जय यह अपना स्वयं स्वार्थ केवल स्वामीसे ही रखेगा  
चारों ओरसे चातककी तरह अपनी अनन्य टेकसे नहीं टलेगा ( एक प्र  
ही निर्भर करेगा ) ॥२॥ अत्यन्त आदर पानेपर जब उसे हर्ष न हो  
निरादर होनेपर वह जलकर न मरेगा और हानि-लाभ, सुख-दुःख, मृत  
बुराई सबमें चित्तकी सम रखेगा और कलिकालकी कुचालोंकी (सर्  
छोड़ देगा ( तभी मानूँगा कि नाथ मुझे अपना रहे हैं ) ॥३॥ और  
मेरा मन प्रभुका गुणानुवाद सुनते ही हर्षमें विह्वल हो जायगा, मेरे नेत्र  
प्रेमके आँसुओंकी धारा बहने लगेगी तभी तुलसीदासको यह विद  
होगा कि वह धीरामजीका हो गया । तब उस (अनन्य) प्रेमको देख  
हृदयमें आनन्द उमड़कर भर जायगा । ( हे प्रभो ! शीघ्र ही अपना  
मेरी ऐसी दशा कर दीजिये ) ॥४॥

[ २६९ ]

राम कबहुँ प्रिय लागिहै जैसे नीर मीनको ?  
जीवन ज्यों जीवको, मनि ज्यों फनिको हित, ज्यों धन लोभ-लीन

ज्यों मुमाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीनको ।  
 त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर ! पावन प्रेम पीनको ॥२॥  
 'मनसाको दाता कहैं श्रुति प्रभु प्रवीनको ।  
 तुलसीदासको भावतो, बलि जाउँ दयानिधि ! दीजै दान दीनको ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! मुझे क्या कभी आप ऐसे प्यारे लगेंगे, जैसा मछलीको जल प्यारा लगता है, जीवको सुखमय जीवन प्यारा लगता है, माँपको मणि प्रिय लगती है और अत्यन्त लोभीको धन प्यारा लगता है ? ॥१॥ अथवा जैसे नवयुवक नायकको स्वभावसे ही नवयुवती चतुरा नायिका प्यारी लगती है, वैसे ही हे करुणाकी खानि ! मेरे मनमें केवल आपके प्रति पवित्र और अनन्य प्रेमकी ही एक लालसा उत्पन्न कर दीजिये ॥२॥ वेद कहते हैं कि प्रभु मनमानी घस्तु देनेवाले हैं और वड़े ही चतुर हैं (बिना ही कहे मनकी बात जानकर उसे पूरी कर देते हैं) । हे दयानिधि ! मैं आपकी यलैया लेता हूँ, इम दीन तुलसीदासको मैं उसकी मनचाही घस्तुका दान दे दीजिये ॥३॥

[ २७० ]

कबहुँ कृपा करि रघुवीर ! मोहू चिर्तहो ।  
 भलो-धुरोजन आपनो, जिय जानि दयानिधि ! अवगुन अमित चिर्तहो ॥१॥  
 जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो ।  
 हौं सनाथ ह्वैहौ सही, तुमहू अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो ॥२॥  
 विनय करौं अपभयहु तें, तुम्ह परम हितै हो ।  
 तुलसीदास कासों कहै, तुमही सब मेरे, प्रभु-गुरु, मातु-पितै हो ॥३॥

## धनप-पत्रिका

मायार्थ—हे रघुवीर ! कभी कृपाकर मेरी ओर भी देवे  
यानिधान ! 'भला-धुरा जो कुछ भी है, आपका दास है'  
राममें इस यातकी समझकर क्या मेरे अपार अवगुणोंका अन्त  
अपनी दयासे मेरे सब पापोंका नाशकर मुझे अपना लेंगे ?  
अवसे पूर्व ) प्रत्येक जन्ममें यह मन मुझे जीतता चला आया  
ससे हारकर विषयोंमें फँसता रहा है), इस बार क्या आप मुझे  
जिता देंगे ? ( क्या यह मेरे बश होकर केवल आपके चरणों  
जायगा ? ) ( तब ) मैं तो सनाथ हो ही जाऊँगा किन्तु आप  
री क्षुद्रतासे नहीं डरेंगे, तो 'अनाथ-पति' पुकारे जाने लगेंगे  
चित्तापर ध्यान न देकर मुझे अपना लेंगे तो आपका अनाथ-नाथ  
ो सार्थक हो जायगा) ॥२॥ मैं अपने ही डरके मारे आपसे यों विन  
रहा हूँ । आप तो मेरे परम हितू हैं । ( परन्तु नाथ ! ) यह तुलस  
अपना दुःख और किसे सुनाने जाय ? क्योंकि मेरे तो मातृका  
माता, पिता आदि सब कुछ केवल आप ही हैं ॥३॥

[ २७१ ]

जैसे हैं तैसे राम रावरो जन, जनि परिहरिये ।  
कृपासिंधु, कोसलधनी ! सरनागत-पालक, दरनि आपनी दरिये ।  
हैं तो बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिये ।  
सुम सुधारि आये सदा सबकी सबही विधि, अब मेरियो सुधारिये ।  
जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत श्दि डर डरिये ।  
कपि-केवटकीन्हेसखा जैहिसील, सरलचित, तेहि सुमाउ अनुसरिये ।

अपराधी तउ आपनो, तुलसी न बिसरिये ।  
दूटयो बाँह गरे परै, फूटेहु बिलोचन पीर होत हित करिये ॥४॥

मावार्थ-हे धीरामजी ! मैं ( भला-बुरा ) कैसा भी हूँ, पर हूँ तो आपका दास ही, इससे मुझे त्यागिये नहीं । हे कोसलनाथ ! आप कृपाके समुद्र और शरणागतोंका पालन करनेवाले हैं । अपना इस शरणागत-बत्सलताकी रीतिपर ही चलिये ॥१॥ मैं तो (काम, क्रोध आदि) दूसरोंके द्वारा पहले ही विगाड़ा हुआ हूँ, इस विगड़े हुएको ( शरणमें न रखकर और ) न विगाड़िये । आप तो सदा ही सबकी सब तरहसे सुधारने आये हैं, अब मेरी भी सुधार दीजिये ॥२॥ मुझे अपनानेमें जगत् आपकी हँसी करेगा, आप इस डरसे क्यों डर रहे हैं ? (आपका तो सदासे यह धाना ही है ।) आपने अपने जिस शील और सरल चित्तसे बन्दरों और बैचटको अपना मित्र बनाया था, मेरे साथ भी उसी स्वभावके अनुसार पताब कीजिये ॥३॥ यद्यपि मैं अपराधी हूँ, पर हूँ तो आपका ही । इसलिये तुलसीकी आप न भुलाइयें । (अपना) टूटा हुआ भी हाथ गले बाँध जाता है और फूटी हुई आँखमें भी जब दर्द होना है, तब उसके बच्चे करानेकी चेष्टा की ही जाती है । (इसी प्रकार मैं भी यद्यपि टूटी बाँह और फूटी आँखके समान किसी कामका नहीं हूँ तथापि आपका ही हूँ, इसलिये आप मुझे कैसे छोड़ सकते हैं ? ) ॥४॥

[ २७२ ]

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो ।  
शुनहु राम ! बिनु रावरें लोकहु परलोकहु कोउ न कहँ हितु मेरो ।१।

अगुन-अलायक-आलसी जानि अधम अनेरो ।  
अधनु

स्वारथके साथिन्ह तज्यो विजराको-सो टोटक, औंचट उलटि न हेरो ।

भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।

देवनिह देव ! परिहरयो, अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो ।

नामकी ओट पेट भरत हौं, पै कहावत घेरो ।

जगन-चिदित बात ह्ये परी, समुझिये धौं अपने, लोक कि बेर बढेगे ।

ह्ये जप-तप तुम्हहिं से तुलसीको भलेरो ।

दिन-ह-दिन देव!  
दीन विगारिह, पलि जाउं, बिलंब किये, अपनाइये गोरो ।

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! भाव गुणपर मन प्रीति न कीजिये, बेरी भोरने भवनी ( कृपाकी ) मज्जर न विगारिये । ( गुणको बांगी भगवत्क व सो बांध कीजिये और न भवनी कृपादयि ही इडाइये ) हे माय ! तुमिने इग लोक और परलोकमें भावरो छोड़कर मेरा कल्याण करनेवाला कोई दूगाव नहीं है ॥१॥ मुझे गुणहीन, मायायक, आलसी, भौन भगवा रतिद्र और निरुत्सा नामककर ( जगत्क ) भार्गीके संगिथीने विजारीके टोटकेकी मज्जर छोड़ दिया और फिर भूलकर भी परलोक गुते नहीं देखा । ( भार्गी छुटने ही देखा छोड़ दिया कि फिर कभी यापनक नहीं दिया ) ॥२॥ मुझे मानिहीन, धर्मोक्त मार्गमें बाहर वर्ष करियुमक मार्गने पिना दुखा देखाकर, हे माय ! देवताओंने भी छोड़ दिया । इगते उपमा कोई अन्वय भी नहीं है, क्योंकि वि शरीरका भगवती है ॥३॥ हे माय कय, कल्पके नामकी भोट केकरगेट मर रहा है, इयनेपर भी आनका काम बढानेवा है और यह काल मारा होमार जान गया है । अब मा । ही



## चिनय-पत्रिका

दृष्टियोंमें जो आपको अच्छी लगे, उसी दृष्टिसे जल्दी (मेरी ओर लीजिये (यस, मेरा काम तो आपके देखते ही घन जायगा)। (बा है कि) तुलसीदासको अब अपना लीजिये, इसमें देर न कीजिये, अब जीवनका अन्त बहुत ही समीप आ गया है ॥३॥

[ २७४ ]

जाऊँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित-दीनको ?  
को कृपालु स्वामी-सारिखो, राखँ सरनागत सब अँग बल-बिहीनको  
गनिहि, गुनिहि साहिब लहै, सेवा समीचीनको ।

अधम  
अघन अगुन आलसिनको पालियो फाबि आयो रघुनाथक नवीनको

मुखकै कहा कहाँ, विदित है जीकी प्रभु प्रवीनको ।  
तिहू काल, तिहू लोकमें एक टेक रावरी तुलसीसे मन मलीनको

भावार्थ—हे देव ! कहाँ जाऊँ ? मुझ दुखी-दीनको कहाँ ठौर-ठिकान  
आपके समान कृपालु स्वामी और कान है, जो सब प्रकारके हाथ  
बलसे बिहीन शरणागतको आश्रय दे ? ॥१॥ (आपको छोड़कर मैंता  
जो दूसरे मालिक हूँ, ये तो घनो, गुणवान् यामी मद्गुणसम्पन्न और म  
भौति सेवा करनेवाले संयकको ही अपनाते हैं। (मैं न तो घनवान् हूँ, न गु  
कोई मद्गुण है और न मैं भलीभौति सेवा करनेवाला हूँ) मुझ सारीमें भी  
सयवा निर्धन (माघनहीन), मद्गुणोंमें हीन भावगियोंका पालन पाप  
करना तो नित्य उगताही धीरघुनाथजीको ही शोभा देता है ॥२॥ मुझ  
क्या कहूँ प्रभो ! आप तो स्वयं चतुर हैं, मेरे जीकी भाँत सब जानते हैं

दुल्हनी-सरीखे मलिन मनवालेके लिये तीनों लोकों ( स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल ) और तीनों कालोंमें एक आपका ही सहारा है ॥३॥

[ २७५ ]

द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहू । १५

हैं दयालु दुनी दस दिसा, दुख-दोष-दलन-छम, कियो न सँभापन काहू । १ ।

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिता हू ।

जनतंड

काहेंको रोप, दोष काहिघाँ, मेरेही अभाग मोसों सकुचत छुड़ सब छाँहू । २ ।

दुखित देखि संतन कखो, सोचै जनि मन माँहू ।

गोसे पसु-पाँवर-पातकी परिहरे न सरन गये, रघुवर ओर निवाहूँ ॥३॥

तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति विनाहू ।

पिपकी महिमा, सील नाथको, मेरो भलो विलोकि अब तें सकुचाहूँ, सिहाहूँ

भावार्थ - हे नाथ ! मैं द्वार-द्वारपर दौत निकालकर और पैरों पड़-पड़-

कर अपनी दीनता सुनाता फिरा । दुनियाँमें ऐसे-वैसे दयालु हैं, जो दशों

दिशाओंके दुःखों और दोषोंके दमन करनेमें समर्थ हैं, किन्तु मुझसे तो

किसीने यात भी नहीं की ॥१॥ माता-पिताने मुझे ऐसा त्याग दिया,

जैसे कुटिल कीड़ा अर्थात् सर्पिणी अपने ही शरीरसे जने हुए ( बच्चे ) को

त्याग देती है । मैं किसलिये तो क्रोध करूँ और किसको दोष दूँ ? यह सब

मेरे ही दुर्भाग्यसे हुआ । ( मैं पेमा नीच हूँ कि ) मेरी छायातक छूनेमें भी लोग

संकोच करते हैं ॥२॥ मुझे दुखी देखकर सन्तोंने कहा कि तू मनमें चिन्ता न

कर । तुझ-सरीखे घामर और पारी पशु-पक्षियोंतकको, शरणमें जानेपर,

धीरघुनाथजीने नहीं त्यागा और अपनी शरणमें रखकर उनका



अन्ततक निर्याह किया (तू भी उन्हींकी शरणमें जा) ॥३॥ यह तुलसी तर्माने  
आपका हो गया और आपपर इसकी प्रीति-प्रतीति न होनेपर भी तर्माने  
यह यह सुनमें भी है। (प्रीति-प्रतीति होती, तो आनन्दकी कोई सीमा ही न  
रहती)। हे नाथ ! आपके नामकी महिमा तथा शीलने ( मेरी नाट्यायकी  
होनेपर भी ) मेरा कल्याण किया, यह देखकर अब मैं मन-ही-मन सकुचाता  
हूँ ( इसलिये कि मैंने कृपा-पात्र होनेयोग्य तो एक भी कार्य नहीं किया-  
फिर भी मुझ कृतघ्नपर प्रभुकी ऐसी कृपा है ) और आपकी शरणागत-  
वत्सलताकी प्रशंसा करता हूँ ॥४॥

[ २७६ ]

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?

राम रावरे विन भये जन जनमि-जनमि जग दुख दसहू दिसि पायो ॥१॥

आस-विचस खास दास हूँ नीच प्रभुनि जनायो ।

हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार, परी न छार, मुह बायो ॥२॥

असन-बसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि घायो ।

महिमा-मान प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे, खिनु-खिनु पेट खलायो

असु

नाथ ! हाथ कछु नाहि लगयो, लालच ललचायो ।

साँच कहाँ, नाच कौनसो, जो न मोहिलोभ लघु हौं निरलज्ज नचायो ॥४॥

श्रवन-नयन-मन मग लगे, सब थल पतितायो ।

अग

भूढ़ मारि, हिय हारिकै, हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ॥५॥

दसरथके ! समरथ तुही, त्रिभुवन जसु गायो ।

तुलसी नमत अवलोकिये, बलि, बाँह-बोल दै बिरुदावली बुलायो ॥६॥

भावार्थ— मैंने क्या नहीं किया ? मैं कहाँ नहीं गया ? कौन-सी जगह जानेको घबरी ? और किसके आगे सिर नहीं झुकाया ? किन्तु, हे धींगमत्री ! जयतक आपका दास नहीं हुआ, तयतक जगत्में बार-बार जन्म ले-लेकर मैंने दशों दिशाओंमें केवल दुःख ही पाया ( कहीं स्वप्नमें भी सुख नहीं मिला ) ॥१॥ (आपका) खास दास होनेपर भी मैं (अभय-यश विषयोंसे सुख मिलनेकी) आशाके यशमें हो अश्रुद्ध हृदयके मालिकोंके सामने अपनेको अताना (समर्पण करता) फिरा और बार-बार द्वार-द्वारपर अपनी परीची सुनाकर मुँह थापा, पर उसमें राक भी न पड़ी । (सुख-दान्तिका कहीं आभास भी नहीं मिला) ॥२॥ भोजन और पक्षके बिना पागलकी तरह जहाँ-तहाँ दौड़ता फिरा । प्राणोंसे व्यारी धान-अतिष्ठाको त्यागकर दुष्टोंके सामने क्षण-क्षणमें अपना यह (गाली) पेट मोलकर दिन्वाया ॥३॥ हे नाथ ! (विषयोंके) लोभके मारे बहुत ही शालग्र किया पर कहीं कुछ भी हाथ नहीं लगा । मैं सच कहता हूँ, ऐसा कौन-सा नाथ है, जो नीच लोभने मुक्त निर्लज्जको न नचाया हो ! ॥४॥ कान, भौंलें और मनको भी अपने-अपने मार्गमें लगाया, परन्तु सबी जगह उलटा पतित ही होता गया । (सब राजे महाराज भी जीव लिये । कहीं किमी विषयमें किमीके द्वार भी सुख-दान्तिक नहीं मिली, तब) सिर पीटकर हृदयमें द्वार मान गया— निराश हो गया । रसमें अब घबराकर आपके चरणोंकी शरण लककर भाया हूँ, यहाँक रसमें मुझे अपना दिन दिन्वायी देता है ॥५॥ हे दशरथपुत्र ! भाव ही समर्थ है । लीनों लोभमें आपका ही यश गाया जाता है । तुम्हरी आपके चरणोंमें प्रणाम कर रहा है, रसकी भोर देखिये, मैं आपकी कर्तव्य

लेता हूँ। आपकी बिरदावलीने ही मुझे बाँह और बचन देकर बुलाया है।  
(आपके पतितपावन और शरणागतवत्सल बिरदकी देग-रेगमें मेरा  
कल्याण क्यों न होगा ?) ॥६॥

[ २७७ ]

राम राय ! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?

स्वामी-सहित सबसों कहीं, सुनि-गुनि बिसेपि कोउ रेख दूसरी साँचो।।

देह-जीव-जोगके सखा मृपा टाँचन टाँचो।

किये बिचार सार कदलि ज्यों, मनि कनकसंग लघु लसत बीच बिच काँचो।

‘चिनय-पत्रिका’ दीनकी, बापु! आपु ही बाँचो।

दिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुमाय सही करि बहुरि पूँलिये पाँचो।।२॥

भावार्थ—हे महाराज श्रीरामचन्द्रजी ! आपको छोड़कर मेरा क्या  
दिगू और कौन है ? मैं अपने स्वामीसहित सर्वासे कहता हूँ, उसे सुन  
समझकर यदि कोई और बड़ा हो, तो दूसरी लकीर बीच दीजिये ॥१॥  
शरीर और जीवात्माके सम्बन्धके जितने मगग या दिगू मिलते हैं, वे सब  
(अमन्) मिथ्या टाँकोंमें मिले हुए हैं। (मंगारके सभी सम्बन्ध प्राणिक  
हैं) बिचार करनेपर ये ‘मग्गा’ केलेके पेड़के सारके समान हैं। (जैसे केलेके  
पेड़का छीलनेपर छिलके ही निकलते हैं, वैसे ही मंगारके सारे सम्बन्ध  
भी सारहीन केवल अज्ञानजनित ही हैं) ये धीमे ही सुस्पष्ट जान पड़ते हैं,  
जैसे मणि-सुवर्णके मंयोगमें बीच-बीच शुद्ध काँच भी गोभा देता है ॥२॥  
हे बापजी ! इस दीनकी लिखी ‘चिनय-पत्रिका’ को तो भाग मय ही  
पढ़िये। (किसी दूसरेसे न पढ़ियारिये)। मुलगीने हमसे भागने इच्छा की

सर्वा वार्ते ही लिखी हैं, इसपर पहले आप अपने (दयालु) स्वभावसे 'सद्दी' बना दीजिये । फिर पीछे पञ्चोंसे पूछिये ॥३॥

[ २७८ ]

पवन-सुवन! रिपु-दवन! भरतलाल! लखन! दीनकी ।

निज निज अवसर सुधि किये, बलि जाऊँ, दास-आस पूजि है खासखीनकी १

राज-द्वार भली सब कहें साधु-समीचीनकी ।

सुकुव-सुजस, साहिब-कृपा, स्वारथ-परमारथ, गति भये गति-विहीनकी । २।

समय सँभारि सुधारिबी तुलसी भलीनकी ।

सीति-सीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीनकी ॥३॥

भावार्थ—हे पवनकुमार ! हे शत्रुघ्नजी ! हे भरतलालजी ! हे लखनलालजी ! अपने-अपने अवसरसे (मौका लगते ही) इस दीन तुलसीको याद करना । मैं आपलोगोंकी थलैया लेता हूँ । आपके (कृपापूर्वक) ऐसा करनेसे इस सर्वथा दुर्बल दासकी आशा पूरी हो जायगी (धीरधुनाथजी मेरी पत्रिकापर 'सद्दी' कर देंगे) ॥१॥ राज-दरबारमें सधे साधुओंकी तो सभी अच्छी कहते हैं, इसमें क्या विशेषता है ! किन्तु यदि आपलोग इस शरणरहित दीनकी सिफारिश कर देंगे, तो इसको भगवान्की शरण मिल जायगी, आपको पुण्य होगा और सुन्दर यश फैलेगा, आपके स्वामी आपपर कृपा करेंगे (क्योंकि यह सीनोंपर दया करनेवालोंपर स्वाभाविक ही प्रसन्न हुआ करते हैं) आपके स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन जायेंगे ॥२॥ हमलिये अवसर देखकर (मौका पाते ही) इस पतित तुलसीकी बात सुधार देना । शरणगत-

## विनय-पत्रिका

घासल कृपालु रघुनाथजीसे मुझ पराधीनके प्रेमकी रीतिकी  
समझाकर कह देना ॥३॥

[ २७२ ]

मारुति-मन, रुचि भरतकी लखि लपन कही है ।  
कलिकालहु नाथ! नाम सौं परतीति-प्रीति एक किंकरकी निबही है ।  
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है ।  
कृपा गरीबनिवाजकी, देखत गरीबको साहब षाँह गही है ।  
विहँसि राम कधो 'सत्य है, सुधि मेंहूँ लही है' ।  
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथकी, परी <sup>रघुनाथ</sup> <sub>रघुनाथ हाथ</sub> सही है ।

प्रसंग—भगवान् श्रीरामका दिव्य दरबार लगा है, प्रभु जगज्जन  
धीजानकीजीके सहित अलौकिक रत्नजटित राज्यासिंहासन पर विराज  
हैं । हनुमान्जी प्रेममग्न हुए नाथकी ओर अनन्य दृष्टिसे निहारते हुए घ  
दया रहे हैं । भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी अपने-अपने अधिकारानुस  
सेवामें संलग्न हैं । उसी समय तुलसीदासजीकी 'विनय-पत्रिका' पहुँची  
तुलसीदासजीकी प्रार्थना सबको याद थी । भक्त-प्रिय मादति श्रीहनुमा  
और भरतने धीरेसे लक्ष्मणसे कहा कि यद्वा अच्छा मौका है, ए  
समय तुलसीदासकी घात छेड़ देनी चाहिये । लक्ष्मणजीने उनकी र  
देखकर प्रभुकी सेवामें 'विनय-पत्रिका' पेश कर दी ।

भावार्थ—हनुमान्जी और भरतजीका मन और उतकी रुचिको देखकर  
लक्ष्मणजीने भगवान्से कहा कि हे नाथ ! कलियुगमें भी आपके एक  
दासकी आपके नामसे प्रीति और प्रतीति निभ गयी ( देखिये, उसकी घ

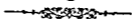
सही विनय-पत्रिका भी आयी है) ॥१॥ इस बातको सुनकर सारी सभा एकमतसे कह उठी कि हाँ, यह बात सर्वथा सत्य है, हमलोग भी उसकी रीति जानते हैं। गरीब-निघाज भगवान् श्रीरामजीकी उसपर(बड़ी)कृपा है। सामीने सबके देखते-देखते उस गरीबकी बाँह पकड़कर उसे अपना लिया है ॥२॥ सबकी बात सुनकर श्रीरामजीने मुसकराकर कहा कि हाँ, यह सत्य है, मुझे भी उसकी खबर मिल गयी है। (श्रीजनकनन्दिनीजी कई बार कह चुकी होंगी, क्योंकि गोसाइँजी पहले उनसे प्रार्थना कर चुके हैं)। बस, फिर क्या था—अनाथ तुलसीकी रची हुई विनय-पत्रिकापर गुलाबजीने अपने हाथसे 'सही' कर दी। अपनी बात बचनेपर मैंने भी परम प्रसन्न होकर भगवान्के चरणोंमें सिर टेक दिया (सदाके लिये शरण हो गया) ॥३॥

श्रीसीतारामार्पणमस्तु



# परिशिष्ट

## पदोंमें आये हुए कथाप्रसंग



### पद-संख्या ३-कालकूट-विप—

देवता और असुरोंने एक बार मेरु-पर्वतकी मयानी और शोणतामघ दण्ड बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उसमें सबसे पहले हलहल विप निकला और उसने दशों दिशाओंको अपनी ज्वालासे व्याप्त कर दिया। फिर तो देवता और असुर सभी ग्राहि-ग्राहि करने लगे। सबोंने निकर विचारा कि बिना भक्तवासल भगवान् शङ्करके इस महाघातक विपके प्रणयाना कठिन है। इसलिये उन्होंने एक साथ आर्ध-स्वरो भगवान् शङ्करको पुकारा। भक्त-आर्ति-हर करुणामय भगवान् शङ्कर शीघ्र ही प्रकट हुए और उनको मयभीत देवकर हलहल विपको उठाकर पान कर गये। परन्तु शीघ्र ही उन्हें स्मरण हुआ कि हृदयमें तो ईश्वर अपनी अगित सृष्टिके लक्ष विराजमान हैं, इसलिये उन्होंने उस विपको कण्ठमें नीचे मही उतरने दिया। उस विपके प्रभावमें उनका कण्ठ नीला हो गया और दोगुण बहति भगवान्का भूषण बन गया तभीसे शिव 'नीलकण्ठ' कहलाने लगे।

### त्रिपुर-वध—

मरुत नामका एक असुर था। उसके तीन पुत्र हुए—प्राक्वर्ण, सुम्भकी और कामरुज्योत्सव। उन तीनोंने महाभारत का काँच प्रयास

और शिवजीको प्रसन्न किया तथा उनसे अन्तरिक्षके तीन पुरोंका अधिकार प्राप्त किया। अधिकारमदसे उन्मत्त वे असुर फिर नाना प्रकारके अन्याचार करने लगे। उनके उपद्रवसे सारा विश्व काँप उठा और देवतालोग पीड़ित हो उठे। अन्तमें सर्वोंने मिलकर विष्णुभगवान्की अव्यक्ततामें भगवान् शङ्करका स्तवन किया। शिवजी शीघ्र प्रकट हुए और एक ही वाणमें तीनों पुरोंका विध्वंसकर तीनों राक्षसोंका नाश किया। तबसे इनका नाम 'त्रिपुरारि' पड़ा।

### काशी-मुक्ति—

काशीमें मृत्यु-समय जीवमात्रको श्रीशङ्कर 'राम-नाम' का मन्त्र देते हैं, जिससे उनकी मुक्ति हो जाती है।

### काम-रिपु (भदन-दहन)—

सती-दाहके पश्चात् भगवान् शङ्कर हिमालय-पर्वतके प्रान्तरमें एक विवर्न स्थानमें समाधिमग्न हो गये। उसी समय सतीने पार्वतीके रूपमें हेमाचल नामक पर्वतराजके घर जन्म लिया। उधर तारकासुरके अन्याचार-के मारे समस्त देवताओंके साथ इन्द्रके नाकौंदम आ गया। तारकासुरके वशके विषयमें यह निश्चय था कि यह महादेवके पुत्रके द्वारा मारा जायगा। मरुत्तु भगवान्-शङ्कर समाधिमग्न थे इसलिये उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। क्योंकि तारकासुरका अन्याचार असह्य हो रहा था। अतः उन्होंने कामदेवको महादेवका ध्यान तोड़नेके लिये भेजा।

इधर पार्वती, किशोरावस्थाको प्राप्त हो तथा नारदमुनिके मुखसे यह भविष्यद्वाणी सुनकर कि भूतभावन महादेव ही उसके पति होंगे,



# परिशिष्ट

## पदोंमें आये हुए कथाप्रसंग

### पद-संख्या ३-कालकूट-विप—

देवता और असुरोंने एक बार मेरु-पर्वतकी मयानी और शंपनास्य दण्ड बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उसमें सबसे पहले हलाहल तिल निकला और उसने दशों दिशाओंको अपनी ज्वालासे व्याप्त कर दिया। फिर तो देवता और असुर सभी त्राहि-त्राहि करने लगे। सबोंने निष्काम विचारा कि बिना भक्तवत्सल भगवान् शङ्करके इस महाघातक विषसे पाना कठिन है। इसलिये उन्होंने एक साध आर्त्त-स्वरसे भगवान् शङ्कर पुकारा। भक्त-आर्त्ति-हर करुणामय भगवान् शङ्कर शीघ्र ही प्रकट और उनको भयभीत देखकर हलाहल विषको उठाकर पान कर गये। शीघ्र ही उन्हें स्मरण हुआ कि हृदयमें तो ईश्वर अपनी अखिल शक्ति विराजमान हैं, इसलिये उन्होंने उस विषको कण्ठसे नीचे नहीं उतारा। उस विषके प्रभावसे उनका कण्ठ नीला हो गया और भगवान्का भूषण बन गया तभीसे शिव 'नीलकण्ठ' कह

### त्रिपुर-वध—

तारक नामका एक असुर था।

विद्युन्माली और



## विनय-पत्रिका

### १७-भगीरथ-नन्दिनी—

सूर्यवंशमें सगर नामके महा ऐश्वर्यशाली राजा हो गये हैं, उन्होंने समुद्रको खनवाया था जिससे उसका नाम सागर पड़ा है। महासागरकी दो रानियाँ थीं। एकसे अंशुमान् पैदा हुए और दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज सगरके प्रतापसे देवराज इन्द्र बहुत ही भयभीत रहता था और उनसे ईर्ष्या किया करता था। महाराज सगरके अपने यज्ञके स्वच्छन्द विचरनेवाले घोड़ेको उसने चुराकर योगेश्वर कपिल-मुनिके आश्रमपर बाँध दिया। उसे खोजनेके लिये सगरके साठ हजार पुत्र निकले और मुनिके आश्रमपर घोड़ेको बाँधा देख उन्हें क्रुवाभ्य कहा। इसमें क्रोधित हो मुनिने योगबलसे उन्हें भस्म कर दिया। महाराज अंशुमान्के पुत्र भगीरथ हुए, उन्होंने महातप करके पतितपावनी श्रीगङ्गाजीको भूतलसे लाकर उन लोगोंका उद्धार किया। इसीसे श्रीगङ्गाजीको 'भगीरथी' या 'भगीरथ-नन्दिनी' आदि नामोंसे पुकारते हैं।

### १७-जह्नु-चालिका—

जब महाराज भगीरथ गङ्गाजीको अपने रथके पीछे-पीछे भूशोकमें ला रहे थे, तब समय गङ्गाका प्रवाह जह्नु मुनिके आश्रममें होकर निकला। मुनि प्यानावस्थित थे, प्रवाहको आते देख उन्होंने उसे उठाकर पी लिया। पीछे महाराज भगीरथने उनको स्तुतिकर उनको प्रसन्न किया। तब मुनिने जगत्के हितार्थ गङ्गाजीको अपने अंशुसे निकाल दिया। तभीसे गङ्गाजीका नाम जह्नु-मुनी, 'जाह्नवी' पड़ा।

### १८-त्रिपुरागिरिधामिनी—

महाराज भगीरथने ब्रह्मलोकमें गङ्गाजीको प्राप्त कर लिया, तब

यह कठिनार्द्र सामने आधी कि यदि गङ्गाकी धारा वहाँसे सीधे भूलोकपर गिरेगी तो उससे भूलोक जलमग्न हो जायगा। इसलिये उन्होंने भव-भय-हारी भगवान् शङ्करकी स्तुति की और शङ्करजीने ब्रह्मलोकसे अवतरित होती हुई गङ्गाकी धाराको अपने जटाजालमें रोक लिया। इसीसे श्रीगङ्गाजीको विपुरारि ( शिव ) के मस्तकमें निवास करनेवाली कहा जाता है।

### २२-करनघट—

काशीमें एक ब्राह्मण शिवका बड़ा ही अनन्य भक्त था। वह शिवके सिवा और किसी देवताका नाम भी नहीं सुनना चाहता था। इसलिये उसने अपने दोनों कानोंमें दो घण्टे लटका रखे थे जिससे किसी दूसरे देवताका नाम कानोंमें न आने पावे। कोई मनुष्य यदि उसके सामने किसी अन्य देवताका नाम लेता तो वह घण्टा बजाते हुए दूर भाग जाता। इसी कारण उसका नाम 'करनघट' पड़ गया था। वह जिस स्थानपर रहता था वह स्थान आज भी कर्णघण्टाके नामसे पुकारा जाता है।

### २४-विधिहरिहर-जनमे—

चित्रकूटमें महर्षि अत्रि और उनकी परम साध्वी पतिव्रता स्त्री अनमूया रहती थी। दोनों पुरुष-स्त्रीने पुत्रकी कामनासे अति कठोर तप किया। और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों नाथोंसे पुकार-पुकारकर भगवान्की स्तुति की, तब भगवान् तीनों रूपमें प्रकट हो गये और धर माँगनेके लिये कहा। अनमूयाने यह धर माँगा कि: मेरे गर्भसे तुम्हारे समान पुत्र हों। त्रिदेव 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। पाँछे ब्रह्माने चन्द्रमाके रूपमें, विष्णुने दत्तात्रेयके रूपमें और शिवने दुर्वासाके रूपमें जन्म लिया।

## विनय-पत्रिका

### २५-उदित चंड-कर-मंडल-ग्रासकर्त्ता—

बाल्मीकि-रामायणमें कथा आती है कि एक दिन प्रातः अमावस्याके दिन हनूमान्जीको बहुत भूख लगी थी। उन्होंने उगने लाल रंगके बाल-सूर्यको देखा और फल समझकर उनके ऊपर वे लपके, एक ही झटकेमें पकड़कर निगल गये। दैवात् उस दिन ग्रहण भी वेचारा राहु जब सूर्यको ग्रहण करनेके लिये आया तो देखा चारों अन्धकार है और सूर्यका कहीं पता नहीं। इससे निराश होकर इन्द्रके पास पहुँचा और गिड़गिड़ाने लगा कि आज मैं क्या खाऊँ सूर्यको तो किसी दूसरेने खा डाला। यह सुनकर इन्द्र राहुको साप लि दौड़े। हनूमान्जीने जब उन दोनोंको आते देखा तो वे उनको भी खा लिये लपके। इसपर इन्द्रने उनकी ठुठ्ठीपर ऐसा वज्र मारा कि हनूम मूर्च्छित हो गये और वज्र भी टूट गया। तभीसे महावीरजीका हनूम नाम पड़ा।

### रुद्र-अवतार—

एक बार शिवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति की और यह वर माँगे कि 'हे प्रभो! मैं दास्यभावसे आपकी सेवा करना चाहता हूँ। इसलिये इन्द्र मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये।' श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा। वही शिवजी श्रीरामायतारमें हनूमान्के रूपमें अवतीर्ण होकर श्रीरामचन्द्रजीके सेवकोंमें प्रमुख पदको प्राप्त हुए।

### सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुण—

श्रीहनूमान्जीने सूर्यनारायणसे शक्रास्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी थी।

सिती दक्षिणाके स्थानमें श्रीमूर्यनारायणने हनूमान्जीसे कहा था कि देखो, हमारे पुत्र सुग्रीवकी तुम सदा रक्षा करना ।' हनूमान्जीने आजन्म सुग्रीवकी रक्षा की ।

### बालि बलमालि बध मुख्य हेतु—

सीता-हरणके बाद जब भगवान् श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण सीताको ढूँढते-ढूँढते ऋष्यमूक-पर्वतके समीप पहुँचे तो पहले हनूमान्जीने ही उनसे मेट की तथा उनको ले जाकर सुग्रीवसे मिलाया और उनमें पारस्परिक मैत्री आपन की । यही मैत्री बालिवधका कारण हुई । इसीसे बालिके वधमें मुख्य हेतु श्रीहनूमान्जी माने जाते हैं ।

### सिंहिका-मद-मथन—

सिंहिका नामकी एक राक्षसी समुद्रमें रहती थी । उस मार्गसे जो शीव आकाशमें जाते थे, उनकी परछाईं जलमें देखकर वह उनको पकड़ती थी और खा जाती थी । जब हनूमान्जी सीताजीकी खोजमें आकाश-मार्गमें लट्का जाने लगे तो उस राक्षसीने उनके साथ भी वही व्यवहार करना चाहा । परन्तु हनूमान्जी उसकी चालको समझ गये और उसको एक ही मुष्टि-प्रहारके द्वारा परलोक भेज दिया ।

### दमकंठ-घटकरन, वारिद-नाद-फदन-कारन—

राम-रावण-युद्धके समय जब रावण युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये अजेय बलका अनुष्ठान करने लगा तो इसकी मूचना विभीषणने श्रीरामकी सेनामें दी और कहा कि यदि रावण इस अनुष्ठानमें सफल हो गया तो

## पिनप-पत्रिका

उसको मारना फिर अत्यन्त कठिन हो जाया। इसलिये उसके विषयसं करना चाहिये। श्रीहनुमान्जीने इस कार्यका मार बन लिया और वे धानरौंकी एक सेना लेकर वहाँ पहुँच गये तथा उस विषयसं कर दिया। इसके पश्चात् रावण युद्ध-भूमिमें लड़नेके लिये और मारा गया। इस प्रकार श्रीहनुमान्जी उसकी मृत्युके कारण कुम्भकर्णको रणमें बरहृत करनेमें भी श्रीहनुमान्जी ही कारण थे।

मेघनादने जब लक्ष्मणजीको शक्तिबाण मारा था तो वे मूर्च्छित हो उनकी मूर्च्छाको दूर करनेके लिये हनुमान्जी ही धौलागिरिके साप सज्ज बूटी लाये थे। और उस बूटीके द्वारा मूर्च्छासे उठनेपर दूसरे ही दिन लक्ष्मण मेघनादको मारा था, इसी कारण श्रीहनुमान्जी मेघनादके बचके माने जाते हैं।

### कालनेमि-हन्ता-

यह रावणके पशुका महाघूर्त राक्षस था। जब हनुमान्जी लक्ष्मणजी मूर्च्छा हटानेके लिये सञ्जीवनी-बूटी लाने गये थे तो रास्तेमें इसने साधुका धारणकर उनको छलना चाहा। हनुमान्जीको उसकी माया मान्दम गयी और तुरन्त ही उन्होंने उसको परलोक भेज दिया। इसीसे हनुमान्जी कालनेमि-हन्ता कहलाते हैं।

### २८-भीमार्जुन-ज्यालसूदन-गर्वहर-

महाभारतमें कथा आती है कि पाण्डवोंके वनवासकालमें एक दिन भीम अपने पराक्रमके मदमें मस्त हुए कहीं जा रहे थे। उनके मार्गमें एक बड़ा भारी वन्दर सोया हुआ मिला। भीमके गर्जनसे उसको आँखें खुल

गयीं। भीमने उसे मार्गसे हट जानेके लिये कहा। बन्दरने उत्तर दिया—  
 'भारत! मैं बूढ़ा हो गया हूँ। तुम्हीं जरा मेरी पूँछको हटाकर चले जाओ।' भीमके सारी शक्ति छगानेपर भी वह पूँछ टस-से-मस नहीं हुई। पीछे जब उन्हें यह माद्दम हुआ कि यह कोई सामान्य बन्दर नहीं है, बल्कि यह महापराक्रमशाली हनूमान्जी हैं तो उन्होंने नतशिर हो उन्हें प्रणाम किया। इस विषयकी एक दूसरी कथा और आती है कि एक बार भीमने हनूमान्जीसे निवेदन किया कि आप मुझे उस रूपका दर्शन दें जिस रूपसे आपने राम-रावण-युद्धमें भाग लिया था। हनूमान्जीने कहा कि मेरा वह रूप अत्यन्त ही विकराल है, उसे देखकर तुम डर जाओगे। परन्तु जब गर्वके साथ भीमने बहुत आप्रह किया तो हनूमान्जी तन्काल ही उस रूपमें प्रकट हो गये। भीमकी आँखें भयके मारे बन्द हो गयीं और वे धर-धर काँपने लगे। हनूमान्जीकी महिमा देखकर उनका गर्व दूर हो गया और वे उनके चरणोंमें गिर पड़े।

महाभारतके युद्धमें अर्जुनके रथकी ध्वजापर हनूमान्जी बैठे रहने थे। परन्तु यह बात अर्जुनको माद्दम न थी। जब अर्जुन और कर्णका सामना हुआ तो अर्जुनके बाणसे कर्णका रथ बहुत दूर चला जाता था परन्तु कर्णके बाणसे अर्जुनका रथ बहुत ही थोड़ा हटता था। तथापि भगवान् अर्जुनके बाणकी प्रशंसा नहीं करते और कर्णके बाणकी प्रशंसा करते थे। इससे अर्जुनके दिलमें यह गर्व होता था कि भगवान् ऐसा क्यों कहते हैं। अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण यह सब जानते थे। एक बार उन्होंने हनूमान्जीसे रथकी ध्वजासे अलग हो जानेका इशारा किया। उनके हटते ही जैसे कर्णका बाण छूटा, अर्जुनका रथ कोसों दूर जा गिरा।



इससे अर्जुनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने भगवान्से इस कारण पूछा । भगवान्ने बतलाया कि 'हनूमान्के पराक्रमसे ही तुम्हारा रथ स्थिर रहता है, वे रथकी प्बजापरसे हट गये हैं । यदि मैं भी यहाँ रहता तो न जाने तुम्हारा रथ कहाँ चला जाता ।' भगवान्की इस बातसे अर्जुनका गर्व दूर हो गया ।

गरुड़जीको अपने तेज चलनेपर बड़ा ही गर्व था । एक बार भगवान् श्रीकृष्णने श्रीहनूमान्जीको बहुत शीघ्र बुला खानेके लिये गरुड़को भेजा । गरुड़जी वहाँ गये और उन्होंने हनूमान्जीको साथ चलनेके लिये कहा । हनूमान्जी बोले, आप चलिये, मैं अभी आता हूँ, गरुड़ने सपना देरसे आवेंगे, इसलिये कहा, साथ ही चलिये, हनूमान्जी बोले, मैं राम-कृपासे आपसे आगे पहुँच जाऊँगा । इसपर गरुड़को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे खूब तेजीसे चले । भगवान्के सामने पहुँचनेपर वे क्या देखते हैं कि हनूमान्जी पहलेहीसे वहाँ विराजमान हैं । यह देखकर गरुड़जीका गर्व जाता रहा ।

### सम्पाति—

सम्पाति गीधराज जटायुके छोटे भाई थे । एक दिन दोनों भाई होड़ा-होड़ा सूर्यको छूनेके लिये आकाशमें उड़े । जटायु तो बुद्धिमान् थे, वे सूर्यके उत्तापके भयसे सूर्यमण्डलके समीप न जाकर लौट आये, परन्तु सम्पातिको अपने पराक्रमका घमण्ड था, वे आगे बढ़ने ही गये और सूर्यके समीप पहुँचने ही उत्तम किरणोंसे उनके पंख झुलम गये और वे मान्यमान्-गर्वपर घबराकर आ गिरे । फिर जब सुग्रीवकी आज्ञासे राम-जीकी स्वाममें धानर और रीछ निकले और उस पर्वतपर पहुँचे तो

सम्पानिने ही उन्हें सीताजीका पता बताया । हनुमान्जीकी कृपासे सम्पानिके पक्ष जम गये और उनके नेत्रोंमें ज्योति आ गयी तथा उन्हें दिव्य शरीर प्राप्त हो गया ।

### २९-महानाटक-निपुण

श्रीहनुमान्जी बड़े भारी विद्वान् और गायनाचार्य थे, मूर्धमगवान्से उन्होंने सब विचार पदो पौ । कहा जाता है कि श्रीहनुमान्जीने एक महानाटक लिखकर श्रीराम-चरित्रका विस्तृत वर्णन किया था । परन्तु उससे सुननेका कोई अधिकारी न पाकर उसे उन्होंने समुद्रमें फेंक दिया । उसीके धन-तत्र बिल्वे कुछ अंशोंको दामोदर मिश्रने सङ्कलन करके वर्तमान 'हनुमनाटक'की रचना की है ।

### ३०-संजीवनी-ममय-

जब हनुमान्जी हिमालय-पर्वतसे सञ्जीवनी-वृटी लेकर आकाश-मार्गसे अत्यन्त तीव्र गतिसे लींटे आ रहे थे उस समय भारतने उन्हें देखकर समझा कि कोई मायावी शस्त्र जा रहा है । इसलिये उन्होंने एक बाण धरुपा जो हनुमान्जीको लगा और बह हा राम ! हा राम ! कहने हुए बर्ननेपर गिर पड़े । 'गम' शब्द सुनकर भरतपों बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने दौड़कर हनुमान्जीको उठा हृदयमें लगा लिया । इसी समय उनकी बाण चलनेकी महिमा जाननेमें आयी ।

### ४०-नयपागुर-

एतद्गुर म्पुराका अनाधारी प्रतापी अगुर राजा था । इनके अन्धकारोंमें श्री, ब्रह्मण और मन्मथीजन शक्ति-शक्ति पारने लगे । जब

महाराजा श्रीरामचन्द्रजीके यहाँ उनकी फरियाद आयी तो शत्रुने महाराजसे लवणासुरको दण्ड देनेके लिये स्वयं जानेकी आज्ञा माँगी । और आज्ञा प्राप्त होनेपर मथुरा जाकर उन्होंने अपने प्रबल पराक्रमसे लवणासुरका नाशकर प्रजाको सुखी किया ।

### ४३-रिपि-मख-पाल-

विश्वामित्र-मुनिके आश्रमके समीप राक्षसोंने बहुत उत्पात मचा रक्खा था । वे तपस्यामें अनेकों प्रकारसे विघ्न डालते थे । उनके उपद्रव व्याकुल होकर विश्वामित्र-मुनि अयोध्यामें महाराज दशरथके दरबारमें आ और महाराजसे अपने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीराम-लक्ष्मणको माँगा । महाराज अपने प्राणप्रिय पुत्रोंको पहले तो अलग करना नहीं चाहते थे परन्तु महामुनि महर्षि वशिष्ठकी अनुमतिसे उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणके विश्वामित्र-मुनिके सुपुर्द किया । श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको साथ लेकर मुनिके यज्ञकी रक्षा की और ताड़का, सुबाहु प्रभृति राक्षसोंको, जो यज्ञ-ध्वंस किया करते थे, मार डाला ।

### मुनिवधू-पापहारी-

गौतम-ऋषिकी पत्नी अहल्या परम रूपवती थी । उसके सौन्दर्यको देखकर इन्द्रका मन मोहित हो गया और एक दिन सायंकाल जब गौतम-ऋषि सन्ध्या-वन्दनके निमित्त बाहर गये थे उसी समय इन्द्र गौतमका रूप धारणकर अहल्याके पास गया और उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की । कुसमय समझकर पहले तो उसने अस्वीकार किया पर पीछे पति-आज्ञा समझकर उसने स्वीकार कर लिया । इतनेहीमें गौतम-ऋषि आ गये । उन्होंने

। गदधिसे सारा रहस्य जान लिया और क्रोधित होकर इन्द्रको शाप दिया कि 'जा तेरे सहस्र भग हो जायें ।' तथा अहल्याको शाप दिया कि 'तुम्हारी हो जा ।' पीछे जब उनका क्रोध शान्त हुआ तो उन्होंने नेत्रोंके शापका इस प्रकार प्रतिकार बतलाया कि श्रीरामचन्द्रजीके चरण-रससे अहल्याका उद्धार होगा और जब श्रीरामचन्द्रजी शिवके धनुषको देंगे, उस समय इन्द्रके सहस्र भग सहस्र नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायेंगे ।

### काक-करवृत्ति-फलदानि-

एक दिन चित्रकूटमें सीताजीके अपूर्व सौन्दर्यपर इन्द्रका पुत्र जयन्त विहित हो गया । और कौएका रूप धारणकर सीताजीके पैरोंमें चोंच मारकर भागा । श्रीरामचन्द्रजीने पैरोंसे रक्त प्रवाहित होने देख सींकके बाणसे उसे मारा । जयन्त भागने लगा और बाण उसके पीछे लगा । वह सम्पूर्ण ब्राह्मणमें भागता फिरा परन्तु कहीं भी उसे शरण नहीं मिली । लाचार होकर वह श्रीरामचन्द्रजीके शरणमें आ गिरा । भगवान्ने उसके प्राण तो ही लिये पर उसको एक आँख छे ली ।

### ४९-कालिय-

यमुनाजीमें एक बड़ा ही भयङ्कर सर्प रहता था । उसका नाम कालिय । । उसके बिपके मारे वहाँका जल सदा खौलता रहना था । श्रीकृष्ण-भगवान्ने उसको नाचकर अपने वशमें कर लिया । पीछे वह यमुनाजीको गेहकर समुद्रमें चला गया । यह कथा श्रीमद्भागवतमें मिलनी है ।

### अंधक-

अंधक बड़ा उपद्रवी और बलवान् दैत्य था । यह हिरण्याशुका पुत्र था । मत्स्यजीकी आराधना करके इसने यह वरदान प्राप्त किया था कि

## विनय-पत्रिका

‘जब मुझे शानकी प्राप्ति हो जाय तब ही मेरा शरीरान्त हो, सदा जाता रहूँ।’ यह वरदान प्राप्तकर उसने त्रिलोकीको उससे उसके भयसे देवना मन्दराचल-पर्वतपर चले गये। यह वहाँ भी उनको त्रसित करने लगा। इसपर देवना त्राहि-त्राहि करने आर्नक्षरसे उन्होंने महादेवजीको पुकारा। महादेवजीके साथ अन्तर्बद्धा भयङ्कर युद्ध हुआ, अन्तमें महादेवजीने उसे एक त्रिगुल मारा। यह असुर वही बैठकर महादेवजीके ध्यानमें मग्न हो गया। महादेवजीने कहा कि ‘वर माँग।’ उसने यह वर माँगा कि ‘हे प्रभो! मुझे आपसी अन्तर्बद्धा प्राप्त हो।’ यह कथा ‘शिवपुराण’में है।

### दृष्ट-मत्स्य-

दृष्ट प्रजापतिकी एक कन्याका नाम सती था, उमरा विवाह के साथ हुआ था। एक बार महापती सभामें सब देवना विवाहमें वहाँ दृष्ट प्रजापति पहुँचे। उनकी अर्घ्यपनाके दिव्य प्रसादके साथ देवना उठ खड़े हुए, परन्तु शिवजी धीरे ही रह गये। इससे दृष्ट प्रजापती बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने इनका बध्ना लेनेके उद्देश्यसे एक किया। उमरा यज्ञमें शिवजीके अनिर्गिक साथ देवना युगपत् गये। जब गन्तव्य सतीकी मित्रा तो बध्ना शिवजीकी अनुमतिके बिना ही शिवजीके घर खड़ी गयी और वहाँ पहुँचकर जब वध्ना शिवजीके उमने न देगा तो क्रोधके साथ वेगान्तिमें जलकर मग्न हो गयी। गन्तव्य सुनकर शिवजीने श्रीमन्मन्की यज्ञ-विश्वंश करनेके दिव्य देवना बध्ना जलकर यज्ञ-विश्वंश किया।

## ५४-वेदगर्भ-कर्त्ता-

ब्रह्माजीके पुत्र सनकादिने एक बार अपने पितासे पराविद्यासम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे । जब ब्रह्माजी उन प्रश्नोंका यथेष्ट उत्तर न दे सके तो उन्हें अपने ज्ञानपर बड़ा गर्व हुआ । ब्रह्माजीने उनके हृदयकी बात जानकर श्रीविष्णुभगवान्का स्मरण किया और विष्णुभगवान् वहाँ शीघ्र ही हंसके रूपमें प्रकट हो गये । फिर सनकादिने उस हंससे पूछा कि 'तू कौन है ?' इसी प्रश्नपर हंसभगवान्ने सारा पराविद्याका साराश कह दिया । उसे सुनकर सनकादिका अभिमान जाता रहा । निम्बार्क-सम्प्रदायवाले इसी हंसभगवान्को अपने सम्प्रदायका आदि आचार्य मानते हैं ।

## ५६-भूमि-उद्धारन-

सत्ययुगमें हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो महाप्रतापी असुर हो गये हैं । यह दोनों भाई थे । हिरण्याक्ष भूमिको चुगकर पातालमें ले गया । भगवान्ने शूकर-रूप धारणकर हिरण्याक्षको मारा और भूमिका उद्धार किया । इससे भगवान् भूमिके उद्धारक माने जाते हैं । इसके सिवा जब-जब इस पृथ्वीपर पापियोंका अत्याचार बढ़ता है और पृथ्वी घबडा उठती है तब-तब भगवान् अवतार लेकर पापियोंका नाशकर भूमिका उद्धार करते हैं ।

## भूधरनधारी-

यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि जब भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे ब्रज-वासियोंने इन्द्रको पूजा रोक दी तो इन्द्र व्याकुल होकर प्रलयमैघको लेकर



देवकीके स्रावणसे भगवान्ने उसे अभय कर दिया । तत्पश्चात् अनिरुद्ध और उषाका विवाह हुआ । यह कथा भी श्रीमद्भागवतमें आती है ।

**मय-**

मय नामका दानव बड़ा ही कला-कुशल था । इसके कलाकी प्रशंसा महाभारत, रामायण आदि धर्म-ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र मिलती है । खर्णपुरी लंका-का निर्माण इसीने किया था । महाभारतमें इन्द्रप्रस्थके अपूर्व नगरका निर्माण भी यही मय दानव था । यह भगवद्भक्त था ।

**द्विजबन्धु-**

द्विजबन्धुका अभिप्राय अंजामिलसे है । यह बड़ा ही दुराचारी और हापातशी माहाण था । इसके छोटे लड़केका नाम नारायण था । जब रते समय यमदूत इसे मुद्के बाँधने लगे तो यह भयभीत होकर आर्तस्वरसे 'नारायण-नारायण' पुकारने लगा । इस पुकारसे उसका पुत्र तो नहीं आया, र भगवान् नारायणके दूत वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने दृष्टपूर्वक यमदूतोंसे कहकर उसका पिण्ड छुड़ाया कि 'यह परम वैष्णव है, इसने बड़े ही आर्तस्वरसे भगवान्का नामोच्चारण किया है ।'

**१०-मार्कण्डेय \* प्रलयकारी-**

मार्कण्डेय-ऋषि वचनसे ही बड़े धीर्यवान् और तपोनिष्ठ थे । उनका उम्र तपस्याको देखकर इन्द्र भी भयभीत हो गये थे और उसमें विप्र उपस्थित करनेके विचारने कामदेवकी अपनी सारी सेनाके साथ भेजा था । परन्तु कामदेय कोटि कला करके भी अपने प्रयत्नमें सफल नहीं हुए । इसके बाद भगवान् नर-नारायणरूपसे उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उनमें घर



## पितृ-परिचा

मार्गनेके विषय कथा । मार्कण्डेय-मुनिने भगवान्को माया देमनेक प्रकृत की । पर-नरूप उन्हें माया प्रसागड जन्म होने हुए दि दिया ।

## ७८-विष्णु-

एक बार कुबेरके पुत्र नलकृचर और मणिभीरुने प्रमादवश नारद देवकी उद्घापी । इमार नारदजीने उन्हें शाप दिया कि 'तुम लोग जदबुद्धि हो, जाओ वृक्ष हो जाओ ।' पछे जब उन लोगोंने प्र मायी तब दयालु नारद मुनिने शापोद्धारनिमित्त कह दिया कि 'जब भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होगा तों उनके चरणोंके स्पर्से तु उद्धार हो जायगा ।' यह दोनों भाई नारदके शापसे मोकुलमें अडुने बन गये । एक दिन यशोदाजीने किसी अपराधके कारण वाउक श्रीकृष्ण उखलसे बाँध दिया । भगवान् रेंगने हुए, उड़े हुए वृक्षोंके पास जा और वृक्षोंकी, बाँचमें ऊपलकी अड़ाकर ऐसा झटका दिया कि तुरन्त व वृक्ष गिर पड़े और वृक्षरूप त्यागकर दिव्य यज्ञरूपसे भगवान्को करने लगे । भगवान्ने उन्हें मुक्ति प्रदान कर दी ।

## ८३-तरयो भयंद जाके एक नाँय-

एक बार एक तालाबमें एक बड़ा भारी मतवाला हाथी हथिनिये साप जल-बिहार कर रहा था । इतनेमें एक ग्राहने आकर उसका लिया । हाथीने अपने पैरको छुड़ानेके लिये सारी शक्ति लगा दी न छोड़ा, न छोड़ा । वह उसे गहरे जलमें खींचने लगा । निराश हो गया तो उसने आर्तभावसे भगवान्को पुकारा

उके मुँहसे 'हरि' नाम निकलना था कि भक्त-भय-हारी प्रभु अपने वाहन रथको छोड़कर शीघ्र वहाँ उपस्थित हो गये और उन्होंने प्राहको मारकर उस हाथीके दुःखको दूर किया। श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धमें यह कथा 'वेन्द्रमोक्ष' नामसे विस्तारपूर्वक लिखी गयी है।

### ६-सुरुचि-

राजा उन्नानपादकी दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। राजा रूचियों ही अधिक मानते थे। दोनों रानियोंके दो पुत्र थे। एक दिन नीतिका पुत्र ध्रुव सुरुचिके लड़केके सामने राजाकी गोदमें जा बैठा। रूचिसे यह देखा न गया। यह दीड़ी आयी और उसको डॉट-पटकार गाने, राजाकी गोदसे उतार दिया। यह रोता हुआ अपनी माँके पास ग। उसरी माँने दीनबन्धु अशरणशरण भगवान्के गुणोंका वर्णनकर उनके मनको भगवान्की ओर लगा दिया। पाँछे बालक ध्रुवने बान्धव-जीवन-ही पौर तपस्याकर प्रभुको प्रसन्नकर राज्य और परमपद प्राप्त किया।

### ७-रिपु राहु-

जब समुद्र-मन्थनके समय समुद्रसे अमृत निकला तो दैत्य और देवता उसके लिये आपसमें लड़ने लगे। विष्णुभगवान्ने मोहिनी-रूप धारणकर अमृतके घड़ेको अपने हाथमें ले लिया। दैत्य उनके रूपपर मोहित हो गये, उन्हें अमृतका प्यान ही नहीं रहा। एक ओर देवता और दूसरी ओर दैत्य बैठ गये। अमृतका घँटा जाना देवताओंकी चंकिने प्रारम्भ हुआ। राहु नामका दैत्य विष्णुभगवान्की इस लड़ाकी समझ गया। वह देर बर्लकर गूर्प-चन्द्रमाके पीछे देवताओंमें आकर बैठ गया।

मांदिनीने उमे भी अमृत पित्रा दिया, वह अनर हो गया । परन्तु मूर्ध और चन्द्रमाके संकेतमें भगवान्‌की जब यह मादम हुआ तो उन्होंने अपने चक्र से राहुके सिरको धड़मे अग्न कर दिया । फिर सिर राहु हां गया और धड़ फेंतु । उसी पुराने घैरमे राहु प्रहजके द्वारा चन्द्र और सूर्यको कट देना है ।

### ९३-मृगराज-मनुज-

प्रहादकी कथा प्रसिद्ध ही है । हिरण्यकशिपु नानका एक महा-प्रतापी दैत्य हो गया है । उसने घोर तप करके ब्रह्मासे यह वरदान माँगा था कि मैं न नरसे मरूँ न पशुसे, न दिनमें मरूँ न रातमें, न अन्नसे मरूँ न शस्त्रसे, न घरमें मरूँ न बाहर । यह वर प्राप्तकर वह अत्यन्त निरङ्कुश होकर राज्य करने लगा । उसके अत्याचारसे त्रिलोककी काँप उठी । कोई भी मनुष्य जप-यज्ञ, पूजा-पाठ उसके राज्यमें नहीं करने पाता था और जो कोई भगवद्भजन करता उसे वह तरह-तरहकी यन्त्रणा देता । उसका पुत्र प्रहाद बड़ा ही भगवद्भक्त था । उसने पिताके कितना ही कहने-पर भी, अपनी टेकको नहीं छोड़ा । इसके लिये उसे भौंति-भौतिकी पीड़ा पहुँचानेका प्रयत्न किया गया । परन्तु सब निष्फल हुआ । एक दिन राज-सभामें प्रहादको खम्भेमें बाँधकर हिरण्यकशिपु कहने लगा कि 'अपने भगवान्‌को दिखला, नहीं तो आज तू मेरे तलवारकी घाट उतरेगा ।' प्रहादने कहा कि 'भगवान् सर्वत्र है, वह खम्भेमें है, तुममें है, मुझमें है, तुम्हारी तलवारमें और इस खम्भेमें भी है ।' इसपर हिरण्यकशिपुने अत्यन्त क्रोधित होकर उसे मारनेके लिये तलवार उठायी ही थी कि भक्त प्रहादके वचन-

को सय करने और उसे सड़क से छुड़ाने के लिये भगवान् नरसिंह (आधा मनुष्य और आधा सिंह) रूप से खम्भे को फाड़कर निकल आये और हिरण्यकशिपु को दरवाजे पर घसीटकर अपने जह्मे पर रखकर अपने नग्नो से उसके कटेजे-को फाड़कर मार डाला ।

### नर-नारी-

जब दुर्योधन ने जुष्में पाण्डवों का सर्वस्व जीत लिया और अन्तमें द्रौपदी को भी दौंव पर रखकर जब पाण्डव हार गये, तब उसने दृ-शासन के द्वारा द्रौपदी को भरी हुई राजसभामें घुलथाकर नत्ता करनेकी आज्ञा दी । उम सभामें भीष्म, द्रोंग आदि महामहिम योद्धा तथा पाँचों भाई पाण्डव भी बैठे थे, परन्तु दुर्योधनकी इस आज्ञापर किमीके मुँहमें एक भी शब्द न निकला । दृ शासन द्रौपदीके सिरके बंदोंको पकड़कर घसीटना हुआ तब-तब उसके घोंचमें छाया और उसकी साड़ीको पकड़कर घोंचने लगा । द्रौपदीने कटुणापूर्ण नेत्रोंसे सभाकी ओर देखा परन्तु जब कोई भी उमकी उहापनाके लिये आगे बढ़ना न दिग्गयी दिया तो उमने अपनी लाज रक्षानेके लिये आर्त्तस्वरसे कटुणासिन्धु भगवान्को पुकारा । भगवान् दृ-शासन उमकी पुकार सुन ली । ( कुरुगज-बन्धु ) दृ-शासन साड़ीको घोंचने-रखने बक गया परन्तु उमका शोर न लगा । प्रभुकी कृपाके आगे उमकी एक न शली । द्रौपदीकी लाज रह गयी । अर्जुन 'नर' स्वरिके अन्तर माने जाने थे, इससे द्रौपदीको 'नर-नारी' कहा गया है ।

### १४-शानिका-

विशाल नामकी एक बेन्गाली थी । एक दिन जब वह शून्त किये हुए अपने किमी घेमीकी प्रतीक्षामें बैठी और कभी रुकनाक रह न आया

## धिनय-पत्रिका

तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगी कि जितना समय मैं पापपूर्ण प्रतीक्षामें लगाया उतना यदि भगवान्‌के भजनमें लगाती तो उद्धार हो जाता। उसी दिनसे उसने वेद्या-वृत्ति छोड़कर भगवान्‌के मन लगाया और भगवान्‌की कृपासे उसका उद्धार हो गया।

### व्याध—

प्राचीन कालमें रत्नाकर नामका एक व्याधा था। वह ब्राह्मण-उत्पन्न होकर भी व्याधाका काम करता था। वह जङ्गलमें पशुओंका शिकार करनेके सिवा वनके मार्गसे होकर जानेवालोंका सर्वस्व भी छीन लेता। एक दिन, दैववशा, देवर्षि नारद उसी मार्गसे होकर निकले। रत्नाकरने उससे घेर लिया। नारदजीने उससे कहा कि तुम यह घोर कर्म जिनके लिये बन्धन हो, वह तुम्हारे इस पाप-कर्मके भागो न होंगे। रत्नाकर इसपर उदात्त कुटुम्बके लोगोंसे इस विषयमें पूछनेके लिये गया। जब उसके परिवारियोंने साफ-साफ कह दिया कि हम तुम्हारे पापके भागी नहीं हैं तो नारदजीके पास आकर उनके पैरोंमें गिर पड़ा और क्षमा-याचना करने लगे। नारदजीने उससे पूछा कि 'मेरा अब कैसे उद्धार होगा?' नारदजीने उसे 'राम' मन्त्र उपदेश दिया। उसने कहा कि मैं राम-मन्त्र नहीं जप सकता, तब देवर्षि उससे रामका उलटा 'मरा-मरा' जपनेको कहा। इसीके प्रतापसे पीड़े का व्याध 'वाल्मीकि' मुनिके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

९७—मुरपति कुरुराज, चालिसों..... बँर बिसहते—

### मुरपति—

एक बार देवर्षि नारदजी स्वर्गसे पारिजात-पुष्प लाकर रुचिमायी दे दे गये। सत्यमामाको उसके छेनेकी इच्छा हुई। परन्तु सौत बानिके कारण

रुक्मिणीसे यह माँग नहीं सकता थी और रुक्मिणीके पास वैसे पुष्पका होना भी उससे देखा नहीं जाता था। इसलिये उसने पारिजात-पुष्पके लिये मान लिया। यद्यपि उसका यह हठ और मान ईर्ष्यायुक्त होनेके कारण अनुचित था, परन्तु भगवान्ने भक्तिवश उसपर कुछ ध्यान न दिया और स्वर्गमें जाकर वृक्षसे लड़कर पारिजात-वृक्ष ही उखाड़ लाये और सत्यमामाके मन्त्रके जामने बर्गाचेमें उसे लगा दिया।

### कुरुराज-

पाँचों भाई पाण्डवोंका मिलकर द्रौपदीको रख लेना, कौरवोंके साथ [आ] खेलना तथा द्रौपदीको भी दावोंपर रख हार जाना आदि पाण्डवोंके लक्ष्य दोष थे, परन्तु उनकी भक्ति देखकर भगवान् कृष्णने उनको दोषोंपर ध्यान नहीं दिया और उनका पक्ष लेकर कुरुराज दुर्योधनसे बैर बाँध लिया।

### बालि-

यद्यपि सुग्रीवका भी पक्ष बिल्कुल निर्दोष न था तथापि सुग्रीवकी भक्तिके श्रेयसे होकर भगवान्ने इन बातोंका कुछ भी खयाल न करके बालिको मारा और सुग्रीवको राज्य दिलाया।

### १८-जमुमति हठि चाँध्यो-

एक बार यशोदाजी दूध मप रही थीं। उसी समय बालक श्रीकृष्ण मूत्रें हुए उनके पास आये, माता उन्हें गोदमें उठाकर प्रेमसे दूध पिलाने लगी, इतनेमें घुन्हेपर चढ़े हुए पात्रमें दूधका उफान आ गया। यशोदाजी श्रीकृष्णको गोदसे नीचे उतारकर उस दूधके पात्रको उतारने गयी। इससे बालक कृष्ण बहुत रुठ गये और उन्होंने दहीके मटकेको उल्टा दिया और

दूसरे घरमें जाकर ऊखलपर चढ़कर माखन खाने लगे। माताने बाप आकर देखा कि दहीका बर्तन उल्टा पड़ा है और श्रीकृष्णका पता नहीं है। वह क्रोधित हो उठी और श्रीकृष्णको सजा देनेके लिये ढूँढ़ने लगी। जब वह उस घरमें पहुँची जहाँ कृष्ण माखन खा रहे थे तो कृष्ण माताके मारके डरसे ऊखलसे उतरकर भागने लगे। माताने उनको पकड़ लिया और लगी रस्सीसे उन्हें ऊखलमें बाँधने। परन्तु जिस रस्सीसे वह बाँधना चाहती थी वही रस्सी छोटी हो जाती, यों तमाम घरभरकी रस्सी लकड़ जोड़ दी परन्तु तिसपर भी श्रीकृष्ण न बाँध सके। तब थककर उनकी ओर देखकर मुस्कराने लगी। कृपामय भगवान् माताकी कठिनाईको देखकर स्वयं बाँध गये।

### अम्बरीष—

महाराज अम्बरीष परम भक्त थे, एकादशी-व्रतके बड़े ही प्रसिद्ध व्रती थे। एक एकादशीको दुर्वासा-ऋषि उनके घर आये। महाराजने उनको द्वादशीके दिन भोजन करनेका निमन्त्रण दिया। क्योंकि वह द्वादशीको ब्राह्मण-भोजन कराये बिना पारण नहीं करते थे। दुर्वासा-ऋषि स्नान-ध्यान करनेके लिये बाहर गये और उनको वहाँ बहुत देर हो गयी। द्वादशी थोड़ी ही थी, उसके बाद त्रयोदशी हो जाती थी और शाश्वती यह आज्ञा है कि एकादशी-व्रत करके द्वादशीको पारण करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे इस दोषके परिहारके लिये राजाने एक मुलसीका पत्ता ले लिया। इतनेमें दुर्वासा-ऋषि आ गये और बिना आज्ञा लिये हुए राजाके मुलसीदल ले लेनेपर वे आगवबूला हो गये और उन्होंने क्रोधित हो महाराजको शाप दिया कि 'तुझे जो यह घमण्ड है कि मैं इती जन्मने

मुक्त हो जाऊँगा यह मिथ्या है, अभी तुम्हें दस बार और जन्म धारण करने पड़ेंगे।' इतना शाप देनेके बाद उन्होंने एक कृत्या नामक राक्षसीको पैदा किया, जो पैदा होते ही अम्बरीषको खानेके लिये दौड़ी। भक्तकी यह दुर्दशा भगवान्से देखी न गयी, उन्होंने शीघ्र सुदर्शन-चक्रको आज्ञा दी। उसने कृत्याको मारकर दुर्वासा-ऋषिका पीछा किया। दुर्वासाजी तीनों गोकर्णों भागने किये पर किसीने उन्हें आश्रय नहीं दिया। अन्तमें वे भगवान् श्रेष्ठके पास गये और उनकी आज्ञासे छोटकर महाराज अम्बरीषके चरणों-पर आ गिरे। राजाने चक्रको स्तवन करके शान्त किया। इसके बाद श्रेष्ठभगवान्ने प्रकट होकर दुर्वासा-ऋषिसे कहा कि आपने हमारे भक्तको जो शाप दिया है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। उनके बदलेमें मैं दस बार और धारण करूँगा।

### उग्रसेन-

कंसके बापका नाम उग्रसेन था। कंस अपने बापको कौद करके आप राजगद्दीपर बैठा था। उसके अत्याचारोंसे प्रजा त्राहि-त्राहि करती थी। भगवान् कृष्णने कंसको मारकर उग्रसेनको गद्दीपर बैठाया और आप स्वयं उनके द्वारपाल बने।

### ९९-सुदामा-

सुदामाकी कथा प्रसिद्ध ही है। यह श्रीकृष्णजीके सहपाठी मित्र थे। विद्याभ्ययनके अनन्तर यह अत्यन्त दरिद्र हो गये। अपनी खीके कहने-सुननेपर यह भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारका गये। यह इतने दरिद्र थे कि अपने मित्रसे मिलनेके लिये चार मुट्टी चावल भेंट ले गये थे।



## विनय-पत्रिका

भगवान्ने इनका बड़ा ही सम्मान किया और चार मुट्टी चावलके उन्हें पूर्ण समृद्धिशाली बना दिया ।

### १०६-केवट-

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ बन समय गंगाके किनारे पहुँचे और पार जानेके लिये केवटसे नाव माँ उसने प्रेमसे गद्गद होकर कहा—‘हे स्वामिन् ! मैं आपके मरमको ज हूँ । आपके चरणोंको छू करके पत्थर सुन्दर स्त्रीके रूपमें परिणत हो मेरी नाव तो काठकी है, कहीं यह भी मुनिकी स्त्री बन जायगी तो जीविका ही जाती रहेगी । इसलिये यदि आप पार जाना चाहते हैं पहले अपना पैर धोने दीजिये । निपादकी भक्ति अपूर्व थी । उ भक्तिके ही कारण भगवान्ने उससे अपने चरण धुलाकर कृतार्थ किया

### शवरी-

यह जातिकी भौलनी थी । मतङ्ग-श्रष्टिकी सेवा करते-करते भगवद्भक्तिकी प्राप्ति हो गयी थी । सीताहरणके पश्चात् जब लक्ष्मण साथ भगवान् सीताकी खोजमें बनमें भटक रहे थे तो रास्तेमें भौलनी आश्रम मिला । उसने भगवान्का बड़ा सत्कार किया तथा प्रेममें बे होकर भगवान्को पहलेसे चख-चखकर देखे हुए पेड़ोंके सुन्दर बेर और भक्तवत्सल भगवान्ने उन्हें सराह-सराहकर खाय़ा । यह क प्रसिद्ध ही है ।

### गोपिका-

गोपियोंकी प्रेमाभक्ति प्रसिद्ध है । भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमके वरामु हो गोपियोंके साथ रास किया था ।

### विदुर-

विदुर दासी-पुत्र थे। परन्तु श्रीकृष्णभगवान्‌में इनकी अपूर्व भक्ति की वजह से ही वे भी दासी का दर्जा प्राप्त कर चुके थे। इसी कारण भगवान्‌ जब हस्तिनापुर गये तो दुर्योधनके घर न जाकर उनके आतिथ्यको ही उन्होंने स्वीकार किया। जब भगवान्‌ विदुरके पास पहुँचे उस समय विदुर घरपर नहीं थे। उनकी पत्नीने भगवान्‌का आतिथ्य रखा। वह कंठे लेकर भगवान्‌को खिलाने बैठी परन्तु प्रेममें विदुरके प्रवेश की वजह से वह कंठे छीलकर नीचे गिराती गयी और छिलके भगवान्‌के आतिथ्यके लिए प्रयुक्त हुए। प्रेमके भिखारी भक्तद्विपहारी प्रभु उन्हीं छिलकोंको भोग लगाने के लिए भगवान्‌ने विदुरके कुल-शीलका विचार न कर उनकी भक्तिको ही अपना धर्म माना। विदुरके साथ भगवान्‌का सख्यप्रेम था।

### कुबरी-

यह कंसकी दासी थी। जब श्रीकृष्णभगवान्‌ मथुरामें कंसके दरबार-में आये तो वह रास्तेमें कंसके लिये चन्दनका अवलेप लिये जा रही थी। भगवान्‌ श्रीकृष्णकी यह परम भक्त थी। भगवान्‌ने उसके प्रेमके कारण उसके उस चन्दनके अवलेपको अपने शरीरमें लगाया और उसके प्रेमके कारण उसे दूर कर दिया। कंसको मारकर लौटनेपर भगवान्‌ने इसके आतिथ्यको स्वीकार किया था।

### २८-रक्तबीज-

यह एक महाप्रतापी दैत्य था। इसने घोर तपस्या करके श्रीशिवजीसे अमृत वरदान प्राप्त किया था कि 'मेरे शरीरसे जो एक बूँद रक्त गिरे तो उससे सहस्रों रक्तबीज पैदा हों।' इस वरको प्राप्त कर इसने त्रिलोकीको

भयसे कम्पित कर दिया था। सब देवताओंने अन्तमें मिलकर भक्तों महाकालीकी स्तुति की। महाकाली प्रकट होकर रक्तबीजसे युद्ध करने लगी। परन्तु जब उसके एक बूँदसे सहस्रों रक्तबीज पैदा होने लगे तो महाकालीने अपनी जीभ इतनी लम्बी बढ़ायी कि जितना रक्त उन रक्तबीज दैत्योंके वदनसे गिरता उसे ऊपर ही चाट जाती। इस प्रकार रक्तबीजका संहार उन्होंने किया। यह कथा दुर्गासप्तशतीमें विद्वारपूर्वक दी गयी है।

### १४५-विभीषण-

विभीषणने रावणको समझाया कि 'श्रीरामचन्द्रजी जगत्पिता परमानन्द हैं और श्रीसीताजी जगज्जननी हैं। इसलिये तुम जगज्जननी श्रीसीताजीको उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँगो। वे प्रभु दयालु हैं, तुम्हें क्षमा कर देंगे।' इस बातको सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और विभीषणको लात मारकर अपने नगरसे बाहर निकाल दिया। विभीषणने निराश और निराश्रय होकर मनमें कहा—

जिन पावनकी पादुकेनि भरत रहे मन छाह ।

वे पद धामु बिलोकिहीं इन जयनि अब जाह ॥

इस प्रकार अनन्यमायसे भावित होकर जब विभीषण भगवान्के चरणोंमें आ गिरा तो भगवान्ने उसे प्रेमसे लँकेश कहकर हृदयसे लगाया। प्रभुजी मकरासुखनाका यह कीसा उदाहरण है।

### १६२-दम मीम अरपि-

प्रबु-श्रनापी राजा रावण एक बार कैशस-पर्वतपर जाकर तपस्या

करने लगा। उसने घोर तप करके अन्तमें अपने सिरको काट-काटकर अग्निमें हवन करने लगा। जब नव सिर काटकर हवन कर चुका और दसवाँ सिर काटनेके लिये खड़ा उठाया तब शङ्करजी वहाँ प्रकट हो गये और उन्होंने उसमे वर माँगनेके लिये कहा, फलस्वरूप उसे लङ्काका राज्य मिला।

१७४-बलि-

जब राजा बलिने वामनभगवान्को तीन पग पृथ्वी दान देनेका वचन दे दिया तब शुक्राचार्यने उसको श्रीविष्णुभगवान्के छलके विषयमें बहुत कुछ समझाकर दान देनेसे रोका। परन्तु सत्यसद्बल्य राजा बलि अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी न हटा। उस समय उसने अपने गुरु शुक्राचार्यका सत्यके पीछे परित्याग कर दिया।

२१३-मृग-

सत्ययुगमें राजा मृग बड़े ही दानी राजा हो गये हैं। वह नित्य एक करोड़ गो-दान किया करते थे। एक बार एक ब्राह्मणको दान दीर्घ गाय भूटने आकर उनकी गायोंमें मित्र गयी और उन्होंने उसे अपने गायोंके साथ दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया। पहला ब्राह्मण अपनी भूटी लपकी तलाश करता हुआ जब दूसरे ब्राह्मणकी गायोंमें उसे घरते हुए देखा तो उस ब्राह्मणको चोर बनाकर अपनी गाय हाँक ले गया। फिर दोनों ब्राह्मणोंमें झगडा होने लगा। दोनों अपने-अपने राजाके पास पहुँचे और राजाको ईसाफ करनेके लिये कहा। राजा दोनोंकी बातें सुनकर सिर दिलाता रहा। कुछ उनके समझवे न आया कि क्या किया जाय। इसपर वे दोनों ब्राह्मण क्रोधित हो उठे, उन्होंने राजाको साथ

भयसे कम्पित कर दिया था । सब देवताओंने अन्तर्ने निगर लगी महाकालीकी स्तुति की । महाकाली प्रकट होकर रक्तबीजने पुर लगी । परन्तु जब उसके एक बूँदसे सहस्रों रक्तबीज पैदा होने लगे तो महाकालीने अपनी जीभ इतनी लम्बी बढ़ायी कि जिसका रक्त रक्तबीज दैत्योंके बदनसे गिरता उसे ऊपर ही घाट जाती । इस प्रकार रक्तबीजका संहार उन्होंने किया । यह कथा दुर्गरासरातीने विनयार्थ दी गयी है ।

### १४५-विभीषण-

विभीषणने रावणको समझाया कि 'श्रीरामचन्द्रजी जगत्पति परमात्मा हैं और श्रीसीताजी जगज्जननी हैं । इसलिये तुम जगज्जननी की भीषण हँसी उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँगो । वे प्रभु दयालु हैं, उन्हें क्षमा कर देंगे ।' इस बातको सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और विभीषणको खात मारकर अपने नगरसे बाहर निकाल दिया । विभीषणने निराश और निराश्रय होकर मनमें कहा—

त्रिम पावनकी पापुष्पनि भरत रहे सब कार ।

मे पर धातु विकोकिरी हूँ मयमनि अब कार

इस प्रकार अनन्यभाषणे भाषित होकर जब मैं  
में आ गिरा तो भगवान्मे उमे प्रेममे लहेज  
भक्तवशुकाका यह वैया उदाहरण

### १६२-दम माय अरवि -

प्रवृत्त-प्रवृत्ति इत्यादि शब्द

करने लगा। उसने घोर तप करके अन्तमें अपने सिरको काट-काट करिमें हवन करने लगा। जब नव सिर काटकर हवन कर चुका और तब फिर काटनेके लिये खड्ग उठाया तब शङ्करजी वहाँ प्रकट हो गये उन्होंने उससे धर मँगनेके लिये कहा, फलस्वरूप उसे लङ्काका राज्य मि

### १७४-बलि-

जब राजा बलिने वामनभगवान्को तीन पग पृथ्वी दान दे वन दे दिया तब शुकाचार्यने उसको श्रीविष्णुभगवान्के छलके वि बहू कुछ सपत्ताकर दान देनेसे रोका। परन्तु सत्यसङ्कल्प राजा अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी न हटा। उस समय उसने अपने शुकाचार्यका सत्यके पीछे परित्याग कर दिया।

### २१३-नृग-

सपयुगमें राजा नृग बड़े ही दाना राजा हो गये हैं। यह पुरु परोक्ष गां-दान किया करते थे। एक बार एक ब्राह्मणको दान इष्ट गाय भूखसे आकर उनपी गायोंमें मिश्र गयी और उन्होंने उसे गायोंके साथ दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया। पहला ब्राह्मण अपनी गायको तलाश करता हुआ जब दूसरे ब्राह्मणकी गायोंमें उसे खत देना तो उस ब्राह्मणको चोर बनाकर अपनी गाय हाँक ले चला दोनों ब्राह्मणोंमें झगडा होने लगा। दोनों छद्मते-झगड़ते राजाके पहुँचे और राजाको इत्ताफ करनेके लिये कहा। राजा दोनोंको दुनकर सिर दिखाता रहा। कुछ उमके मनमें न आया कि क्या करे। इसपर वे दोनों ब्राह्मण क्रोधित हो उठे, उन्होंने राजाको

दिया कि 'हे राजा ! तूने हमें धोखा दिया है, इसलिये जा, गिरगिट की योनिको प्राप्त हो।' राजा गिरगिट हो गया और बेचारा सहस्रवर्षपर्यन्त द्वारकाके एक कुएँमें पड़ा रहा। श्रीकृष्णावतारमें भगवान्ने उसे कुएँसे निकाला। फिर शापमुक्त होकर वह दिव्य शरीर धारणकर वैकुण्ठ चला गया।

### २१४-पूतना-

यह पूर्वजन्ममें एक अप्सरा थी। वामनभगवान्का बालस्वरूप देखकर, वात्सल्य-स्नेह-वश, इसकी इच्छा हुई थी कि मैं इस बालकको पुत्र बनाकर अपने स्तनोंका दूध पिलाती। अन्तर्यामी भगवान् उसको मनो-वाञ्छा जान गये। यह अप्सरा किसी घोर पापके कारण पूतना नाम्नी राक्षसी बनी। श्रीकृष्णावतारमें भगवान्ने वनसवत् उसका स्नान्यपान करते हुए उसे स्वर्ग भेज दिया।

### सिसुपाल-

यह चेदि-देशका राजा था। यह बड़ा ही पराक्रमी था। कहते हैं कि रावणने ही दूसरे जन्ममें शिशुपालके रूपमें जन्म लिया। यह बड़ा दुष्ट था। प्रतिदिन सवेरे उठकर भगवान् श्रीकृष्णको सौ गालियाँ दिया करता था। भगवान् कृष्ण उसकी गालियाँ सुनते और सह लेते थे। क्योंकि उसकी माता श्रीकृष्णके पिताकी बहिन थी। और उसने श्रीकृष्णसे यह वर ले लिया था कि यह शिशुपालके सौ अपराधोंको प्रतिदिन क्षमा कर देंगे। एक दिन पाण्डवोंकी समामें श्रीकृष्णको यह गालियाँ देने लगा। सौ गालियोंतक तो भगवान्ने उसे क्षमा किया। परन्तु जब उगने गाड़ी देना

द नहीं किया तो भगवान् ने चक्रसुदर्शनसे उसके सिरको काट डाला ।  
 वन्देयने उसकी आत्मज्योति भगवान् के श्रीमुखमें प्रवेश कर गयी ।

### व्याप-

भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें पद्मके चिह्न देखकर उसे नेत्रका क्षम हो गया था और उसने हरिण समझकर भगवान् के चरणोंमें तीर मारा था । पीछे जब वह समीप आया और चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्णको देगा तो उसे बड़ा ही दुःख और पश्चात्ताप हुआ । परन्तु भगवान् ने उसे शान्ति प्रदान करते हुए सदेह स्वर्गको भेज दिया ।

### २२०-परीक्षितहि पलिताय-

एक बार महाराज परीक्षित शिकार खेलते-नेन्दने निर्जन वनमें निकल गये । वहाँ उन्होंने देखा कि एक फाला पुरुष मूमल हाथमें लिये एक गाय और एक लँगड़े बैलको खदेड़ रहा है । जब पृथ्वीपर मादृम हुआ कि वह कात्या पुरुष कलियुग है और उसके भयसे पृथ्वी गाय और धर्म वैत्रका रूप धारण कर भाग रहे हैं, तो महाराजने क्रोधित होकर तलवार निकाली और कलियुगको मारनेके लिये दौड़े । इसपर वह कात्या पुरुष भयभीत होकर महाराजके चरणोंपर गिर पड़ा । महाराजने उसे शरणागत जानकर छोड़ दिया और चीदद स्थानोंमें रहनेके लिये उसे अभय कर दिया । उन स्थानोंमें एक स्थान भी था । महाराजके गिरपर संलेका मुकुट था, इसलिये कलियुग उगपर अपना आसन जमाया । महाराज जब उधरमें लंगे नौ मूम प्यसमे ध्याकुल हो एक स्थानावस्थित ऋषिके आसनमें पहुँचे और



उ००० अ०००

मागीच हावनाचा भाषा या : इमोकी वीरमवदरीने शिवागिरी  
वदनाचा के भाषा एक हो कागी ही ये-जस दुःसादना के दिव या ।  
जस वदनाचे भाषा नीने वदनाचे वाक ओर काव काव तिने ओर  
वद दिवनी कुं हावनाके वास गां तो हावना वदना नेकी इच्छा  
मागीचके वास वाका उमे भाषा-मृग वतने ओर वीरमवदरीनी घोष  
नेनेके तिने वहा । वदने तो मागीचने उमे वदना समझाव ओर वीरम-  
वदनीने सेव कर नेनेके तिने वहा । दग्गु जब हावना उमे मागीचके  
तिने तीगर हां वहा तो उगने हावनाके हापने मनेकी ओर वीरम-  
वदनीने हापने मनेमें ही अपना श्रेय समझा । वद भाषामृग वतकर  
वदनाचीने भाषानुकी वदनाकी सामने होकर निकला । वीरमवदरीने  
भाषानुमें उस मृगको मारकर उसका मृगछात्र छानेके तिने वहा ।

भगवान् उसके पीछे चले और मृगके मरण-समयके आर्तनादको सुनकर श्रीरामकीजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजी भी लघर ही निकल पड़े। एकान्त देखकर रावण आया और पर्णकुटीसे श्रीसीताजीको रथपर बँटाकर लट्का ले गया। मारीचको मारकर भगवान्ने उसे सद्रनि प्रदान की।

### २२६-नहिं कुञ्जरो नरो-

महामारतके युद्धमें कौरवोंकी ओरसे लड़ते हुए द्रोणाचार्य जब पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे तब श्रीकृष्णभगवान्ने अर्जुनसे कहा कि अब तो द्रोणाचार्यका बध किये बिना नहीं चल सकता। परन्तु अर्जुनको गुरुबध करनेकी हिम्मत नहीं हुई। तब भगवान्ने भीमके द्वारा अश्वत्थामा नामके हाथीको मरवा डाला। द्रोणाचार्यके पुत्रका भी अश्वत्थामा मारा था और वह उनको बड़े ही प्यारे थे। जब 'अश्वत्थामा मारा गया' यह आवाज द्रोणाचार्यके कानोंमें पहुँची तो उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा कि कौन अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिरने कहा—'अश्वत्थामा हनो नरो वा कुञ्जरो वा।' अर्थात् अश्वत्थामा मनुष्य मारा गया या हाथी। द्रोणाचार्य 'या हाथी' ( वा कुञ्जरो वा ) इस अंशको न सुन सके। राज-नीतिवात पालन करते हुए धर्मराजने सत्यकी रक्षा करनी चाही, पर वह न हो सका। अत्यय बोलनेका कलंक उनके जीवनपर लग ही गया। अतः, पुत्रमरण सुनकर ज्यों ही द्रोणाचार्य मूर्तिम-में हुए त्यों ही शूद्रपुत्रने उनके सम्यक बरत लिया। 'नरो वा कुञ्जरो वा' नभीसे ब्रह्मचरनके रूपमें प्रयुक्त होने लगा।



किस चिन्तामें आप पड़े हैं, रामनाम लिखकर उसकी ही परिक्रमा करके नेखित हो जाइये । रामनाममें ही अखिल सृष्टि निहित है । फिर या था, गणेशजीने चट रामनाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर डाली और उसे पढ़ले ब्रह्माण्डकी परिक्रमा कर आनेके फलस्वरूप सर्वप्रथम पूज्य हो षे । यह राम-नामकी महिमा है !

नामप्रभाव जान गनराऊ । प्रथम पूजियत नाम-प्रभाऊ ॥

रोमियो विन्ध्य—

कथा आती है कि विन्ध्याचल-पर्वत बहुत ही ऊँचा था । सूर्यकी चण्ड किरणें जब उस पर्वतके आश्रय रहनेवाले वृक्ष-लताओंको झुलसने लीं तब उसे बड़ा रोय उत्पन्न हुआ और सूर्यनारायणको टक लेनेके इत्थसे वह अपने शरीरको बढ़ाने लगा । इससे सारे देवता भयभीत हो ढि और सबने आकर अगस्त्य-ऋषिसे प्रार्थना की । महर्षि अगस्त्यजीने म-नामका स्मरणकर विन्ध्याचलके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि 'देख, अबतक मैं यहाँ न लौट आऊँ तबतक तू यहाँ ऐसा ही पड़ा रह ।' अगस्त्यजी फिर न लौटे और यह पर्वत ज्यों-का-स्यों आजतक पड़ा है । यह है श्रीराम-नामकी महिमा ।

२५७—दंडक पुहुमि पुनीत भई—

कथा है कि एक बार बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा । सब ऋषिगण अपने-अपने आश्रमोंको छोड़कर गौतम-ऋषिके आश्रमपर जा टहरे । पीडे

जब दुर्भिक्ष मिट गया तो वे गौतम-ऋषिसे विदा माँगनेके लिये गये । ऋषिने उनको उसी आश्रममें रहनेके लिये कहा तथा अन्यत्र जानेके लिये न्ना किया । तब उन ऋषियोंने एक मायाकी गौ रचकर गौतम-ऋषिके रंनमें खड़ी कर दी । ऋषि जब उसे हॉकनेके लिये गये तो वह गिर पड़ी और मर गयी । इसपर वे सारे ऋषि उनके ऊपर गोहत्याका दोष मढ़कर जाने लगे । गौतम-ऋषिने योगबलसे जब उनकी इस मायाको जाना तब क्रोधित होकर शाप दे दिया कि तुम जहाँ जाना चाहते हो वह देश अपवित्र-नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा । तभीसे वह दण्डकवनके नामसे प्रसिद्ध हुआ और यहाँ कभी कोई लता-वृक्ष नहीं उगते थे, सदा वह प्रदेश धीरान रहता था । मगध, श्रीरामचन्द्रजीके चरण धरते ही वह उजाड़ प्रदेश पवित्र और हरा-भरा हो गया ।







## गीताप्रेसकी गीताएँ

- गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय और साधारण भाषाटीकासहित,  
आकारडिमाई ८ पेजी, मोटा बागज, पृष्ठ ५७०, सचित्र, सजिल्द १।)
- गीता-प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, आकार २०×२०.  
सोल्ड पेजी, पृष्ठ ४६८, मुख्य ॥७॥ सजिल्द ... ॥१॥)
- गीता-श्लोक, साधारण भाषाटीकासहित, आकार २०×३० सोल्ड  
पेजी, पृष्ठ ३१६, मोटा टाइप, सचित्र, मुख्य ॥) सजिल्द... ॥७॥)
- गीता-केवल मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मुख्य १-) सजिल्द ॥७॥)
- गीता-केवल भाषा, इसमें श्लोक नहीं है। आकार २०×३० मोल्ड  
पेजी, पृष्ठ २००, अक्षर मोटे, एक चित्र, मुख्य १) सजिल्द ॥७॥)
- गीता-साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सभी विषय ॥) वालीके  
समान, पृष्ठ ३५२, मुख्य ७)॥ सजिल्द ... ७)॥)
- गीता-मूल तारीखी, साइज २×२॥ इय, पृष्ठ २९६, सचित्र, सजिल्द ७)
- गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १३२, सचित्र, सजिल्द ... ७)
- गीता-७॥×१० इय साइजके दो पत्रोंमें सम्पूर्ण ... ७)
- गीता-दूधरा अध्याय अर्थांसहित पाकेट-साइज, पृष्ठ ३९, मू० ... ७)
- गीता-सूची (Gita-List)-अनुमान २००० गीताओंका परिचय मू० ॥)
- गीता-झापररी सन् १९३४ बी (इसमें पूरी गीता है) मू० १) सजिल्द १-)
- गीता-( भीष्म-विज्ञान ) मूल, श्लोकोंके लामने ही उनका हिन्दी  
पद्यानुवाद, मुख्य ॥१॥ सजिल्द ... १)

### धीमद्भगवद्गीता ( अन्य भाषाओंमें )

- गीता-गुजराती टीका (हिन्दी टीका १।) वालीकी तरह) लम्बा ८१० १।)
- गीता-मराठी टीका ( " " ) " " १।)
- गीता-बंगाल टीका (हिन्दी टीका ॥७॥ वालीकी तरह ) " १) " १।)

बना-बीजापुर, गोरखपुर



# भाषाटीकासहित संस्कृतशान्त्रग्रन्थ श्रीआद्यशंकराचार्यजीकी पुस्तकें श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीशांकरभार्यकाः सरल हिन्दी-अनुवाद

इस ग्रन्थमें मूल भाष्यके गामने ही अर्थ निगद्य पढ़ने और गमकनेमें सुगमता कर दी गयी है । भुक्ति, स्मृति, इतिहासके उद्भूत प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है । भाष्यके पदोंको अलग-अलग करके लिखा गया है । अन्तमें गीतामें आये हुए हरेक शब्दकी पूरी सूची दी गयी है ।

प्रथम सरकारण समाप्त हो जानेपर कई मासके माँग लौटनी पड़ रही थी । अब दूसरा सरकारण छप गया है । साइज २२x२९ आठपैजी, पृष्ठ ५१९, तीन चित्रोंसहित, मू० साधारण जिन्द २॥) बँदूबा जिन्द २॥॥)

श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभार्य

हिन्दी अनुवादसहित, नित्य पाठके स्तोत्रोंमें विष्णुसहस्रनामका बहुत प्रचार है । भगवान्के नामोंके रहस्य जाननेके लिये इस अद्वितीय सचित्र ग्रन्थका मूल्य ॥=) बहुत ही मुम्भ रक्ता गया है ।

विवेक-चूडामणि

मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित, सचित्र, मूल्य ॥=) सजिल्द ॥=)

प्रबोध-सुधाकर

इस छोटे-से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थमें विषयभोगोंकी तुच्छता दिखते हुए आत्मसिद्धिके उपाय बताये हैं । प्रेमार्णव श्रीकृष्ण भगवान्के ध्यान योग्य सुन्दर चित्रसहित पृष्ठ ८०, मूल्य ॥=)॥

अपरोक्षानुभूति

वेदान्तका छोटा-सा ग्रन्थ है । सचित्र, मूल्य ॥=)॥

प्रश्नोत्तरी

बड़ी ही उपादेय पुस्तिका है, मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित, मू० ॥=)॥

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

## प्राचीन सद्ग्रन्थ

- धीषेष्णुपुराण-आठ सुन्दर चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ है, हाफ्हाहीमें प्रकाशित हुआ है । जल्दी नहीं करनेवालेको दूसरे संस्करणकी राह देखनी पड़ेगी, मूल्य साधारण जिल्द २॥) कपड़ेकी जिल्द २॥) २॥)
- ध्यातमरामायण-सालों काष्ठ, मूल और अर्थसहित, आठ सुन्दर चित्र, मूल्य १॥१॥) कपड़ेकी जिल्द ... २)
- धर्मद्रागवत पकादशस्कन्ध-मूल और अर्थसहित, सचित्र, १४ ४२०, मूल्य केवल ॥१॥) सजिल्द ... १)



## भक्तोंके जीवन-चरित्र

- धीर्धर्मवैतन्य-चरितावली-(खण्ड १) सचित्र, १४ ३६०, मू० ॥१०॥) सजिल्द १०)
- " (खण्ड २) सचित्र, १४ ४५० मू० १०) सजिल्द १०)

(सीखा भाग छप रहा है, कुल पाँच भाग होंगे ।)

- ७ भाग्यतरल प्रहाद--८ चित्र, ३४० १४, मू० १) सजिल्द ११)
- देवार्थि नारद-५ चित्र, ३३८ १४, मू० ॥१॥) सजिल्द ११)
- धीशानेश्वर-चरित्र-एफिटक कागज, ३२६ १४, १ चित्र, मूल्य ॥१०॥)
- धीष्कनाथ-चरित्र-हिन्दीमें धीष्कनाथजीकी जीवनी अमीनक दूमरी नहीं देखी, परम उपदेशप्रद है, सचित्र, मूल्य ॥१०॥)
- धीरामहृष्ण परमहंस-सचित्र, १४-संख्या २५०, मूल्य १३)
- भक्त-भारती-(७ चित्र) कवितामें ७ भक्तोंकी कथाएँ, मू० ॥१३॥) स० १०)
- एक सन्तकवि अनुभव-(धीनारायण भ्यामांश्रीके अनुभव) ... १)

धरा-गीताप्रोस, गौरवपु

## सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें

लेखक—श्रीवियोगी हरिजी	गीतोक्त सांख्ययोग	... -)॥
*प्रेम-योग सचित्र ... २।)	गीताका सूक्ष्म विषय	... -)।
गीतामें भक्ति योग सचित्र ... 1-)	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश	... -)
भजन-संग्रह चारों भाग ... ॥)	भगवान् क्या हैं ?	... -)
लेखक—श्रीभोलेबाबाजी	त्यागसे भगवत्प्राप्ति	... -)
श्रुति-रत्नावली ... ॥)	धर्म क्या है ?	... )।
श्रुतिकी टेर ... १)	लेखक— श्रीहनुमानप्रसादजी पोदार	
*वेदान्त-छन्दावली ... =)॥	स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी	... =)
लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका	आनन्दकी लहरें	... -)।
गीता-निबन्धावली ... =)॥	मनको वश करनेके उपाय	
सवामुख, उसकी प्राप्तिके उपाय -)॥	समाज-मुधार	...
गीताके कुछ जानने योग्य विषय -)॥	ब्रह्मचर्य	... ..

## फुटकर पुस्तकें

दिनचर्या .. .. ॥)	रामगीता सटीक	...
ज्ञानयोग ... १)	हरेरामभजन	...
प्रज्ञकी शॉकी ... १)	सन्ध्या हिन्दी विधिसहित	...
मनन-माला ... =)॥	बलिवैश्वदेवविधि	...
चित्रकूटकी शॉकी ... =)	सेवाके मन्त्र	...
मनुस्मृति दूसरा अध्याय ... -)॥	सीतारामभजन	...
हनुमानवाहुक ... -)॥	श्रीहरिसंकीर्तनकी धुन	...
आचार्यके सनुपदेश ... -)	पातञ्जलयोगदर्शन मूल	...
सप्त-महाव्रत ... -)	लोभमें पाप	... आथा पै
विष्णुसहस्रनाम )॥ सजित्द -)॥	गजत्रयीगीता	... आथा पै
	पता—गीताप्रेस, गोरखपुर	

• सस्करण समाप्त हो गया, छपनेपर विवेकी ।

